हमारे शरीर की रचना

भाग १

लेखक

त्रिलोकीनाथ वर्मा बी० एस्-सी०; एम्० बी० बी०
एस्०; एफ्० आर० एफ्० पी० एस्० (ग्लासगो)
डी० टी० एम्० (लीवरपूल); एल्० एम्०
(डबलिन); फेलो रौयल सोसाइटी औफ़
ट्रापिकल मेडिसिन एण्ड हाइजीन
लंदन; सिविल सर्जन, संयुक्त प्रान्त
भूतपूर्व सीनियर डिमोंस्ट्रेटर
तथा औफिशियटिंग प्रोफ़ेसर
एनाटौमी, किंग ज्योर्ज
मेडिकल कौलेज
लखनऊ ।

पाँचवी आवृत्ति

२१९ चित्र सहित जिनमें से १० रंगीन हैं

० १९९२]
न् १९३५]

प्रयाग

[मूल्य
[२॥।=)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

संवत् १९८३-वि० का

श्रीमंगलाप्रसाद-पारितोषिक

[रू० १२००]

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सप्तदश वार्षिक अधिवेशन पर श्रीमान डा० त्रिलोकी-नाथजी वर्मा बी० एस्-सी०; एम० बी० बी० एस्०; एफ़० आर० एफ़० पी० एण्ड एस्०; डी० टी० एम०; एल्०, एम०

को

उनकी विज्ञान विषयक रचना **"हमारे शरीर की रचना"** के लिये सादर दिया गया।

स्थान भरतपुर
मिति चैत्र कृ० १२
सं० १९८३ वि०

गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा
[राय बहादुर]
सभापति

* यह पारितोषिक भरतपुर में पारितोषिकाधिकारी के अनुपस्थित होने के कारण प्रयाग में मार्गशीर्ष शुक्ल २ सं० १९८४ वि० को पं० श्रीधर पाठकजी के द्वारा दिया गया।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

द्वारा

सं० १९८० में

लेखक को "हमारे शरीर की रचना"

के

सम्बन्ध में

रेडिचे पदक

और

२००) का पुरस्कार

मिल चुके हैं

समर्पण

स्वदेश प्रेमियों की सेवा में

भूमिका

इस (पाँचवी) आवृत्ति में पिछली तीन आवृत्तियों की अपेक्षा ये विशेषताएँ हैं:—

१. इस आवृत्ति में चौथी आवृत्ति से ३५ पृष्ठ और ५४ चित्र अधिक हैं। चौथी आवृत्ति में ५ रंगीन चित्र थे इसमें १० हैं; इस बार ४ एक्स-रे चित्र भी अधिक हैं।

२. इस बार पारिभाषिक शब्द और उनके अंग्रेज़ी तुल्यार्थ पृष्ठवार दिये गये हैं; कोष रूप में नहीं। इस विधि से पाठकों को पढ़ते पढ़ते हिन्दी और संस्कृत पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेज़ी तुल्यार्थ जानने में अधिक सुभीता होगा।

समस्त पुस्तक आद्योपान्त दोहराई गई है। पूर्ण आशा है कि पाठक इस आवृत्ति को पहले से अधिक उपयोगी पावेंगे।

पौष कृ० ५ सं० १९९२
१५ दिसम्बर सन् १९३५

त्रिलोकीनाथ वर्मा

पिछली आवृत्तियों की भूमिकाओं से उद्धृत

इस पुस्तक के सम्बन्ध में मुझे निम्नलिखित महाशयों से सहायता मिली है।

(अब स्वर्गवासी) मास्टर कृपारामजी एम० ए०।

डाक्टर विश्वनाथजी एम्० बी० बी० एस्०।

महामहोपाध्याय डा० पंडित गंगानाथ झा एम्० ए०, डी० लिट्०।

पंडित रासविहारी तिवारी।

डा० चन्द्रिका प्रसाद मिश्र।

साहित्याचार्य पं० घनानन्द पन्त।

त्रि० ना० व०

विषय-सूची

अध्याय १ (पृष्ठ १-२६)

अध्याय २ (पृष्ठ २७-४६)

अध्याय ३ (पृष्ठ ४७-९९)

अध्याय १२ (पृष्ठ ३५५–३६८)

अध्याय १३ (पृष्ठ ३६९–३७९)

अध्याय १४ (पृष्ठ ३८०–३९१)

कोष

———

चित्र सूची

हमारे शरीर की रचना

अध्याय १

परिचय

इस संसार में हमको दो प्रकार की चीजें दिखाई देती हैं; एक वे जिनको हम जीवित कहते हैं जैसे अनेक प्रकार के वृक्ष, पौदे, फूल, भाँति भाँति के जल और भूमि पर रहनेवाले और आसमान में उड़नेवाले जानवर जैसे मनुष्य, बानर, मेंडक, मछली, कबूतर इत्यादि; दूसरे वे जो निर्जीव कही जाती हैं जैसे ईंट, पत्थर, मिट्टी और अनेक प्रकार के धातु। इस विचार से हम इस सृष्टि के दो बड़े बड़े भाग कर सकते हैं :

(१) सजीव या चैतन्य सृष्टि।

(२) निर्जीव या जड़ सृष्टि।

यदि हम इस सजीव सृष्टि पर दृष्टि डालें तो यह भी दो प्रकार की दिखाई देती है। एक ओर फल फलवाले वृक्ष, भाँति भाँति की लताएं और घासें देख पड़ती हैं; दूसरी ओर अनेक प्रकार के जीव दिखाई देते हैं जैसे मनुष्य, घोड़ा, बैल, कबूतर, मच्छड़। पहले प्रकार की जीवित सृष्टि दूसरे प्रकार की जीवित सृष्टि से भिन्न है।

जैसे कुल संसार के दो भाग हुए—सजीव और निर्जीव—वैसे ही फिर सजीव सृष्टि के दो भाग हो जाते हैं :—

(१) एक वह जिसमें वृक्ष, पौदों, घासों की गिनती होगी।

(२) दूसरे वह जिसमें मनुष्य, घोड़ा, मेंडक, मच्छर रक्खे जायँगे।

वैज्ञानिक लोग पहले विभाग को **वनस्पतिवर्ग** कहते हैं और दूसरे को **प्राणिवर्ग** :—

सृष्टि

सजीव या चैतन्य

(१) वनस्पतिवर्ग (२) प्राणिवर्ग (३) निर्जीव या जड़

इस प्रकार कुल सृष्टि के तीन बड़े बड़े विभाग हुए।

चैतन्य सृष्टि चाहे वह वनस्पतिवर्ग की हो और चाहे प्राणिवर्ग की छोटी बड़ी सभी प्रकार की होती है। वनस्पतिवर्ग में जहाँ एक ओर लम्बे लम्बे बाँस और ऊँचे ऊँचे बड़, आम, सालादि के वृक्ष हैं वहाँ दूसरी ओर दृष्टि डालने से गेहूँ, चाँवल, तुलसी के पौदे और इनसे भी छोटी छोटी अनेक प्रकार की लताएँ और घासें जैसे दूब, कुशा, काई दिखाई देती हैं। यदि और जाँच पड़ताल करें तो इनसे भी नन्हीं नन्हीं अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ मिलेंगी। उनमें कुछ तो इतनी सूक्ष्म होती हैं कि हम उनको आँखों से नहीं देख सकते; उनको देखने के लिये ऐसे यंत्र की आवश्यकता है जिससे छोटी वस्तु बड़ी दिखाई दे।

ऐसे यंत्र को **अणुवीक्षण** या **सूक्ष्मदर्शक** कहते हैं।

चित्र १ अणुवीक्षण यंत्र
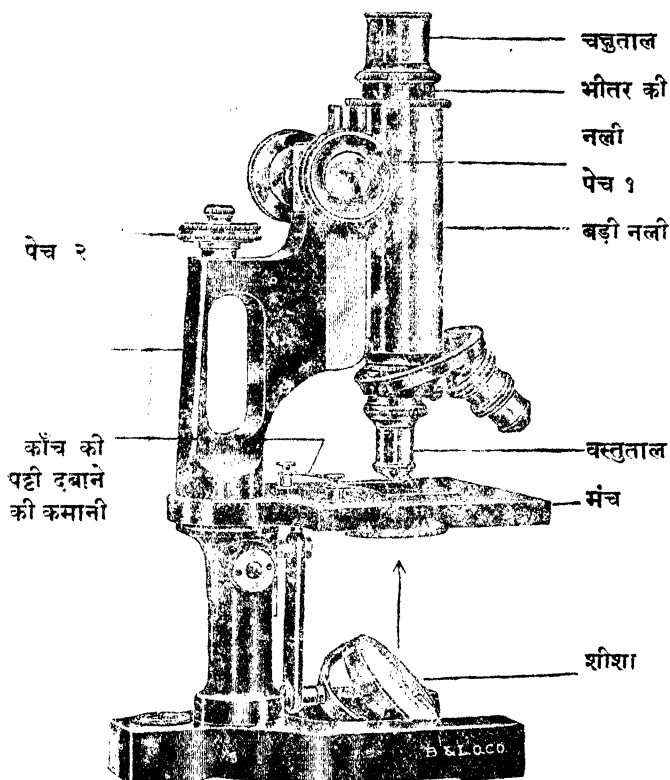
परीक्षक चक्षुताल में से देखता है। जिस वस्तु की परीक्षा की जाती है वह एक काँच की पट्टी पर रख दी जाती है; यह पट्टी कमानियों से दबाकर मंच पर रक्खी जाती है। मंच के बीच में एक छिद्र होता है; वस्तु इसी छिद्र के ऊपर रहती है। बड़ी नली के नीचे के भाग में एक या कई ताल लगे रहते हैं; यह ताल वस्तु के ऊपर रहता है; पेच (१) द्वारा यह नली ऊपर नीचे सरकाई जा सकती है; इस क्रिया से वस्तुताल और वस्तु के बीच का अंतर कम और अधिक किया जा सकता है; यदि अंतर बहुत ही धीरे-धीरे बढ़ाना या घटाना होता है तो पेच (२) से काम लिया जाता है; जहाँ से साफ़ साफ़ दीखता है उसी अंतर पर वस्तुताल को रखते हैं। बड़ी नली के भीतर एक नली और होती है; इसी में चक्षुताल लगा होता है। इस नली को ऊपर सरकाने से चक्षुताल और वस्तुताल का अंतर अधिक किया जा सकता है। प्रकाश की किरणें शीशे पर से उचट कर मंच के छिद्र में से होती हुई वस्तु पर पड़ती हैं। वस्तु से उचट कर वस्तुताल और नली और चक्षुताल में होती हुई परीक्षक की चक्षु में पहुँचती हैं। शीशे से प्रकाश कम या अधिक किया जा सकता है।

इस यंत्र की सहायता से वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की सूक्ष्म वनस्पतियों को देखा है जिनको साधारण मनुष्यों ने न कभी देखा और न सुना। साधारण मनुष्यों को तो इस बात के सुनने से भी बड़ा आश्चर्य होता है कि जीवधारी इतने सूक्ष्म भी हो सकते हैं जो आँखों से न दिखाई दें; परन्तु इस विषय में संदेह करना व्यर्थ है। यदि आप इस यंत्र के द्वारा वस्तुओं को देखना जान लें तो आपको भी इस बात का पूर्ण विश्वास हो जायगा।

जिस प्रकार वनस्पतिवर्ग में अनेक प्रकार के बड़े से बड़े और छोटे से छोटे व्यक्ति हैं उसी प्रकार प्राणिवर्ग में भी भिन्न भिन्न

प्रकार के बड़े से बड़े और छोटे से छोटे व्यक्ति हैं। बड़े बड़े प्राणी ऐसे जैसे कि हाथी, ऊँट वा समुद्र में रहने वाली ह्वेल मछली, मनुष्य, बानर, कबूतर आदि; छोटे छोटे ऐसे जैसे कि मक्खी, मच्छर, जूँ, चींटी आदि। प्राणी इनसे भी छोटे छोटे होते हैं; ये बहुधा जल में रहते हैं और आँखों से केवल एक बिन्दु जैसे देख पड़ते हैं।

यदि और देख भाल की जावे तो ज्ञात होता है कि असंख्य प्राणी इतने सूक्ष्म हैं कि हम उनको बिना अणुवीक्षण की सहायता के आँखों से नहीं देख सकते। इस तरह से इस सृष्टि में दो भाँति के प्राणी पाये जाते हैं---एक वे जो आँखों से देख पड़ते हैं। दूसरे वे जिनको हम आँखों से यंत्र की सहायता बिना नहीं देख सकते। यदि कोई वस्तु सूक्ष्म होने के कारण आँखों से न दिखाई दे तो यह कहना उचित नहीं कि वह वस्तु है ही नहीं। जिस मनुष्य के आँखें हैं वह उस मनुष्य की अपेक्षा जो अंधा है इस संसार में अनेक प्रकार की वस्तुएँ देखता है और जो मनुष्य अणुवीक्षण की सहायता लेता है वह केवल आँखों से देखनेवाले मनुष्य की अपेक्षा अन्य अनेक प्रकार की वस्तुएँ देख सकता है और इस ज्ञान से अपने आपको और अपनी जाति को लाभ पहुँचा सकता है।

यंत्र ऐसे ऐसे बने हैं कि जो एक छोटी चीज को कई हजार गुणा बड़ा करके दिखा सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इस विचित्र यंत्र की सहायता से छोटी से छोटी वस्तु जो आप आँखों से देख सकते हों उसके दो या तीन हजारवें भाग को भी देख सकते हैं। इन्हीं यंत्रों की सहायता से अनेक प्रकार की बकटेरिया नामक वनस्पतियाँ वा रोगोत्पादक जंतु देखे गये हैं।

जीवधारियों के शरीर की बनावट

जीवधारियों के शरीर की बनावट एक मकान की बनावट के सदृश है। जैसे मकान अनेक छोटी छोटी ईंटों से बने हैं उसी प्रकार यह शरीर भी बहुत सी छोटी छोटी ईंटों से बना है। मकान और शरीर की ईंटों में बड़ा भेद यह है कि मकान की ईंटें जड़ हैं, शरीर की ईंटें चैतन्य। जिन छोटी छोटी चैतन्य ईंटों से जीवधारियों के शरीर बनते हैं, उनको **सेलें*** कहते हैं।

जैसे एक बड़े महल में कई प्रकार की ईंटें लगी रहती हैं, कोई बड़ी होती है और कोई छोटी, कोई मोटी होती है और कोई पतली; उसी तरह शरीर भी कई प्रकार की सेलों से बनता है। जिस सेल को जैसा काम करना पड़ता है उसी काम के अनुसार उसका आकार और परिमाण होता है।

कोई जीवधारी बड़ा होता है और कोई छोटा। बड़े जीवधारी के शरीर में अधिक सेलें होती हैं और छोटे के शरीर में कम। जितनी ईंटें एक बड़े महल में होती हैं उतनी एक छोटे मकान में नहीं होतीं। इसी तरह जितनी सेलें एक कबूतर के शरीर में हैं उतनी एक मक्खी के शरीर में नहीं हैं और जितनी सेलें एक मक्खी के शरीर में हैं उतनी जूँ जैसे छोटे प्राणी के शरीर में नहीं हैं। जितना छोटा कोई जीवधारी होगा उतनी ही कम सेलें उसके शरीर में होंगी यहाँ तक कि सब से छोटे जीवधारियों के शरीर केवल एक ही सेल से बनते हैं।

* "सेल" अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है। कुछ लेखकों ने इसके लिये "कोष" शब्द का प्रयोग किया है।

जैसे सब से ग़रीब मनुष्य अपनी एक ही कोठरी में सब काम कर लेते हैं, वहीं भोजन पकाते और खाते हैं, वहीं सोते और उठते बैठते हैं, इसी प्रकार इन सूक्ष्म एक सेलवाले जीवधारियों के शरीर में सब आवश्यक कार्य हो जाते हैं। सेलों की संख्या के हिसाब से कुल जीवधारियों की (क्या बनस्पति और क्या प्राणी) दो बड़ी जातियां हो सकती हैं:—

(१) वे जीवधारी जिनके शरीर केवल एक ही सेल से बने हैं—**एकसेलयुक्त** जीवधारी। Unicellular ...

(२) वे जीवधारी जिनके शरीर में एक से अधिक सेलें होती हैं—**बहुसेलयुक्त** जीवधारी। मनुष्य के शरीर में बहुत सेलें हैं इस कारण उसकी गिनती बहुसेलयुक्त प्राणियों में है।

पीछे सेल शब्द का प्रयोग कई बार हो चुका है; इसलिये यह आवश्यक है कि पाठकों को सेल की बनावट से परिचित किया जाय। हम पहले आपको ऐसे प्राणी के शरीर की बनावट बतलाते हैं जिसका शरीर एक ही सेल से निर्मित है।

हम इन आँखों से किसी एक सेल को चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो भली प्रकार नहीं देख सकते। हम सेल-समूह को देख सकते हैं। जब हम एक छोटे से खटमल के बच्चे को देखते हैं तब हमको उसकी सेलें दिखाई नहीं देतीं। जो कुछ हमको दिखाई देता है वह सहस्र छोटी छोटी सेलों का एक समूह है। सेल के अत्यन्त छोटे होने के कारण हम किसी एकसेलयुक्त प्राणी के शरीर की रचना नहीं जान सकते जब तक कि हम अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता न लें।

अमीबा*

चित्र २ में एक साधारण एकसेलयुक्त प्राणी का शरीर खिंचा हुआ है। इस प्राणी का नाम **अमीबा** है। वास्तव में शरीर

चित्र २ अमीबा
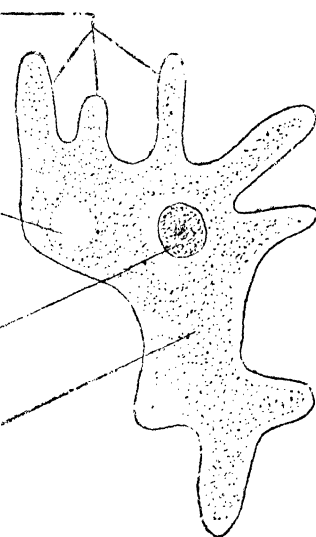
वास्तविक परिमाण १/२५० से १/८० इञ्च तक (व्यास)

इतना बड़ा नहीं होता परन्तु समझाने के लिये इतना बड़ा बनाया गया है, बड़े यन्त्रों से बहुत बड़ा दिखाई भी देता है। अमीबा का शरीर एक स्वच्छ गाढ़े भली प्रकार न बहनेवाले शहद जैसी वस्तु

* अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है।

से बना है, इस वस्तु को **जीवोज** या **जीवनमूल** कहते हैं। यदि हम ध्यान से देखें तो इस वस्तु के बीच में एक धुंधली मोटी बिन्दु दिखाई देगी, इसका नाम **मींगी** या **चैतन्य केन्द्र** है। प्रत्येक सेल में जीवोज होता है जिसके भीतर मींगी रहती है। बस प्रत्येक सेल के दो मुख्य भाग होते हैं:--

(१) जीवोज।

(२) मींगी या चैतन्य केन्द्र।

मींगी कुछ ठोस होती है और जीवोज से अधिक धुंधली होती है।

यदि जीवोज की रासायनिक परीक्षा की जाय तो मालूम होगा कि उसका अधिक भाग जल होता है (७५% या इससे भी अधिक); शेष भाग अधिकतर **प्रोटीन*** नामक रासायनिक पदार्थ से बनता है। प्रोटीन नामक पदार्थ में **कर्बन, उदजन, नत्रजन,** † **ओषजन**, **गन्धक** वा कभी कभी **स्फुर** मूलतत्व या मौलिक पाए जाते हैं अर्थात् प्रोटीन एक संयोजित पदार्थ या यौगिक है और वह प्रागुक्त मौलिकों या मूलतत्वों के परस्पर संयोग से बनता है। जीवोज में प्रोटीन और जल के अतिरिक्त कई प्रकार के लवण वा दो एक चीजें और होती हैं। मींगी अधिकतर प्रोटीन और प्रोटीन जैसी चीजों से बनती है। मींगी की प्रोटीन में स्फुर बहुत होता है (७, ८%), इस प्रोटीन में कभी कभी लोहा भी पाया जाता है। वैज्ञानिकों ने जीवोज का विश्लेषण करके मूलतत्वों या मौलिकों को तो जान लिया

* अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है। † ओषजन।

है परन्तु वे अभी इन मौलिकों को परस्पर मिला कर फिर जीवोज नहीं बना सके। प्रोटीन भी अभी तक नहीं बनाई जा सकी। प्रोटीन, जल और लवण--इनको आपस में हम किस विधि से और किस प्रकार मिलायें कि उनके संयोग से एक चैतन्य सेल बन जावे यह हमको अभी तक मालूम नहीं हुआ। यदि हमको यह मालूम हो जावे कि चैतन्यता क्या चीज़ है और उसको हम जड़ पदार्थों में किस प्रकार प्रवेश करा सकते हैं तब हमको यह समझने में कोई कठिनता न होगी कि सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई।

यदि हम अमीबा को अच्छी तरह देखें तो हमको ज्ञान होगा कि इसमें चलने फिरने की शक्ति है। यद्यपि इसके हमारी तरह हाथ पाँव नहीं हैं और न मक्खी जैसे पर और न मछली जैसे पाँखे, तथापि वह एक स्थान से खिसक कर दूसरे स्थान पर निःसंदेह जा सकता है। हम बतलाते हैं कि वह ऐसा कैसे कर सकता है।

इस प्राणी के शरीर की आकृति क्षण क्षण में बदलती रहती है (देखो चित्र ३); मानलो कि अभी यह प्राणी "क" रेखा के बाईं ओर है (चित्र ३) और उसकी आकृति कुछ गोलाकार है; क्षण भर पीछे उसका शरीर लम्बा सा हो जाता है। लम्बा होने पर चौड़ाई कम हो जाती है; अब उसके शरीर में दाहिनी ओर एक अंगुली सी बन जाती है और यह अंगुली "क" रेखा के दाहिनी ओर चली जाती है। पल भर पीछे उसके उस भाग में जो "क" के दाहिनी ओर चला गया है एक और अंगुली निकल आती है; अब उसके शरीर का बहुत थोड़ा अंश "क" के बाईं ओर बचा रहता है। पल भर पीछे

चित्र २ अमीबा की चाल
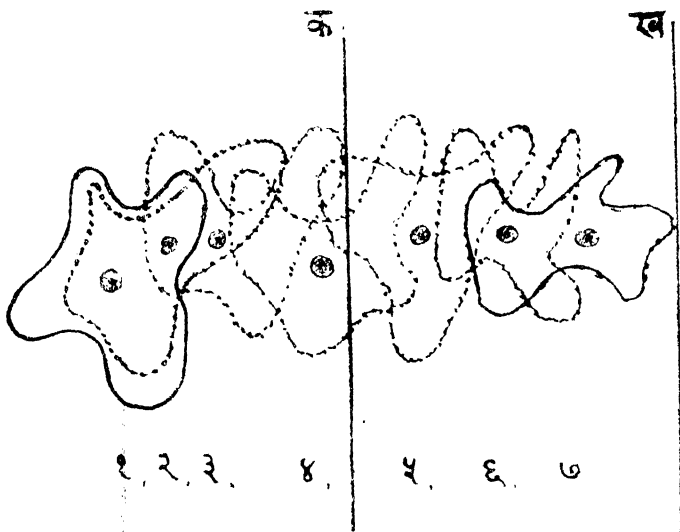
उसमें और अंगुली सी निकल आती है और अब सबका सब शरीर "क" के दाहिनी ओर आ गया। इस प्रकार अपनी आकृति बदलने से वह "क" से चलकर "ख" तक आ पहुँचा। अमीबा इसी प्रकार चलता फिरता है। बस यदि आप चल फिर सकते हैं तो आपका अमीबा भी चल फिर सकता है।

जैसे आप भोजन करते हैं वैसे अमीबा भी खाता पीता है। जिस जल में अमीबा रहता है वह जल उसके शरीर के भीतर पहुँचता रहता है। यही नहीं; वह उस जल में घुले हुए पोषण-

कारक पदार्थ भी ग्रहण करता रहता है; कभी कभी वह छिप-कली की भाँति शिकार भी मार खाता है। जब कभी वह किसी छोटी वनस्पति (जैसे बकटेरिया) या किसी और वस्तु को अपने शरीर में ग्रहण करना चाहता है तो उस वस्तु के चारों ओर उसके जीवोज की अंगुलियाँ (मिथ्या पाद) निकल आती हैं और उसको घेर लेती हैं और फिर यह सब जीवोज एक हो जाता है और वह वस्तु उसके शरीर के भीतर आ जाती है। शरीर में पहुँच कर यह भोजन पचता है।

अमीबा न केवल चलता फिरता भोजन खाता और उस को पचाता ही है, किन्तु उसके शरीर में उन पदार्थों को जिनको वह पचा नहीं सकता शरीर से बाहर निकालने का भी प्रबन्ध है। यदि हम इस प्राणी के शरीर को ध्यान से देखें तो उसके जीवोज में कहीं न कहीं एक छोटा सा गोल गोल शून्य (खाली) स्थान दिखाई देगा। इस स्थान में शरीर के विविध भागों से बहुत सी अति सूक्ष्म नालियाँ आकर खुलती हैं। इन नालियों के द्वारा जल में घुले हुए दुष्पच पदार्थ वा कर्बनद्विओषिद जैसे मलिन पदार्थ आकर इकट्ठे होते हैं। जब यह शून्य स्थान इन पदार्थों से भर जाता है तब अमीबा का शरीर कुछ सिकुड़ता है और उसमें एक छोटी सी दरार आ जाती है जिसमें से होकर ये सब पदार्थ निकल कर जल में मिल जाते हैं। तत्पश्चात् उसका शरीर ज्यों का त्यों हो जाता है। जिस प्रकार मँडे हुए आटे में आप एक सुई गुभा कर निकाल लें और फिर वह छिद्र आप ही आप बंद हो जाता है और उस छिद्र का कोई चिह्न नहीं रहता वैसे ही इस दरार का कोई चिह्न अमीबा के शरीर में नहीं रहता।

आप स्पर्श इन्द्रिय रखते हैं; शीत, उष्णता वा पीड़ा को आप

को ज्ञान होता है। जाँच पड़ताल से पता लगता है कि अमीबा में भी इन बातों को अनुभव करने की शक्ति है।

इन सब बातों से विदित है कि अमीबा सब ही काम करता है। उसके शरीर में गतियाँ होती हैं; वह भोजन खाता और उसको पचाता है और जिन चीज़ों को वह पचा नहीं सकता, उसको शरीर से बाहर निकाल देता है। चलने फिरने से जो मलिन पदार्थ उसके शरीर में उत्पन्न होते हैं उनको बाहर निकालने का भी उसमें प्रबंध है। जल में से वह ओषजन गैस को भी ग्रहण करता है और शीत और उष्णता को भी पहचानता है। इन सब आवश्यक कामों के अतिरिक्त उसमें उत्पादन शक्ति भी है। उसके सूक्ष्म शरीर में इस कार्य के लिये कोई विशेष अंग नहीं है। जब वह यौवन को प्राप्त होता है तो वह पहले तो कुछ लम्बा सा हो जाता है; तत्पश्चात् उसकी मींगी के दो टुकड़े हो जाते हैं। एक मींगी से दो मींगियाँ बन जाती हैं; एक मींगी शरीर के एक भाग में चली जाती है और दूसरी दूसरे भाग में, (देखो चित्र ४) फिर बीच में से शरीर के दो टुकड़े हो जाते हैं। अब एक अमीबा से दो अमीबा बन गये। इसी तरह इनमें से हर एक व्यक्ति बड़ा होकर फिर बीच में से फट जाता है और यह बढ़ने और फटने का सिलसिला चलता रहता है। इस तरह से इस एक सेल में सभी काम हो जाते हैं। जिन क्रियाओं पर जीवन अवलम्बित है वे सब एक ही सेल द्वारा हो जाती हैं।

जीवन या चैतन्यता के लक्षण

जो काम अमीबा करता है वह प्राय: प्रत्येक जीवधारी करता

है। इन बातों के होने या न होने से हम जीवित वस्तु को निर्जीव वा मृत वस्तु से पहचान सकते हैं। अब हम जीवन के

चित्र ४ एक अमीबा से दो अमीबा बन जाते हैं
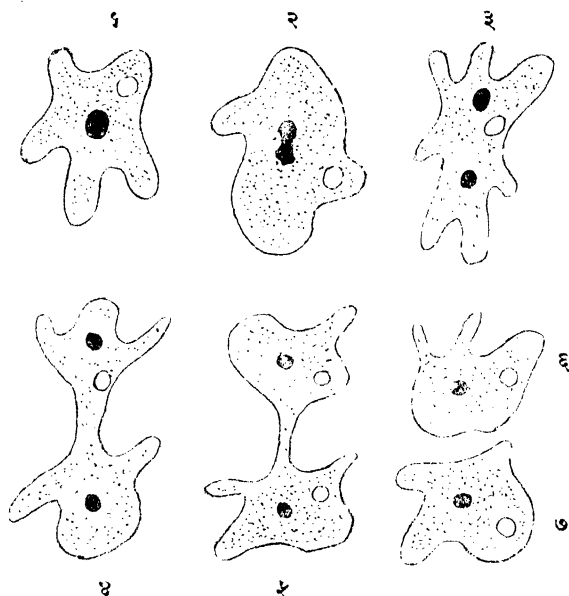
मुख्य लक्षण गिनाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जब तक यह सब की सब बातें न मिलें तब तक कोई वस्तु जीवित न कही जावे। इनमें से बहुत सी बातें हर एक जीवधारी में प्राय: अवश्य मिलती हैं :—

(१) सोते हुए जीवित कुत्ते के शरीर में यदि आप सुई चुभावें तो वह जाग जायगा और क्रुद्ध होकर आपको काटने

दौड़ेगा, मृत कुत्ते के शरीर को आप काट भी डालें तो भी वह आप से कुछ न कहेगा। यदि जीवित मनुष्य के हाथ पर उबलता हुआ जल गिरे तो हाथ उस स्थान से तुरन्त हट जाता है; मृत मनुष्य का हाथ आप जलती हुई भट्टी में रख दीजिये, वहीं रहेगा और जलने पर भी वहाँ से न हटेगा। चोंचली को यदि आप पकड़ना चाहें तो वह अपने पैरों को सिकोड़ लेती है, ऐसी बन जाती है कि वह मर गई; मृत चोंचली ऐसा नहीं करती। जीवित सर्प के शरीर पर आप पैर धर दें तो वह तुरन्त काटने के लिये तैयार हो जाता है; मृत सर्प से आप जो चाहें कर सकते हैं। जीवित अमीबा के शरीर में यदि आप सुई चुभावें तो वह उस स्थान से हटने लगता है। जीवित मांस बिजली के प्रभाव से सिकुड़ने लगता है; जब यह मर जाता है तब नहीं सिकुड़ता।

कारण के प्रभाव से कार्य करने और किसी बाह्य उत्तेजना के बल से उत्तेजित होकर अपने शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन करने की यह शक्ति केवल जीवित चीजों में ही पाई जाती है; निर्जीव या मृत में नहीं। जीवित चीजों की इस शक्ति का नाम **उत्तेज्य** है।

(२) जीवधारी भोजन ग्रहण करते हैं और उसको पचा कर उससे अपना शरीर बनाते हैं और जो शक्ति उससे प्राप्त होती है उससे शरीर का कारोबार चलाते हैं। मृत मनुष्य या कोई और प्राणी भोजन नहीं खाता। जीवित वृक्ष वायु और पृथिवी से भोजन की वस्तु ग्रहण करते रहते हैं जिससे उनके शरीर बढ़ते हैं; जब वृक्ष मृत होकर सूख जाता है तो वह

पृथिवी और वायु से पोषणकारक पदार्थ ग्रहण नहीं कर सकता। जीवित अमीबा प्रति क्षण जल से पौष्टिक पदार्थ ग्रहण करता रहता है; वह मार दिया जाय तो यह काम बंद हो जाता है। जीवधारियों के इस गुण को **समीकरण** या **एकीकरण** शक्ति कहते हैं। assimilation

(३) जीवधारी भोजन खाते और उसको पचाते हैं और पचे हुए पदार्थों से उनके शरीर बनते और बढ़ते हैं। मृत बालक का शरीर नहीं बढ़ता, जीवित बालक अपनी माता का दुग्ध पी कर और फिर अन्न खा कर और उसको पचा कर अपना शरीर बढ़ाता है। छोटे से बीज से बढ़ बढ़ कर कितने कितने बड़े वृक्ष बन जाते हैं; यदि हम किसी बीज को बहुत उष्णता पहुँचा कर या किसी और विधि से मार डालें और फिर उसको बोवें तो वह कभी भी न उगेगा और उसके शरीर में वृद्धि न होगी। जीवधारियों के भोजन खा खा कर बढ़ने को **वर्धन शक्ति** कहते हैं। निर्जीव या मृत चीजों में इस प्रकार वृद्धि नहीं होती। growth

(५) जीवधारी संतान उत्पन्न कर सकते हैं; जैसे आप हैं वे अपने शरीर से उसी प्रकार के और व्यक्ति बना सकते हैं। एक अमीबा से दो अमीबा बन जाते हैं, यदि अमीबा मरा हुआ हो तब उससे कभी भी दूसरा अमीबा न बन सकेगा। जीवित बहुसेलयुक्त प्राणधारियों से भी वैसे ही और प्राणी बन सकते हैं। आम के वृक्ष में बहुत से आम लगते हैं; प्रत्येक आम की गुठली बोने पर एक आम का वृक्ष बना सकती है। जीवित मुर्गी अंडे देती है; जीवित स्त्री बालक जनती है; मृत मुर्गी अंडे

नहीं देती न मृत स्त्री गर्भ धारण करके बालक जन सकती है। हमारे शरीर में जीवित अवस्था में एक सेल से और सेलें बनती रहती हैं। जीवधारियों के इस गुण को **उत्पादन शक्ति** कहते हैं।

(५) जीवित शरीर में उन मलिन पदार्थों को जो कार्य करने से उसके भीतर उत्पन्न होते रहते हैं बाहर निकालने का प्रबन्ध होता है। अमीबा के शरीर से मलिन पदार्थ निकल कर जल में मिल जाते हैं। जब तक हम जीते रहते हैं हम अपने फुप्फुसों (फेफड़ों), गुरदों और त्वचा से ये पदार्थ त्यागते रहते हैं; मरने पर स्वाँस नहीं आता; मूत्र बनना बन्द हो जाता है; पसीना भी नहीं आता। जीवधारियों के इस कार्य को **मलोत्सर्जन** कहते हैं।

संक्षेप :—बस जीवन के पाँच मुख्य लक्षण ये हैं :—

(१) **उत्तेज्य**

(२) **समीकरण** या **एकीकरण**

(३) **वर्धन**

(४) **उत्पादन शक्ति**

(५) **मलोत्सर्जन**

इनमें से तीसरा और पाँचवाँ लक्षण औरों की अपेक्षा अधिक आवश्यक समझे जाते हैं।

सेल के विषय में कुछ और बातें

हमारा विश्वास है कि पाठक अमीबा का हाल पढ़ कर सेल

की साधारण बनावट समझ गये होंगे। यह न समझना चाहिये कि सेल के विषय में इतना ही मालूम है; सत्य तो यह है कि जितने बड़े यंत्र से सेल देखी जावे उतनी ही नई नई बातें उसकी रचना के विषय में मालूम होती हैं। परन्तु हम इन सब बातों को बतला कर पाठकों को भँवरजाल में नहीं डालना चाहते; केवल एक दो बातें बतला कर सेल का साधारण वर्णन समाप्त करेंगे।

चित्र ५ सेल
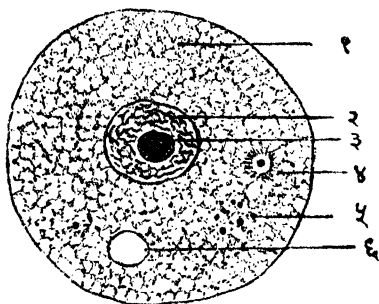
यदि हम किसी सेल को बड़े यंत्र की सहायता से गौर से देखें तो मींगी के भीतर एक छोटा सा बिन्दु दिखाई देता है इसको **अणु मींगी** कहते हैं (चित्र ५ में ३) जीवोज में मींगी से भिन्न एक और बिन्दु जैसी चीज़ दिखाई देती है; इसके चारों ओर पहिये के आरों के समान रेखाएँ दिखाई देती हैं; इस कुल वस्तु को **आकर्षण गोला** कहते हैं। (चित्र ५ में ४)

इस तरह से सेल के मुख्य भाग ये होते हैं :—

चित्र सूची

(१) जीवोज
(२) जीवोज के भीतर मींगी
(३) मींगी के भीतर अणु मींगी
(४) आकर्षण गोला

इनके अतिरिक्त बहुत सी सेलों में दानेदार या किसी और विशेष प्रकार की चीज़े भी पाई जाती हैं (चित्र ५ में ५); कभी कभी शून्य स्थान भी होता है। (देखो चित्र ५ में ६)

बहुसेलयुक्त जीवधारी

बहुसेलयुक्त जीवधारियों के शरीर में एक से अधिक सेलें होती हैं। इनमें से हर एक सेल हर एक काम नहीं करती जैसा कि अमीबा में होता है। जिस मकान में एक से अधिक कोठरियाँ होती हैं वहाँ सब कोठरियाँ एक ही काम में नहीं लाई जातीं और न सब कोठरियाँ हर एक काम में लाई जाती हैं। कोई कोठरी भोजनशाला बनाई जाती है, कोई स्नानगृह और कोई दफ़्तर। इसी प्रकार जब शरीर में एक से अधिक सेलें होती हैं तो वह सब काम जो अमीबा में केवल एक ही सेल को करना पड़ता था अब इन सेलों में आपस में बँट जाता है। किसी का काम भोजन पचाने का हो जाता है और किसी का मल त्यागने का; किसी का वायु या जल से ओषजन ग्रहण करने का; किसी को शेष शरीर की रक्षा का काम सपुर्द किया जाता है। जब सेलों को भिन्न भिन्न काम करने पड़ते हैं तो उनकी आकृति, आकार, परिमाण में भी भेद हो जाता है। कोई सेल कोमल होती है और कोई कठिन; कोई गोल होती है और कोई लम्बी; कोई मोटी होती है और कोई पतली। जैसा काम किसी सेल को

करना पड़ता है उसी के अनुसार उसकी आकृति बदल जाती है। किसी बड़े कारखाने को चलाने के लिये कई प्रकार के मनुष्यों की आवश्यकता होती है; कुछ मनुष्य बुद्धिमान होने चाहियें जो उसका प्रबन्ध कर सकें; कुछ हृष्ट पुष्ट होने चाहियें जो ऐसे काम कर सकें जिनमें शारीरिक बल की आवश्यकता हो; ऐसे मनुष्य भी चाहियें जो मशीन चलाना जानते हों, उसकी सफ़ाई भली प्रकार कर सकते हों; कुछ मज़दूर भी चाहियें। यद्यपि ये सब मनुष्य ही होते हैं तथापि उनमें योग्यता के अनुसार आपस में भेद होता है। यही हाल शरीर में है।

इस तरह से यदि हम एकसेलयुक्त जीवधारी के शरीर की बहुसेलयुक्त जीवधारी के शरीर से तुलना करें तो दो नियम काम करते हुये दिखाई देते हैं :--

(१) जब शरीर में सेलों की संख्या बढ़ती है, तो कुल काम जो जीवधारी को जीवित रहने के लिये करना पड़ता है अब इन बहुत सी सेलों में आपस में थोड़ा थोड़ा बँट जाता है। इसको **श्रमविभाग** या **कार्यविभाग** कहते हैं।

(२) जब काम सेलों में बँटता है तो उनकी आकृति, आकार, परिमाण में अंतर आ जाता है। इसको **रचनाविभेदन** या **रचनाभेद** कहते हैं।

मनुष्य के शरीर में कई प्रकार की सेलें हैं

कार्यविभाग और रचनाविभेदन के कारण प्राणियों के शरीर में कई प्रकार की सेलें पाई जाती हैं। जैसी जैसी सेलें हमारे शरीर में पाई जाती हैं हम उनको संक्षेपतः नीचे गिनाते हैं।

उनका विस्तार पूर्वक वर्णन आगे किया जायगा जब हम उन अंगों की रचना लिखेंगे जिनमें वे पाई जाती हैं:--(देखो चित्र ६)

(१) कुछ सेलें चपटी होती हैं ; मोटाई बहुत कम होती है ; इन सेलों को ऐसा समझिये जैसे ईंटों के मुक़ाबिले में खपरैल या स्लेट। (चित्र ६ में १) ये **सपाट** सेलें कहलाती हैं।

(२) कुछ सेलें ईंटों जैसी होती हैं ; इनकी लम्बाई अधिक होती है और चौड़ाई और मोटाई कम। ये **स्तंभाकार** Cc सेलें कहलाती हैं। कुछ सेलों में लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई बराबर होती है; इनको **घनाकार** सेलें कहते हैं। बहुत सी सेलें **बेलनाकार** होती हैं। ये सेलें अन्नमार्ग की भीतरी दीवार में पाई जाती हैं। (चित्र ६ में २)

(३) बहुत सी सेलों के एक सिरे पर बड़े सूक्ष्म सूक्ष्म कोमल बाल जैसे तार निकले रहते हैं। ये तार एक ओर को गति किया करते हैं। ऐसी सेलें कंठ, टेंटुवे, वायु प्रणालियों की भीतरी दीवार में और अन्य कई स्थानों में पाई जाती हैं; (देखो चित्र ६ में ३) ये **लोमश** सेलें हैं। Hair cell

(४) कुछ सेलें **गोलाकार** होती हैं। पास पास रहने से जो दबाव एक सेल का दूसरी सेल पर पड़ता है उसके कारण कुछ सेलें अठपहलू या छ:पहलू दिखाई देने लगती हैं। ऐसी सेलें यकृत (जिगर) में मिलती हैं। (चित्र ६ में १६)

(५) कुछ सेलें बीच में से मोटी होती हैं और उनके सिरे नोकीले होते हैं। ये **तर्काकार** सेलें कहलाती हैं। ये सेलें सौत्रिक

तंतु में पाई जाती हैं। (चित्र ६ में ५)

(६) कुछ सेलें ऐसी होती हैं जैसे छोटी मकड़ी; बीच में से मोटी होती हैं और इस मोटे गात्र से मकड़ी के पैरों के सदृश बहुत से तार निकले रहते हैं। ये **मर्कटकाकार** सेलें अस्थि **(हड्डी)** में पाई जाती हैं। (चित्र ६ में ६)

(७) बहुत सी सेलें सूची जैसी होती हैं। इनके कोनों और तली से बहुत से तार निकलते रहते हैं। ये **सूच्याकार** सेलें मस्तिष्क में पाई जाती हैं। (चित्र ६ में ७, ८)

(८) कुछ सेलें लहसुन या शलजम जैसी होती हैं; इनमें भी बहुत से तार होते हैं। ये भी मस्तिष्क में पाई जाती हैं। (चित्र ६ में १०)

(९) कुछ सेलें सर्प जैसी होती हैं। इनमें एक मोटा सिरा होता है जिससे एक लम्बा और पतला पूँछ जैसा भाग लगा रहता है। ये सेलें मनुष्य के अंड में बनती हैं और शुक्रकीट कहलाती हैं। (चित्र ६ में ११)

(१०) ऊपर गिनाई हुई सेलों के अतिरिक्त और कई प्रकार की सेलें होती हैं जैसे मांस सेलें (चित्र ६ में १३, १४, १५); रक्त की सेलें (चित्र ६ में १२); कारटिलेज की सेलें (चित्र ६ में १७); मज्जा की बहु मींगीवाली सेलें (चित्र ६ में १८); चक्षु, कर्णादि अंगों में पाई जानेवाली विशेष प्रकार की सेलें।

शरीर में सेलों के अतिरिक्त और वस्तुएँ भी हैं

जैसे मकान में केवल ईंटें ही नहीं होतीं; ईंटों को छोड़

कर और भी कई चीजें होती हैं जैसे चूना, लोहे के शहतीर, कड़ियाँ ; वैसे ही यद्यपि सेलें शरीर में मुख्य चीजें हैं, तथापि उनके अतिरिक्त और भी चीजें रहती हैं यथा— मकान के चूने की तरह शरीर में भी एक ऐसी वस्तु पाई जाती है जो सेलों के बीच में रहती है और उनको एक दूसरे से जोड़ने का काम देती है। यह मसाला कहीं अधिक होता है और कहीं इतना कम कि भली प्रकार मालूम भी नहीं होता।

तीसरी चीज़ जो शरीर में रहती है वह बहुत बारीक बारीक सूत्र हैं। इन सूत्रों के परस्पर मेल से जालियाँ और चादरें बन जाती हैं। इन जालियों के छिद्रों में सेलें फँसी रहती हैं। इन सूत्रों और सेलों से बनी हुई चादर को भिल्ली कहते हैं। कहीं सेलें अधिक होती हैं और कहीं कम। कई स्थानों में इन सूत्रों से निर्मित चादरों के पृष्टों पर पतली पतली सेलों की तहें (स्तरें) बिछी रहती हैं। कहीं कहीं जो सेलें इन सूत्रों के बीच में होती हैं उनमें चर्बी (वसा) भरी रहती है ; इन चादरों में ऐसी सेलों के लोथड़े रहते हैं। ऐसी चादर को वसामय भिल्ली कहते हैं। हमारी त्वचा के नीचे दो तीन स्थानों को छोड़कर हर जगह वसामय भिल्ली रहती है। बहुत से कोमल अंग भिल्लियों से ढके रहते हैं।

जिन सूत्रों से ये चादरें बनती हैं वे दो प्रकार के होते हैं :—

(१) श्वेत (चित्र ७ में २)
(२) पीले (चित्र ७ में १)

पीले सूत्र खींचने से बढ़ जाते हैं और फिर सिकुड़ कर पूर्व दशा को प्राप्त होते हैं अर्थात् वे रबड़ की भाँति स्थिति-स्थापक

चित्र ७ सौत्रिक तंतु
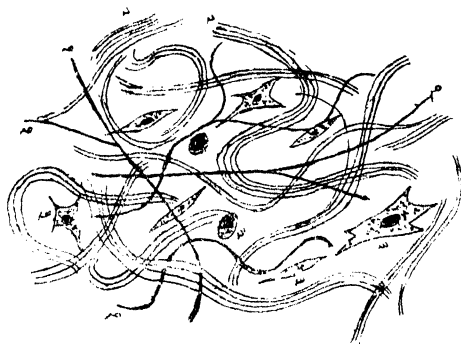
१ = पीले सूत्र २ = श्वेत सूत्र ३ = सेलें

होते हैं। श्वेत सूत्र ऐसे नहीं होते।

इन तीनों चीज़ों के अतिरिक्त शरीर में तरल भी रहता है। इस तरह से शरीर में चार प्रकार की चीज़ें रहती हैं :—

(१) सेलें
(२) मसाला जो सेलों को आपस में जोड़ता है
(३) सूत्र
(४) तरल

शरीर के अंग

सेलों, सूत्रों, सेलों को जोड़नेवाले मसाले और तरल से समस्त शरीर निर्मित है। शरीर के छोटे छोटे भागों को अंग

कहते हैं जैसे हाथ, पैर, जंघा, हृदय, अंत्र,चक्षु। कुछ अंग ठोस होते हैं जैसे बाहु, जंघा, यकृत; कुछ अंग पोले होते हैं और थैली के समान होते हैं जैसे मूत्राशय, शुक्राशय, आमाशय गर्भाशय; कुछ अंग नलियों के सदृश होते हैं जैसे रक्त की नलियाँ, पाचक रसों की नलियाँ, शुक्र की नलियाँ, मूत्र की नलियाँ।

शरीर की एक राज्य से तुलना

शरीर एक बड़े राज्य के समान है। राज्यशासन का कुछ काम कई विभागों के सपुर्द रहता है और ये विभाग अपने अपने कार्यों की पूर्ति के लिये उत्तरदाता होते हैं। ऐसे ही शरीर के भी कई विभाग हैं। कई कई अंगों से मिलकर एक एक विभाग बनता है। शरीर के विभागों को **संस्थान** कहते हैं। जिन अंगों द्वारा शरीर का पोषण होता है अर्थात जिन अंगों में भोजन पचता है और उससे आवश्यक पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं उन सब अंगों को मिलाकर एक संस्थान बनता है, और इसको पोषण संस्थान कहते हैं। ऐसे ही उन सब अंगों से जिनका कार्य रक्त को शरीर भर में भ्रमण कराने का है रक्त संचालक (या रक्त-वाहक) संस्थान बनता है। ऐसे ही और कई संस्थान हैं। एक संस्थान के सब अंग एक दूसरे के सहकारी तो होते ही हैं, सब संस्थान भी एक दूसरे के सहकारी होते हैं। यदि यह सह-व्यापार बिगड़ जाय तो शरीर का काम अच्छी तरह न हो।

शरीर के मुख्य संस्थानों के नाम

(१) **अस्थिसंस्थान**—हड्डियाँ।

(२) **संधिसंस्थान**—अस्थियों के जोड़।

(३) **मांससंस्थान**—मांस या पेशियाँ।

(४) **रक्त और रक्तवाहक संस्थान**—रक्त और वे अंग जिनकी सहायता से रक्त समस्त शरीर में भ्रमण करता है जैसे हृदय, रक्तवाहक नलियाँ।

(५) **श्वासोच्छ्वास संस्थान**—वे अंग जिनसे हम श्वास लेते हैं—नासिका, टेंटुआ, फुप्फुस आदि।

(६) **पोषण संस्थान**—इन अंगों द्वारा हम भोजन खाते और पचाते हैं—आमाशय, अंत्र, यकृत आदि।

(७) **मूत्रवाहक संस्थान**—इन अंगों में मूत्र बनता है और शरीर से बाहर निकलता है—वृक्क, मूत्राशय आदि।

(८) **वात या नाड़ी संस्थान**—इसमें मस्तिष्क और वे अंग हैं जिनके द्वारा मस्तिष्क शेष शरीर पर शासन करता है—मस्तिष्क, नाड़ियाँ, वातसूत्र आदि।

(९) **विशेष ज्ञानइन्द्रियाँ**—चक्षु, कर्ण, त्वचा, नासिका, जिह्वा।

(१०) **उत्पादक संस्थान**—वे अंग जिनके द्वारा संतान उत्पन्न की जाती है जैसे अंड, शिश्न, योनि, गर्भाशय आदि।

अध्याय २

शरीर के अङ्गों के नाम

शरीर के तीन बड़े भाग हैं :-

(१) **शिर** (सिर)

(२) **ग्रीवा** (गरदन)

(३) **धड़**; धड़ से ऊपर हाथ और नीचे पैर जुड़े रहते हैं।

शिर शरीर के उस भाग को कहते हैं जिसमें आँखें, कान, मुँह और नाक हैं। शिर और धड़ के बीच में जो भाग है वह ग्रीवा या गरदन कहलाता है। जहाँ ग्रीवा धड़ से जुड़ती है वहाँ से ऊपर की शाखाएँ (**ऊर्ध्व शाखाएँ**) निकलती हैं। धड़ के नीचे नीचे की शाखाएँ (**निम्न** या **अधो शाखाएँ**) लगी रहती हैं।

धड़ के दो भाग हैं— एक ऊपर का भाग जिसमें पसलियाँ हैं और जिसमें सामने स्तन होते हैं; इसको **वक्षःस्थल** या छाती कहते हैं। दूसरा नीचे का भाग जिसमें सामने सूँडी या नाभि होती है और जिसके नीचे के भाग में पुरुषों के **शिश्न** वा स्त्रियों के **भग** नामक अङ्ग होते हैं; इसको **उदर** या पेट कहते हैं।

शिर

शिर में सामने दो आखें या **चक्षु** (या **नेत्र**) होती हैं।

आँखों के बीच में **नासिका** या नाक होती है। हर एक आँख के ऊपर कुछ बाल होते हैं ये **भँवें** (या **भ्रु**) कहलाती हैं। दोनों भँवों (भ्रुओं) के ऊपर जो बालरहित शिर का भाग है उसको **मस्तक, ललाट** या **माथा** कहते हैं। नासिका के नीचे मुख (मुँह) होता है। मुख और नासिका के इधर उधर आँखों के नीचे गाल (**कपोल**) होते हैं। मुख दो होठों के बीच में एक रास्ता है; एक ओष्ठ ऊपर होता है (**ऊर्ध्व ओष्ठ**) यह ऊपर के जाबड़े या **ऊर्ध्व हनु** से लगा रहता है; दूसरा ओष्ठ नीचे होता है (**निम्न** या **अधोओष्ठ**) यह नीचे के जाबड़े या **निम्न हनु** से लगा रहता है। दोनों हनुओं में दाँत (**दन्त**) जड़े रहते हैं। प्रौढ़ावस्था में (जवान होने पर) प्रत्येक हनु में सोलह सोलह दाँत होते हैं। ऊपर नीचे मिला कर ३२ हुए। निम्न ओष्ठ के नीचे जो उभरा हुआ भाग दिखाई देता है वह ठुड्डी (ठोड़ी या **चिबुक**) कहलाता है। पुरुषों में ऊर्ध्व ओष्ठ की **त्वचा** (या खाल) में बाल होते हैं जिनको मूँछ कहते हैं; स्त्रियों में केवल रोवाँ सा होता है। नीचे के ओष्ठ और ठोड़ी पर जो पुरुषों में बाल उगते हैं उनको डाढ़ी या **कूर्च** कहते हैं (कभी कभी स्त्रियों में भी इस स्थान में बाल निकल आते हैं)*

*लेखक ने यूरोप में बहुत सी स्त्रियों के छोटी सी डाढ़ी और मूँछें देखी हैं।

मुँह के भीतर दाँतों की जड़ों में लाल **मसूड़े** होते हैं। मुँह खोला जाय तो ऊपर के दाँतों के पीछे एक छत दिखाई देगी। इसको **तालु** कहते हैं। तालु का पिछला भाग जो नीचे को हिलता हुआ दिखाई देता है, मुलायम है; अगले कठिन भाग को **कठिन तालु** और पिछले मुलायम भाग को **कोमल तालु** कहते हैं। इस कोमल तालु के पिछले भाग में एक खूँटी सी दिखाई देती है, इसको मुँह का काग, कौवा, अलिजिह्वा या **शुंडिका** कहते हैं।

नीचे के दाँतों के पीछे जिह्वा रहती है। जिह्वा का अगला भाग उसकी फूँग और पिछला उसकी जड़ कहलाता है। मुँह के भीतर जिह्वा की जड़ के दाहिनी और बाईं ओर दो महराबें दिखाई देती हैं। हर एक ओर महराबों के बीच में एक छोटा सा गुठली जैसा अंग रहता है; ये तालु की ग्रन्थियाँ हैं; कभी कभी ये सूजकर बड़ी हो जाया करती हैं, विशेषकर उन लोगों में जिनको जुकाम खाँसी बहुत होता है। मुँह का वह भाग जो महराबों के पीछे है, गला या **कंठ** कहलाता है। कंठ के ऊपर के भाग में कोमल तालु के ऊपर और उससे ढके हुए नासिका के पिछले छिद्र या **नकने** होते हैं। जिह्वा की जड़ के पीछे **स्वरयंत्र** का ऊपर का भाग रहता है जिसके ऊपर एक ढकना लगा रहता है, जिह्वा को खूब बाहर निकालने पर उस ढकने का कुछ भाग दिखाई देता है; स्वरयंत्र के पीछे भोजन जाने का रास्ता है।

आँखों के पीछे कान होते हैं। कान और माथे के बीच में जो भाग है वह **कनपुटी** या **शंख देश** कहलाता है। कानों के

पीछे मध्य रेखा में जो शिर का नीचे का भाग है वह **गुद्दी (मन्या)** कहलाता है। शिर के सब से ऊँचे भाग को (जहाँ चोटी रखाई जाती है) **शीर्ष** कहते हैं। शिर का ऊपर का भाग भीतर से खोखला होता है; इसके भीतर **मस्तिष्क** या **दिमाग़** रहता है। (चित्र ८)

ग्रीवा (चित्र ८)

निम्न हनु के नीचे गरदन के बीच में जो मोटी और कड़ी चीज़ है वह **स्वरयंत्र** है; यदि ठोड़ी ऊपर की जावे तो इसके ऊपर के किनारे और ठोड़ी के बीच में टटोलने से एक कड़ी चीज़ मालूम होगी यह **कंठिकास्थि** नामक हड्डी है। भोजन निगलते समय स्वरयंत्र ऊपर को उठता और फिर नीचे को आता दिखाई देता है। स्वरयंत्र से जो कड़ी नली नीचे को जाती है वह **टेंटुवा** है। (चित्र ८ में ट) स्वरयंत्र और टेंटुवे में होकर ही वायु फेफड़ों में जाती है। टेंटुवे के पीछे **अन्न प्रणाली** रहती है (चित्र ८ में अ) (बाहर से इसको टटोल नहीं सकते); टेंटुवे के दोनों ओर एक तिर्छा मुलायम डंडा सा होता है, यदि आप शिर बाएँ कन्धे की ओर मोड़ें तो दाहिनी ओर का डंडा साफ़ दिखाई देगा और दाहिनी ओर को मोड़ें तो बाईं ओर का दिखाई देगा; ये गरदन की दो बड़ी मांसपेशियाँ हैं। स्वरयंत्र के दोनों ओर इन पेशियों को अँगुली से दबाने पर एक फड़क मालूम होती है। जिस अंग में यह फड़क है वह **रक्त** की नली

है जो पेशी के नीचे रहती है। ग्रीवा के पिछले भाग को **कृकाटिका** कहते हैं; यहाँ मध्य रेखा में टटोलने से जो कड़ी चीजें मालूम होती हैं वे **रीढ़** की अस्थियाँ हैं।

वक्ष (वक्षःस्थल); उरस्थल (चित्र ९)

ग्रीवा के नीचे जो धड़ का ऊपर का भाग है उसको वक्षःस्थल कहते हैं। इसके दाहिनी ओर बाईं ओर भुजा हैं। ऊपर के भाग में गरदन के नीचे मध्यरेखा के इधर उधर टटोलने से जो कंधे की ओर को जाती हुई कड़ी चीज मालूम होती है वह हँसली नाम की अस्थि है; इसको **अक्षक** भी कहते हैं। दुबले मनुष्यों में यह दूर से उठी हुई देख पड़ती है। हँसली के नीचे कुछ दूरी पर **स्तन** होते हैं। स्त्रियों में ये बड़े होते हैं और इनमें दुग्ध बनता है। स्तन की घुंडी को **स्तनवृंत** या **चूचुक** कहते हैं। वक्ष के सामने मध्यरेखा में जो चौड़ी अस्थि लगी है उसको **वक्षोऽस्थि** कहते हैं। हँसली (अक्षक) के नीचे दोनों ओर वक्ष की दीवार में बारह बारह पसलियाँ होती हैं; पतले मनुष्यों में ये पसलियाँ दूर से दिखाई देती हैं, मोटे मनुष्यों में केवल दबा कर मालूम की जा सकती हैं। वक्ष के पीछे के भाग को **पीठ** (**पृष्ठ देश**) कहते हैं। पीठ का वह भाग जो कंधे के पास है उभरा रहता है और कंधे उचकाने से यह उभरा भाग हिलता दिखाई देता है, ये उभरे हुए भाग **खवे** कहलाते हैं। मध्यरेखा में टटोलने से पीठ में रीढ़ की अस्थियाँ मालूम होती हैं। वक्ष के भीतर तीन बड़े अंग

रहते हैं; इनमें से दो फेफड़े या **फुप्फुस** हैं एक दाहिना दूसरा बायाँ, इन दोनों के बीच में **हृदय** या दिल रहता है। इन अंगों के अतिरिक्त वक्ष में रक्त की नलियाँ, अन्नप्रणाली, टेंटुवा, वात-सूत्र और लसीका ग्रन्थियाँ रहती है।

चित्र १०
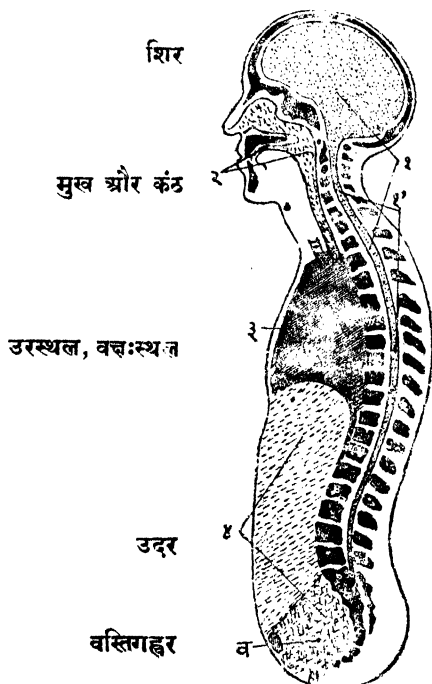
१ = कपाल और काशेरुकी नली

१' = काशेरुकी नली

हमारे शरीर की रचना—भाग १, पाँचवी आवृत्ति—प्लेट २

चित्र ८
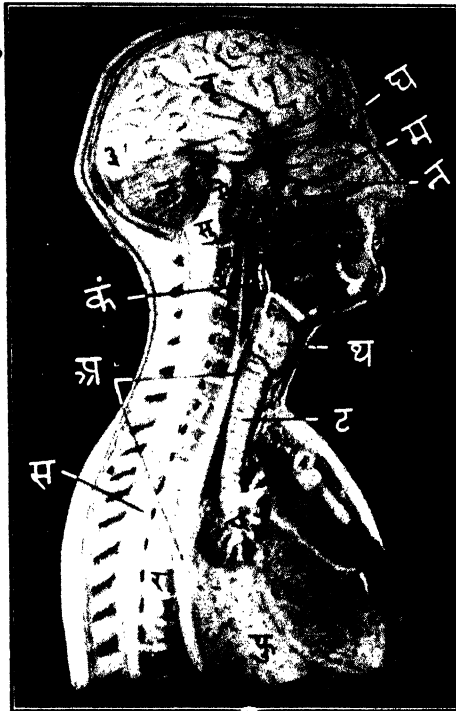
वृ = वृहतमस्तिष्क; १ = ललाट ध्रुव; २ = शंख ध्रुव

३ = पाश्चात्य ध्रुव; ल = लघु मस्तिष्क; से = सेतु;

सु = सुषुम्ना शीर्षक; घ = ऊर्ध्व शुक्तिका;

म = मध्य शुक्तिका; न = अधः शुक्तिका;

कं = कंठ; अ = अन्न प्रणाली; थ = स्वरयंत्र;

ट = टेंटुआ

पृष्ठ ३० के सम्मुख

चित्र ६

पृष्ठ ३१ के सम्मुख

उदर (चित्र ९, १०, ११)

धड़ एक बड़ा कोठा है जिसके चौड़ाई के रुख लगे हुए एक परदे द्वारा भीतर से दो भाग हो जाते हैं—ऊपर का कोष्ठ जिसमें पसलियाँ लगी हैं और जिसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं **वक्ष** कहलाता है। परदे के नीचे का कोष्ठ जिसमें पसलियाँ नहीं होतीं **उदर** या पेट कहलाता है। जिस परदे द्वारा धड़ के दो भाग हो जाते हैं वह मांस का होता है और उसको **वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी** कहते हैं। वक्षोऽस्थि के नीचे और पसलियों की महराब के बीच में जो भाग है उसको **कौड़ी देश** कहते हैं। कौड़ी के नीचे मध्य रेखा में सूँड़ी या **नाभि** है। मध्य-रेखा में नाभि के नीचे और जनन इंद्रियों के ठीक ऊपर टटोलने से एक कड़ी चीज मालूम होती है। यह दो हड्डियों का जोड़ (**भग संधि**) है, इस संधि के पीछे उदर में मूत्राशय (स्त्रियों में गर्भाशय भी) रहता है। उदर के पीछे के भाग को **कमर** (**कटि देश**) कहते हैं। मध्य-रेखा में टटोलने से इसमें रीढ़ की हड्डियाँ मालूम होती हैं।

उदर के सब से नीचे के भाग में संधि के नीचे पुरुषों वा स्त्रियों के विशिष्ट अंग होते हैं। पुरुषों में **शिश्न** (जिससे मैथुन किया जाता है और जिसमें से मूत्र निकलता है) होता है और शिश्न के नीचे और पीछे एक थैली होती है जिसको अंडकोष या वृषण कहते हैं। थैली में लटके हुए दो अंड होते हैं। स्त्रियों में इस स्थान में जो अंग होते हैं उन सब को

मिलाकर **भग** कहते हैं। भग में दो छिद्र होते हैं एक छोटा जिसमें से मूत्र निकलता है दूसरा बड़ा जो उसके नीचे रहता है, इस बड़े छिद्र द्वारा मैथुन किया जाता है, इसी में से मासिक स्राव निकलता है और बच्चा जन्म लेता है, यह **योनिद्वार** है। इन जनन इंद्रियों के पीछे पुरुष और स्त्री दोनों में चूतड़ों के बीच में एक छिद्र और होता है। इसमें से मल निकलता है, इसको **मलद्वार** या **चूति** कहते हैं।

उदर के भीतर भोजन पचाने और पाचक रस बनाने वाले अंग रहते हैं जैसे **आमाशय, अंत्र, यकृत्** (जिगर) **क्लोम, प्लीहा । वृक्क** (गुरदे) भी यहीं रहते हैं। उदर का नीचे का भाग एक कटोरे की शकल का है इसमें अंत्र का नीचे का या अंतिम भाग और मूत्र की थैली (**मूत्राशय**) और ऐसे अंग जो उत्पादन संस्थान के हैं रहते हैं। पुरुषों में मूत्राशय के पीछे शुक्र या वीर्य की थैलियाँ (**शुक्राशय**) रहती हैं। **स्त्रियों में** मूत्राशय के पीछे **गर्भाशय** (रहम) रहता है; इस अंग के भीतर गर्भस्थिति होती है। इस अंग के इधर-उधर दो छोटे-छोटे अंग और होते हैं जिनको **डिम्ब** ग्रन्थियाँ कहते हैं।

उदर के इस नीचेवाले कटोरे जैसे भाग को जिसमें उपर्युक्त अंग रहते हैं **वस्तिगह्वर** कहते हैं।

ऊर्ध्व शाखाएँ (चित्र १२)

दाहिनी शाखा (भुजा) वक्ष के दाहिनी ओर, बाईं शाखा बाईं ओर रहती है। भुजा का वह भाग जो गरदन के समीप

(Bardeleben & Haeckel's Atlas)

पृष्ठ २४ के सम्मुख
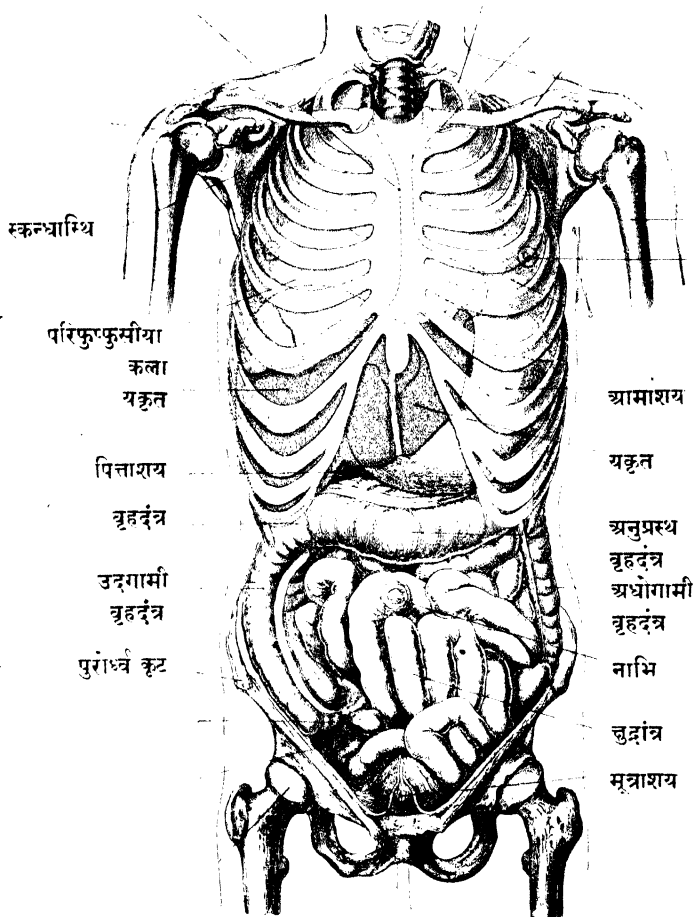
है उभरा हुआ और मोटा होता है और **स्कंध** या **कन्धा** कहलाता है। कन्धे के नीचे **बाहु** (या **प्रगंड**) होती है। बाहु और वक्ष के बीच में कन्धे के नीचे एक गढ़ा होता है यहाँ की त्वचा में कुछ बाल होते हैं; इस स्थान को बग़ल या **कक्ष** (या कक्षतल) कहते हैं। बाहु के नीचे कोहनी या **कूर्पर** है और कोहनी के नीचे **अग्रबाहु** या **प्रकोष्ठ** है। अग्रबाहु कोहनी के स्थान पर बाहु के ऊपर मुड़ जाती है। अग्रबाहु के नीचे कलाई या पहुँचा होता है। कलाई हाथ और अग्रबाहु के बीच के भाग को कहते हैं। पहुँचे के नीचे हाथ या **हस्त** रहता है। हस्त में सामने की ओर एक गढ़ा होता है जिसको **हस्ततल** या **करतल** या हथेली कहते हैं। हथेली के नीचे पाँच अंगुलियाँ होती हैं जिनमें से एक सब से मोटी होती है इसको अंगुष्ठ कहते हैं; एक सब से पतली और छोटी होती है इसको **कनिष्ठा** कहते हैं। शेष अंगुलियों में से जो अंगुष्ठ के निकट है उसको **प्रदेशिनी** या **तर्जनी** कहते हैं और जो कनिष्ठा के पास है वह **अनामिका** कहलाती है। अनामिका और तर्जनी के बीच की अंगुली को **मध्यमा** कहते हैं। अंगुष्ठ के दो अंश होते हैं, और अंगुलियों के तीन तीन। इन अंशों को **पोर्वे*** कहते हैं, प्रत्येक अंगुली के सिरे पर एक **नख** या नाखून होता है। हाथ के पिछले भाग को करभ कहते हैं।

* संस्कृत शब्द पर्व है।

चित्र १२

भ्रु
कपोल
नासावंश
पेशी
चिबुक
प्रगंडास्थि का शिर
चूचुक
मध्य रेखा
जान्वस्थि
अनुजंघास्थि का शिर
अर्बुद
अन्तर्गुल्फ
पार्ष्णि

निम्न (अधो) शाखाएँ (चित्र १२)

उदर के नीचे निम्न शाखाएँ होती हैं। **घुटने** और उदर के बीच में जो भाग है उसको **ऊरु** या जाँघ कहते हैं। जाँघ उदर पर मुड़ जाती है। जिस स्थान पर यह गति हो सकती है अर्थात् जहाँ से जाँघ का आरंभ होता है वह भाग कुछ दबा रहता है; यह स्थान भग या शिश्न के इधर उधर होता है और इसको **वंक्षण** (या जंघासा) कहते हैं। वंक्षण में अंगुली से टटोलने पर छोटी छोटी गुठलियाँ मालूम होती हैं ये **लसीका-ग्रन्थियाँ** हैं। वंक्षण के मध्य में दबाने पर एक फड़क भी मालूम होती है; यह ऊरु या जाँघ की रक्त की नली (**धमनी**) की फड़क है।

पीछे कमर के नीचे मध्य रेखा में एक दरार होती है। इस दरार के इधर उधर दो उभार होते हैं; इन उभारों को चूतड़ कहते हैं। चूतड़ों के बीच में इस दरार में मलद्वार होता है। चूतड़ों के पास जो जाँघ का पिछला मोटा भाग है वह **कूल्हा** या **नितंब** कहलाता है; अधिक वसा (चर्बी) के कारण स्त्रियों के कूल्हे पुरुषों के कूल्हों से ज़्यादा मोटे होते हैं।

जिस स्थान पर टाँग जाँघ पर पीछे को मुड़ जाती है वह **जानु** है। जानु के सामने एक हिलनेवाली कड़ी चीज़ है; यह **पाली** या चपनी नाम की अस्थि है।

जानु के नीचे टाँग है, इसको जंघा भी कहते हैं; टाँग के

नीचे पैर या **पद** है। पैर सामने और पीछे को मुड़ सकता है, जिस स्थान पर यह गति होती है उसको **टखना** कहते हैं। टखने में इधर उधर दो उभार होते हैं ये गट्टे या गुल्फ कहलाते हैं। टखने के नीचे जो पीछे को निकला हुआ पैर का भाग है वह पार्ष्णि या एड़ी कहलाता है। पैर के नीचे एक गढ़ा सा होता है यह **तला** (पादतल) है। पैर में पाँच अंगुलियाँ हैं इनके नाम वही हैं जो हाथ की अंगुलियों के। हाथ के समान अंगुष्ठ में दो, और शेष अंगुलियों में तीन तीन पोर्वे होते हैं।

शरीर की स्थूल रचना

शरीर के किसी अंग की सूक्ष्म बनावट जानने के लिये एक अणुवीक्षण की आवश्यकता है। यंत्रों द्वारा इस अंग के बहुत पतले पतले पन्ने काटे जाते हैं और फिर ये पन्ने अणुवीक्षण द्वारा देखे जाते हैं। पन्ने काटने से पहले उस अङ्ग को कई विशेष साधनों से इस योग्य बना लेना होता है कि उसके पन्ने भली प्रकार कट सकें। बनावट अच्छी तरह समझने के लिये इन पन्नों को कई प्रकार के रंगों से रँगने की भी आवश्यकता होती है। परन्तु स्थूल बनावट जानने के लिये इतने साधनों की आवश्यकता नहीं है; यह शस्त्रों द्वारा अङ्ग को काट छाँट कर जानी जा सकती है। जिस विद्या में हमको शरीर की बनावट का ज्ञान होता है वह **व्यवच्छेद विद्या (शवच्छेद विद्या)** या छेदन शास्त्र कहलाती है क्योंकि यह विद्या शरीर को काट छाँटकर छोटे छोटे टुकड़े करके सीखी जाती है। जो वैज्ञानिक इस विद्या में निपुण होता है उसको **व्यवच्छेदक** कहते हैं।

जो विद्या हमको अङ्गों के कार्य बताती है उसको **इन्द्रिय-व्यापार शास्त्र** कहते हैं। यदि हम कहें कि हृदय शरीर के अमुक स्थान में अवस्थित है और उसका यह आकार और परिमाण है और उसकी ऐसी रचना है तो हृदय का यह सब वृत्तांत छेदन शास्त्र में आवेगा। परन्तु जब हम यह बतलायें कि हृदय शरीर में ये ये कार्य करता है तब ये बातें इन्द्रियव्यापार शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली होंगी।

किसी अङ्ग का छेदन किये बिना अर्थात् उसकी स्थूल वा सूक्ष्म रचना जाने बिना उसके कार्य भली प्रकार नहीं जाने जा सकते। इस कारण किसी अङ्ग के कार्य बतलाने से पहले उसकी रचना बतलानी आवश्यक है।

वैज्ञानिकों ने अङ्गों की रचना तो अच्छी तरह से जान ली है परन्तु वे सब अङ्गों के कार्य पूर्ण रीति से अभी तक नहीं जान सके हैं। किसी किसी अङ्ग के कार्यों के विषय में बड़े बड़े वैज्ञा-निकों में आपस में कुछ मतभेद भी है। हम इस लघु पुस्तक में केवल वही बातें लिखेंगे जिनको सब वैज्ञानिक मानते हैं। मतभेद की बातें लिखकर पाठकों को भ्रम में न डालेंगे।

बाहु की स्थूल रचना

शरीर की स्थूल बनावट मृत शरीर को शस्त्रों द्वारा विधि-पूर्वक काटने से सीखी जाती है। मान लो कि हम बाहु की बनावट जानना चाहते हैं:—बाहु के ऊपर बालों वाली जो चीज़ मढ़ी हुई है उसको **त्वचा** (खाल) कहते हैं। हम सब से पहले चाकू से इस त्वचा में एक लम्बा चीरा देते हैं अर्थात् उसको काटते हैं (जीवित शरीर में त्वचा को काटने

से एक लाल तरल निकलता है इसको **रक्त** कहते हैं यह मृत शरीर में नहीं निकलता); चीरा देकर और फिर कटे हुए सिरों को चिमटी से पकड़कर हम चाकू की सहायता से त्वचा को उसके नीचे रहनेवाली चीजों से धीरे धीरे अलग करते हैं। अलग करने पर हमको पता लगता है कि त्वचा बाहु के ऊपर तकिये के गिलाफ की तरह नहीं चढ़ी हुई है प्रत्युत वह अपने नीचे की चीजों से उसी तरह जुड़ी हुई है जैसे कि किसी फल में छिलका गूदे से जुड़ा रहता है।

त्वचा के हटाने पर उसके नीचे पड़ी हुई एक पीली पीली चिकनाईदार वस्तु दिखाई देती है; वैज्ञानिक इस पीली वस्तु को **वसा** कहते हैं; साधारण बोलचाल में इसको चर्बी कहते हैं। मोटे मनुष्यों में पतले मनुष्यों की अपेक्षा अधिक चर्बी होती है। यदि हम सँभालकर काटें तो हम इस चर्बी को त्वचा की भाँति एक तह में उठा सकते हैं। इस चर्बी को काट छाँट कर देखने पर मालूम होता है कि वास्तव में चर्बी के छोटे छोटे टुकड़े कुछ सूत्रों के बीच में फँसे रहते हैं; इन सूत्रों के परस्पर मेल से एक जाली सी बन जाती है जिसके छिद्रों में ये वसा की गाठें फँसी रहती हैं। इस जाली को विज्ञान की परिभाषा में **झिल्ली** (या कला) कहते हैं; वसा से भरी रहने के कारण वह **वसामय** झिल्ली कहलाती है।

यदि हम वसामय झिल्ली को और ध्यान से काटें तो उसमें रमे हुए कुछ श्वेत रंग के मोटे और पतले सूत्र दिखाई देंगे। ये उन सूत्रों से जिनसे झिल्ली निर्मित है भिन्न हैं. और खींचने पर शीघ्र नहीं टूटते, ये **वात** (या **नाड़ी**) सूत्र हैं और मस्तिष्क

से आकर त्वचा की ओर जा रहे हैं, इनकी सूक्ष्म शाखाएँ त्वचा से लगी हुई देखी जा सकती हैं।

त्वचा और वसा के बीच में या वसा के भीतर कुछ चौड़ी डोरियाँ भी दिखाई देती हैं; काटने पर ये भीतर से खोखली मिलती हैं; ये वे डोरियाँ हैं जो जीवित शरीर में त्वचा में चमकती हुई नीली सी दिखाई देती हैं; इनमें रक्त रहता है। ये एक प्रकार की **रक्त की नलियाँ** हैं।

यदि हम वसामय झिल्ली को धीरे धीरे एक तह में हटा दें तो हमको उसके नीचे लाल लाल चीज चमकती हुई दिखाई देगी; यह **मांस** है। वसामय झिल्ली और मांस के बीच में अर्थात् मांस को ऊपर से ढाँके हुए एक पतली झिल्ली रहती है जिसमें वसा नहीं होती। यह **मांस आवरक** झिल्ली है। यह झिल्ली भी सूत्रों से निर्मित है। शरीर में मांस छोटे छोटे बंडलों में विभक्त रहता है। ये टुकड़े आपस में केवल कुछ सूत्रों द्वारा ही जुड़े रहते हैं; इस सौत्रिक वस्तु को हटाकर हम मांस के टुकड़ों को पृथक् पृथक् कर सकते हैं; छेदन शास्त्र की परिभाषा में मांस के एक टुकड़े को जो और टुकड़ों से सहज ही बिना मांस को चीरे और मांस-सेलों को तोड़े पृथक् किया जा सकता है **मांसपेशी** या केवल पेशी कहते हैं।

किसी अंग का कुल मांस प्रायः एक से अधिक पेशियों के आपस में मिले रहने से बनता है। मांसपेशियों की लम्बाई चौड़ाई भिन्न भिन्न होती है। कोई मोटी और छोटी होती है।

कोई पतली और लम्बी। प्रत्येक मांसपेशी वास्तव में छोटे छोटे गट्ठों का एक समूह होती है, ये छोटे छोटे गट्ठे सौत्रिक तन्तु द्वारा जुड़े रहते हैं। मांसपेशियों के बीच में झिल्ली रहती है, कहीं कहीं कुछ वसा भी होती है।

यदि हम ध्यान से देखें तो मांसपेशियों के बीच में या उनके भीतर घुसती हुई या उनसे बाहर आती हुई कुछ पतली और मोटी श्वेत डोरियाँ मिलेंगी। इनमें से कुछ भीतर से खोखली होती हैं; ये रक्त की नलियाँ हैं। कुछ ठोस होती हैं और दबाने से कड़ी मालूम होती हैं; ये **वात-रज्जुएँ** (या **नाड़ियाँ**) हैं। वसा में जो वातसूत्र देखे थे वे इन वातरज्जुओं से ही निकल कर गये थे।

यदि हम मांसपेशी को हटाना चाहें तो मालूम होगा कि उसको हटाना सहज नहीं; वह कहीं न कहीं अपने नीचे रहने वाली चीज़ों से जुड़ी हुई है। अब हम मांस को काट कर हटायें तो उसके नीचे एक बहुत कठोर चीज़ मिलेगी, यह चीज़ वसा और मांस की तरह चाकू से शीघ्र नहीं कटती, यह **अस्थि** है। बाहु में केवल एक ही अस्थि होती है। अस्थि के ऊपर एक पतली झिल्ली लगी रहती है; इसको **अस्थ्यावरक** या **अस्थिवेष्ट** कहते हैं। अस्थि आरी से कट सकती है। काटने पर वह बीच में से खोखली दिखाई देगी; उसके भीतर जो चिकनाईदार गुलाबी मायल पीला सा गूदा भरा रहता है उसको मज्जा कहते हैं।

चित्र १३ बाहु का व्यत्यस्त काट
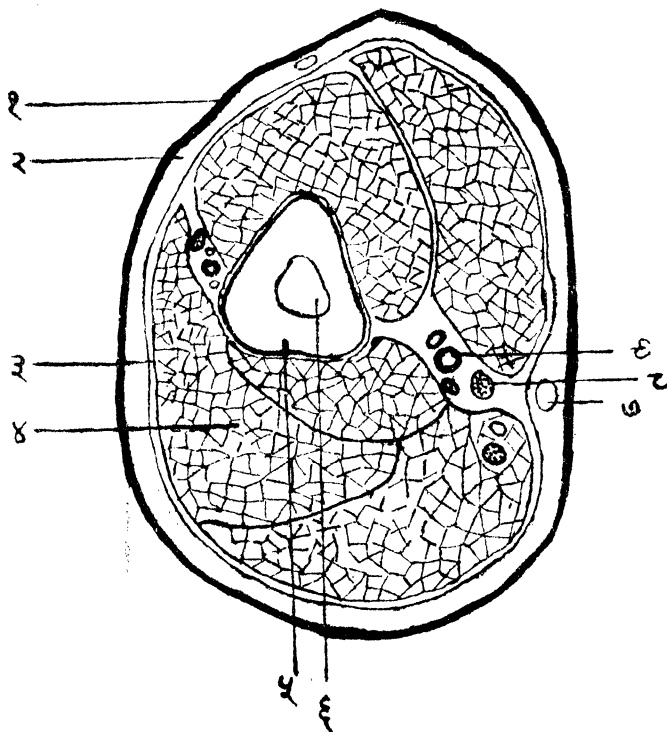
यदि हम बाहु को आरी से मोटाई के रुख बीच में से काट डालें तो कटे हुए भाग में (व्यत्यस्त काट में) ये चीजें दिखाई देंगी (देखो चित्र १३)

(१) मध्य में कटी हुई अस्थि है जिसके ऊपर अस्थिवेष्ट चढ़ा है (चित्र १३ में ५); अस्थि के भीतर मज्जा है (चित्र १३ में ६)

(२) अस्थि के बाहर मांसपेशियाँ है (चित्र १३ में ४)

(३) मांस में और मांसपेशियों के बीच में वात-रज्जुएँ (चित्र १३ में ८) वा रक्त की नलियाँ (चित्र १३ में ९) हैं।

(४) मांस के ऊपर मांसावरक (चित्र १३ में ३)

(५) वसामय झिल्ली (चित्र १३ में २) और उसमें रमते हुए वातसूत्र वा रक्त की नलियाँ (चित्र १३ में ७)

(६) सब से बाहर त्वचा (चित्र १३ में १)

शरीर के तंतु

छेदन शास्त्र के अनुसार कुल शरीर सेलों (वा मसाला) सूत्रों और तरल से निर्मित है। परन्तु इंद्रियव्यापार शास्त्र की दृष्टि से देखने पर इन सेलों, सूत्रों वा तरल से बने हुए शरीर भर में चार प्रकार की चीज़ें मिलती हैं। इनमें से हर एक का जुदा-जुदा विशेष गुण है। ये चीज़ें शरीर के **तंतु** कहलाती हैं। शरीर के किसी भाग को लें उसकी बनावट में इन तंतुओं में से कोई न कोई तंतु अवश्य मिलेगा। बहुधा सभी तंतु थोड़े थोड़े हर एक अंग में पाये जाते हैं :—

(१) **मांसतंतु**—आवश्यकतानुसार सिकुड़कर छोटा हो जाना और फिर अपने पूर्व परिमाण को प्राप्त कर लेना इस तंतु का विशेष गुण है। इस तंतु से शरीर की सब गतियाँ होती हैं।

(२) **वाततंतु**—मस्तिष्क (दिमाग़) और मस्तिष्क से निकली हुई नाड़ियाँ वा वातसूत्र इसी तंतु से बनते हैं। वातसूत्र बिजली के तारों के समान काम करते हैं; वे मस्तिष्क की आज्ञा और अंगों को और इन अंगों की सूचनाएँ मस्तिष्क को ले

जाते हैं। सोचने विचारने का काम मस्तिष्क करता है। यह गुण किसी और तंतु में नहीं है।

(३) **बंधक तंतु**—इस तंतु से एक अंग दूसरे अंग से बँधा रहता है; शरीर के कोमल भागों को सहारा भी मिलता है। बंधक तंतु कई प्रकार के हैं जैसे :—

(१) सौत्रिक तंतु—जिसमें झिल्लियाँ और बंधन बनते हैं;

(२) वसामय सौत्रिक तंतु—इस तंतु में सूत्रों के बीच में वसा रहती है ;

(३) अस्थि—जो सूत्रों, सेलों और खनिज पदार्थ से बनती है। यह शरीर के कोमल भागों को सहारा देती है; उससे मांस-पेशियाँ लगी रहती हैं ;

(४) कारटिलेज और तरुण अस्थि—ये अस्थि का सा काम देती हैं।

(५) रक्त—रक्त तो तरल होता है फिर यह बाँधने जोड़नेवाले तंतुओं की श्रेणी में क्यों रक्खा गया ? उत्तर यह है कि रक्त शरीर के एक अंग का दूसरे अंग से विशेष विधि से सम्बन्ध कराता है; वह एक अंग से पोषणाकरक पदार्थ लेकर दूसरे अंग को देता है; बहुत से अंगों से मलिन पदार्थ इकट्ठे करके ऐसे अंगों में ले जाता है जो इन पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल देते हैं। यदि शरीर के अंगों में इस प्रकार सम्बन्ध कराने वाला यह तरल न रहे तो सब काम क्षण भर में बंद हो जावें।

(४) **पृष्ठाच्छादक तंतु**—अंगों के पृष्ठों या तलों को ढाँकनेवाला तंतु—यह तंतु पृष्ठों पर रहता है और पृष्ठ के नीचे

रहनेवाली चीज़ों की रक्षा करता है। इस तंतु में केवल सेलें ही होती हैं; सूत्र नहीं होते। इन सेलों में मांस या वातसेलों का सा कोई विशेष गुण नहीं होता। सेलों की एक या एक से अधिक तहें एक दूसरे के ऊपर बिछी रहती हैं। (चित्र ६ में ३, ४); त्वचा का ऊपर का भाग इसी तंतु से निर्मित है। ओष्ठों और गालों के भीतरी लाल पृष्ठ पर भी यही तंतु रहता है। जितनी थैलियाँ और मार्ग हैं उनके भीतरी पृष्ठों पर भी ऐसा ही तंतु रहता है।

अध्याय ३

अस्थि संस्थान

यदि हम त्वचा, वसा, मांस वा मांस और सौत्रिक तंतु से निर्मित कोमल अंगों को काट-छाँट कर शरीर से निकाल दें तो शरीर का दृढ़ ढाँचा बाक़ी रहेगा। जब मृत शरीर पृथिवी में गाड़ दिया जाता है तो मांसादि चीज़ें शीघ्र सड़ कर मिट्टी में मिल जाती हैं परन्तु उसका ढाँचा बरसों तक पड़ा रहता है। यह ढाँचा बहुत से छोटे और बड़े वा मोटे और पतले टुकड़ों के आपस में सौत्रिक तंतु द्वारा जुड़ने से बनता है। इस कुल ढाँचे को कंकाल कहते हैं और उसके टुकड़ों को **अस्थियाँ** या हड्डियाँ। कंकाल का दूसरा नाम **अस्थिपंजर** है। (देखो चित्र १४ और २६)

शरीर के १०० भागों में १६ भाग कंकाल के होते हैं। यदि मनुष्य का भार १$\frac{1}{2}$ मन हो तो उसके कंकाल का भार ९$\frac{3}{5}$ सेर के लगभग होगा।

अन्य स्तनधारियों के कंकाल

मनुष्य का कंकाल अन्य स्तनधारियों के कंकाल से मिलता जुलता है जैसा कि घोड़े, गाय, बकरे, हाथी, शेर और ऊंट जैसे जिराफ नामक जानवर के कंकालों के चित्रों से (चित्र १५, १६, १७, १८, १९, २०) विदित है। इन जानवरों की अस्थियों के नाम प्रायः वही होते हैं जो मनुष्य की अस्थियों के।

चित्र १४ मनुष्य का कंकाल
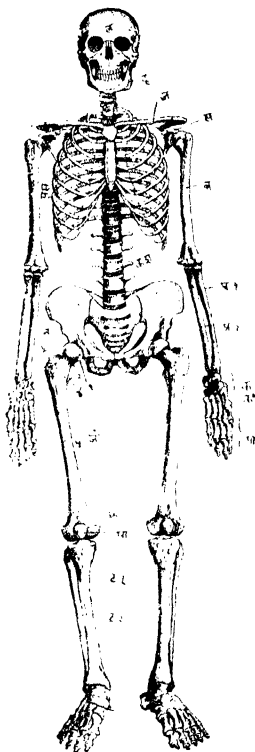
ल = ललाटास्थि
ह = अधोहन्वास्थि
ब = प्रगंडास्थि
प्र१ = बहिःप्रकोष्ठास्थि
प्र२ = अंतःप्रकोष्ठास्थि
स = स्कन्धास्थि
ट१ = जंघास्थि
ट२ = अनुजंघास्थि
न = नितंबास्थि
पस = पर्शुका
कश = कशेरु
क = कलाई की अस्थियाँ
क' = करभास्थि
पो = पोर्वे
जं = ऊर्वस्थि
पा = पाली
ज = अक्षक

(Hæckel)

चित्र १५ घोड़े का कंकाल
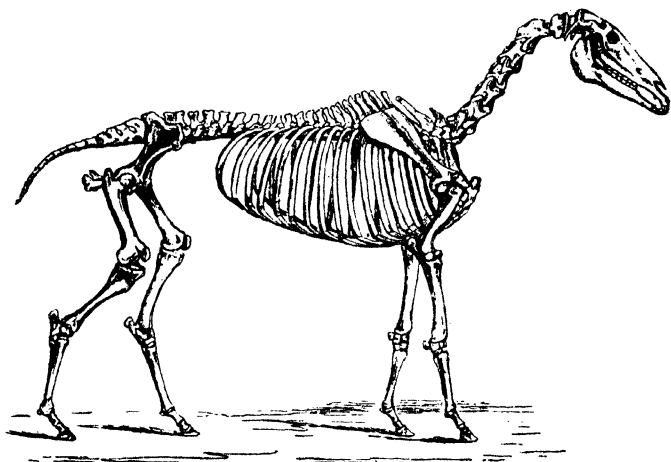
चित्र १६ गाय का कंकाल
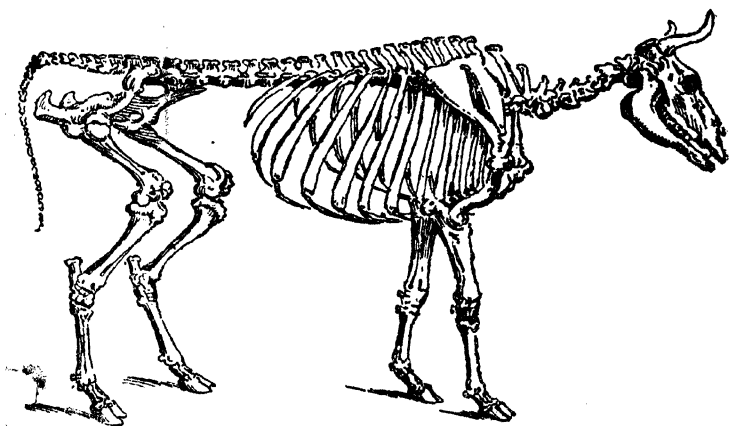
From Protheroe's Handy Natural History by kind permission.

चित्र १७ बकरे का कंकाल
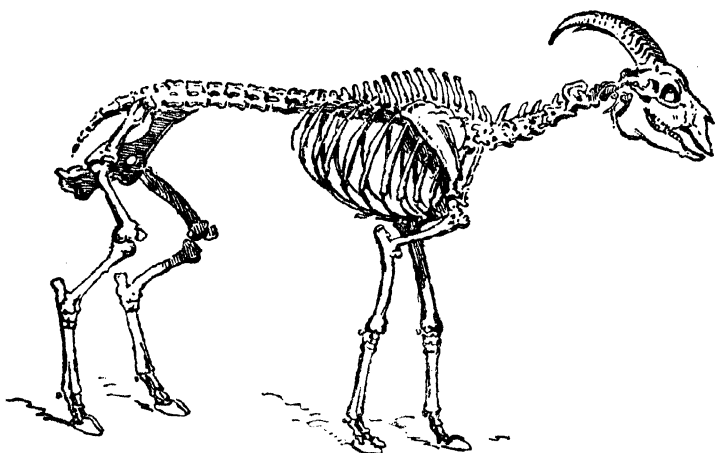
चित्र १८ हाथी का कंकाल
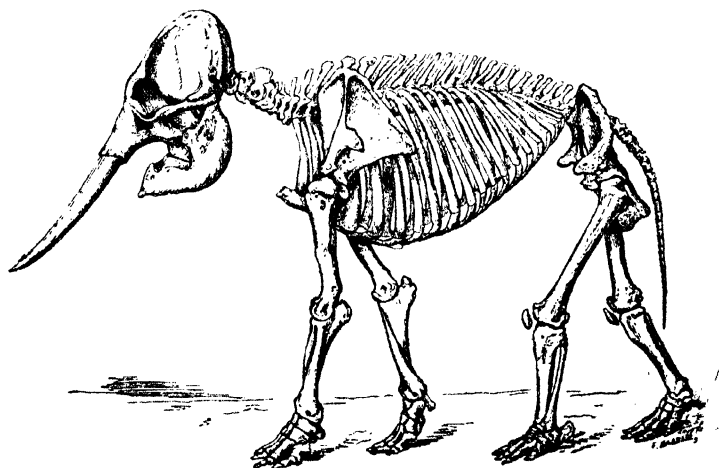
Protheroe's Handy Natural History.

चित्र १६ ज़िराफ का कंकाल

From Protheroe's Handy Natural History.

चित्र २० शेर का कंकाल
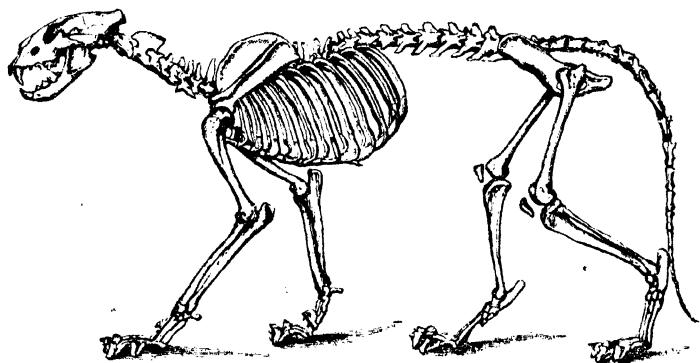
From Protheroe's Handy Natural History.

अस्थियों के कार्य

अस्थियों से शरीर में दृढ़ता आती है; दृढ़ता से शरीर की शकल एक सी रहती है; दबाव पड़ने से अंगों की आकृति में बहुत अन्तर नहीं आ सकता; यदि टाँगों में अस्थि न होती तो खड़ा होना असंभव होता, टाँग की आकृति दबाव के अनुसार तुरंत बदल जाती। जब टाँग या जाँघ की अस्थियाँ टूट जाती हैं तब उस टाँग के सहारे खड़ा होना असंभव हो जाता है क्योंकि अस्थि के टूट जाने से शरीर का भार संभारने के लिये जितनी दृढ़ता की आवश्यकता है वह नहीं रहती।

अस्थियाँ कोमल अंगों को सहारा देती हैं और उनकी रक्षा करती हैं। कई अस्थियों के परस्पर मेल से शरीर में कोष्ठ भी बन जाते हैं जिनके भीतर कोमल अंग सुरक्षित रहते हैं। मस्तिष्क आठ अस्थियों से बने हुए एक डिब्बे के भीतर रहता है। वक्ष की दीवारें अस्थियों के कारण मजबूत होती हैं: इस कोष्ठ में भी शरीर के तीन बड़े आवश्यक कोमल अंग रहते हैं। उदर के वस्तिगह्वर नामक भाग की दीवरें भी अस्थि से बनी हैं।

मांसपेशियाँ बहुधा अस्थियों से लगी रहती हैं और उन्हीं के सहारे से सिकुड़ कर शरीर में गतियाँ उत्पन्न करती हैं।

अस्थियों की संख्या

प्रौढ़ मनुष्य के कंकाल में (२५—२६ वर्ष की आयु वाले मनुष्य के शरीर में) छोटी बड़ी कुल २०६ अस्थियाँ होती हैं। जितनी अस्थियाँ पुरुष के शरीर में हैं उतनी ही स्त्री के शरीर में होती हैं।

कंकाल के भाग

कंकाल के पाँच भाग हैं :—

(१) **कर्पर** या **करोटि** या **खोपड़ी**—यह २२ अस्थियों से बनी है।

(२) **पृष्ठवंश, मेरुदंड** या **रीढ़** या **कशेरु**—यह २६ अस्थियों से बना है।

(३) **ऊर्ध्व शाखाएँ**—प्रत्येक शाखा में ३२ अस्थियाँ हैं दोनों में ६४।

(४) **निम्न शाखाएँ**—प्रत्येक शाखा में ३१ अस्थियाँ हैं दोनों में ६२।

(५) **वक्षःस्थल** में २५ विशेष अस्थियाँ हैं।

(६) ग्रीवा में स्वर यंत्र और ठोढ़ी के बीच में एक **कंठिकास्थि** नाम की अस्थि होती है। कर्ण में तीन छोटी अस्थियाँ होती हैं; दोनों ओर ६।

कुल मिलकर = २०६

अस्थियों के विषय में कुछ साधारण बातें

(१) रंग-साफ़ की हुई अस्थि धूसर श्वेत होती है। जीवित अवस्था में रक्त के कारण रंग में कुछ लाली रहती है।

(२) आकार, परिमाण—सब अस्थियों की आकृति, आकार परिमाण एक जैसा नहीं होता। कोई अस्थि लम्बी होती है जैसे जंघा और बाहु की; कोई छोटी होती हैं जैसे कलाई की; कुछ अस्थियाँ सपाट और चौड़ी होती हैं जैसे खोपड़ी की कई अस्थियाँ। कुछ अस्थियाँ विरूप होती हैं उनकी गिनती न लम्बी अस्थिओं में हो सकती है न छोटी और न सपाट अस्थियों में; इनमें कई प्रकार के उभार होते हैं जैसे पृष्ठवंश की अस्थियाँ।

अस्थियों की नामकरणविधि

(१) बहुत सी अस्थियों के नाम देशानुसार रक्खे जाते हैं जैसे जो अस्थि जाँघ या ऊरु में होती है वह ऊर्वस्थि कहलाती है; जो कूल्हे या नितंब में है वह नितंबास्थि कहलाती है; ऐसे ही नासिका की अस्थि को नासास्थि कहते हैं।

(२) कुछ अस्थियों के नाम उनकी आकृति के अनुसार रक्खे जाते हैं जैसे त्रिपार्श्विकास्थि; मटराकार अस्थि (जो मटर के सदृश है); जतूकास्थि (जिसकी शकल जतूक जैसी होती

है); घनास्थि; सीपाकृति या शुक्तिकास्थि (सीपी जैसी) ।

(३) किसी किसी अस्थि में कोई ऐसी विशेषता होती है जो किसी और अस्थि में न हो जैसे बहुछिद्र अस्थि (जिसमें बहुत से छिद्र हों)

(४) दिशा अनुसार भी नाम रक्खे जाते हैं जैसे खोपड़ी की अस्थियों के:—पार्श्विकास्थि; पश्चात् अस्थि ।

(५) और कई कारणों से भी नाम पड़ जाते हैं जैसे कशेरुका (रीढ़ की हड्डी); अक्षक ।

अब हम हर एक अस्थि का थोड़ा थोड़ा वर्णन करेंगे ।

अस्थि सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या

प्रवर्द्धन = अस्थि का बाहर को निकला हुआ भाग Process.
कराटक = नोकीला प्रवर्द्धन Spine.
अर्बुद = अस्थि का उभरा हुआ भाग Protuberance
कूट = उभार Process. शिखरक = चोटी जैसा उभार
पिण्डक = उभार Tuberosity अधोभाग = अस्थि की तली या चौड़ा भाग
तीरणिका = उभरी हुई रेखा Raised line
खात = गढ़ा Fossa. छेद या भंग = अस्थि की घाई
पीठ = गढ़ा Depression शोफ; उद्भेद = छोटे उभार
उलूखल = गहरा गढ़ा Deep fossa.
परिखा = दो उभरी हुई रेखाओं के बीच की नाली या अंतर
स्थालक = कम गहरा गड्ढा जहाँ कोई और अस्थि आकर मिले; कभी कभी इस शब्द का प्रयोग सपाट या उभरे स्थान के लिये जहाँ दूसरी अस्थि आकर मिले, होता है ।
शिर = अस्थि का गोल भाग जिसके द्वारा वह और किसी अस्थि से मिली रहती है

ग्रीवा = शिर के नीचे का कुछ दबा हुआ भाग
गात्र, शरीर या पिंड = लम्बी अस्थियों का बीच का लम्बा भाग; छोटी अस्थियों का मोटा या स्थूल भाग
धारा = किनारा
कोण = कोना
तुण्ड = चोंच जैसा उभार
उदरतल = सामने का या उदर की ओर का पृष्ठ या भाग
पृष्ठ तल = पिछला या पीठ की ओर का भाग
कोटर = अस्थियों का खोखला और वायु से भरा हुआ भाग
—आनुगा = ओर का; जैसे कक्षानुगा = कक्ष की ओर का
—आन्तरिक = अन्तर में रहने वाला जैसे अस्थ्यान्तरिका = दो अस्थियों के अन्तर या बीच में रहने वाला
दूरस्थ = अस्थियों का वह भाग या तल या सिरा जो मध्य रेखा या धड़ के निकट रहता है।
समीपस्थ = अस्थियों का वह भाग या तल जो मध्य रेखा या धड़ के निकट रहता है; लम्बी अस्थियों का ऊपर का सिरा समीपस्थ भाग और नीचे का सिरा दूरस्थ भाग होता है

ऊर्ध्व शाखाओं की अस्थियाँ

कंधे या स्कंध के बनाने में तीन अस्थियाँ सहायता देती हैं; इनमें से एक अस्थि बाहु की है जिसका वर्णन हम आगे करेंगे। शेष दो अस्थियों में से एक वह है जिसको हम पीछे अक्षक और हँसली के नाम से बतला चुके हैं, यह वक्ष के अगले और सब से ऊपर के भाग में रहती है। दूसरी अस्थि पीठ के उस भाग में रहती है जिसको खवा कहते हैं इस अस्थि को स्कंधास्थि कहते हैं। ये दोनों अस्थियाँ अर्थात् अक्षक व स्कंधास्थि वक्ष की अस्थियों से मांस और बंधनों द्वारा बँधी रहती हैं।

(१) अक्षक या हँसली (चित्र २१, २२) यह लम्बी अस्थि है । इसके दो सिरे होते हैं जिनमें से एक सिरा वक्ष की सामने की चौड़ी अस्थि (वक्षोऽस्थि) के ऊपर के भाग से मिला और बँधा रहता है; दूसरा सिरा कंधे में रहता है और स्कंधास्थि के अंसकूट नामक भाग से बंधा रहता है । इस अस्थि के नीचे पहली पसली रहती है; इन दोनों के बीच में एक मांसपेशी रहती है जिससे ये दोनों अस्थियाँ आपस में बँधी रहती हैं इस पेशी को **"अक्षकाधरा पेशी"** कहते हैं । यह अस्थि दो जगह से बल या मोड़ खाये रहती है। दुर्बल मनुष्यों में यह अस्थि दूर से उभरी हुई दिखाई देती है

चित्र २१ अक्षकास्थि (बांई)

१—वक्षोऽस्थि की ओर का सिरा, २—स्कन्धास्थि की ओर का सिरा, ३—उरः कर्णमूलिका पेशी, ४—उरस्या बृहती पे०, ५—कशेरु अंस अक्षका पे०, ६—अंसाच्छादनी पे०
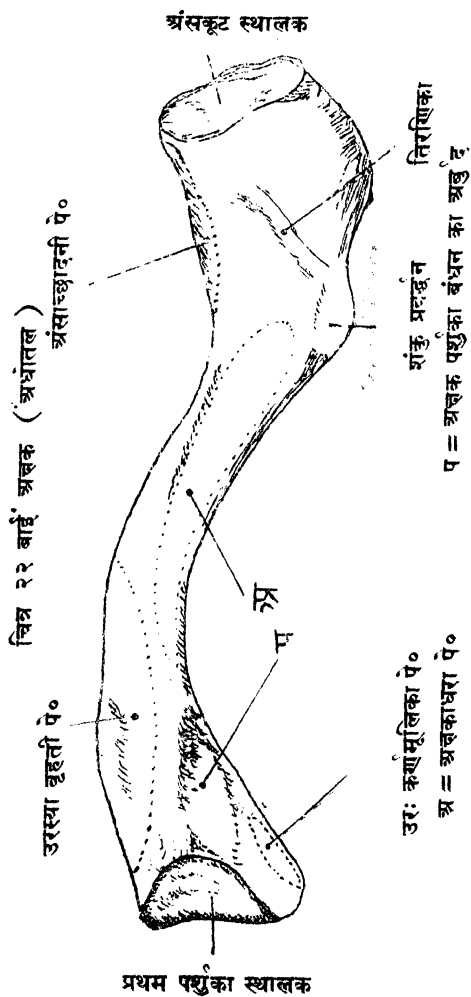
चित्र २२ बाईं अक्षक (अधोतल)

और उसका टेढ़ापन स्पष्ट मालूम होता है। स्थूल शरीर में हम इस अस्थि का टेढ़ापन दबा कर मालूम कर सकते हैं। अस्थि की लम्बाई ६-७ इंच होती है।

अक्षक का बाह्य ⅓ भाग चपटा और माध्यमिक ⅔ भाग कुछ कुछ त्रिपार्श्विक होता है। बाह्यभाग के दो तल होते हैं—ऊपर का और नीचे का; और दो किनारे (धारा) होते हैं—अगला और पिछला। ऊपर के तल से आगे **कशेरु अंश अक्षका** और पीछे **अंसाच्छादनी** पेशियाँ लगी रहती हैं। नीचे के तल पर शंकु प्रवर्द्धन नाम का एक उभार होता है जिससे एक तिरणिका का आरम्भ होता है।

माध्यमिक ⅔ भाग के अगले, पिछले और नीचे के तीन तल होते हैं। नीचे के तल पर अक्षकाधरा पेशी के लिये एक परिखा होती है।

(२) **स्कंधास्थि** (चित्र २३) इसका अधिक भाग खवे में रहता है। पतले मनुष्यों में यह भाग सब का सब अंगुली से टटोला जा सकता है। यह अस्थि कुछ तिकोनी और सपाट होती है परन्तु इसमें कई उभार होते हैं। इसकी शकल घास छीलने के खुरपे से कुछ कुछ मिलती है। चौड़ा भाग खवे में रहता है और मोटा भाग (जहाँ खुरपे में बेंटा लगता है) कंधे में रहता है। इस मोटे भाग में एक गढ़ा होता है जिसे अंसपीठ कहते हैं; यहाँ पर बाहु की अस्थि का शिर उस से मिला और बँधा रहता है। चौड़े भाग के दो पृष्ठ होते हैं—एक सामने का जो पसलियों के समीप रहता है दूसरा पिछला जो स्पर्श किया जा सकता है। पिछले पृष्ठ पर एक उभार होता है जिसे **अंस**

चित्र २३ बाईं स्कंधास्थि या अंसफलक का पिछला पृष्ठ
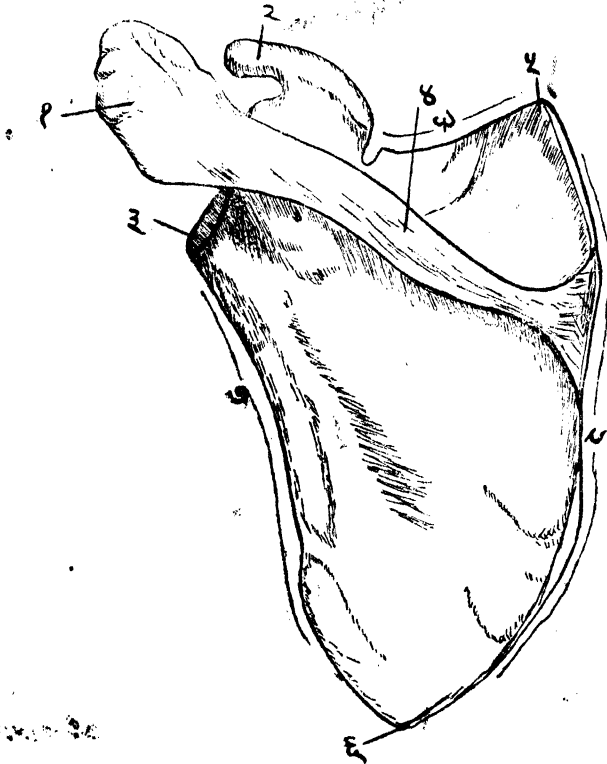
१—अंसकूट; इस उभार से अक्षक बँधी रहती है। २—अंसतुण्ड ३—अंसपीठ; प्रगण्डास्थि का शिर इस गढ़े से मिला रहता है। ४—अंस प्राचीरक; उभार जो खवे में टटोला जा सकता है। ५—ऊपर का कोना।

६—नीचे का कोना। ७—कक्षतल की ओर का किनारा = कक्षानुगा धारा। ८—पृष्ठवंश की ओर का किनारा = वंशानुगा धारा। ९—ऊपर का किनारा = ऊर्ध्व धारा।

प्राचीरक कहते हैं। पिछले पृष्ठ का वह भाग जो प्राचीरक के ऊपर है **प्राचीरकोर्ध्व खात** और जो नीचे है वह **प्राचीरकाधः खात** कहलाता है; प्राचीरकोर्ध्व खात से **प्राचीरकोर्ध्वा** और प्राचीरकाधः खात से **प्राचीरकाधोगा** पेशियाँ लगी रहती हैं अगले पृष्ठ से **अंसाधोगा** पेशी लगी रहती है; अंसप्राचीरक कंधे की ओर जा कर एक प्रवर्द्धन की शकल में हो गया है इस मुड़े हुए और कन्धे की ओर निकले हुए भाग को **अंस कूट** कहते हैं।

इस अस्थि में तीन किनारे होते हैं—एक ऊपर का (**ऊर्ध्व धारा**) चित्र २३ में ९; दूसरा पृष्ठवंश की ओर वाला (**वंशानुगा धारा**) चित्र २३ में ८; तीसरा कक्षतल की ओर रहता है (**कक्षानुगा धारा**) चित्र २३ में ७। इन में ऊपर का किनारा सबसे छोटा, पृष्ठवंश की ओर का सबसे लम्बा और कक्ष की ओर का सबसे मोटा होता है। ऊपर के किनारे के पास **अंसतुण्ड** नामक मुड़ा हुआ उभार होता है। (चित्र २३ में २)

इस अस्थि से १६ मांसपेशियाँ लगी रहती हैं (देखो पेशियों का वर्णन)।

(३) बाहु की अस्थि—प्रगंडास्थि (चित्र २४)—बाहु में एक लम्बी अस्थि होती है जिसको प्रगंडास्थि कहते हैं। इसके दो सिरे हैं एक ऊपर का जो स्कंधास्थि की ओर रहता है,

दूसरा नीचे का जो कोहनी में रहता है और जिससे अग्र बाहु की दोनों अस्थियों के ऊपर के सिरे मिले रहते हैं। दोनों सिरों के बीच में जो भाग है उसको अस्थि का **गात्र** कहते हैं।

ऊपर के सिरे का प्रारम्भिक भाग कुछ कुछ अर्ध गोलाकार होता है; इस भाग का नाम **शिर** है जो अंस पीठ से मिला रहता है। शिर के नीचे जो दबा हुआ भाग है वह **ग्रीवा** कहलाता है (चित्र २४ में × से × तक); ग्रीवा के नीचे दो उभार रहते हैं; एक उभार बड़ा होता है यह **महा पिण्डक** है; दूसरा उभार छोटा होता है यह **लघु पिण्डक** है। इन दोनों उभारों के बीच में नाली जैसा अन्तर रहता है। इसको **पिण्डकान्तरिका** परीखा कहते हैं। यहाँ द्विशिरस्का की कंडरा, और कंडरा का कोष और एक धमनी रहती है।

अस्थि के गात्र का ऊपर का भाग कुछ कुछ बलनाकार और नीचे का भाग कुछ कुछ त्रिपार्श्विक होता है।

नीचे के सिरे पर इधर उधर दो उभार होते हैं जो कुहनी में टटोलकर स्पर्श किये जा सकते हैं। भीतर की ओर का उभार **आन्तराबुद** कहलाता है, बाहर की ओर के उभार का नाम **बाह्यबुर्द** है। अन्तराबुर्द बाह्याबुर्द की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है और पीछे की ओर को कुछ मुड़ा रहता है। आन्तराबुर्द के पीछे एक परिखा होती है यहाँ पर अन्तः प्रकोष्ठिका नाड़ी रहती है; जीवित शरीर में यह स्पर्श की जा सकती है; यहाँ ज़ोर से दबाने से एक झनझनाहट भी मालूम हुआ करती है।

चित्र २५ दाहिनी प्रगंडास्थि का नीचे का भाग (पिछला पृष्ठ)
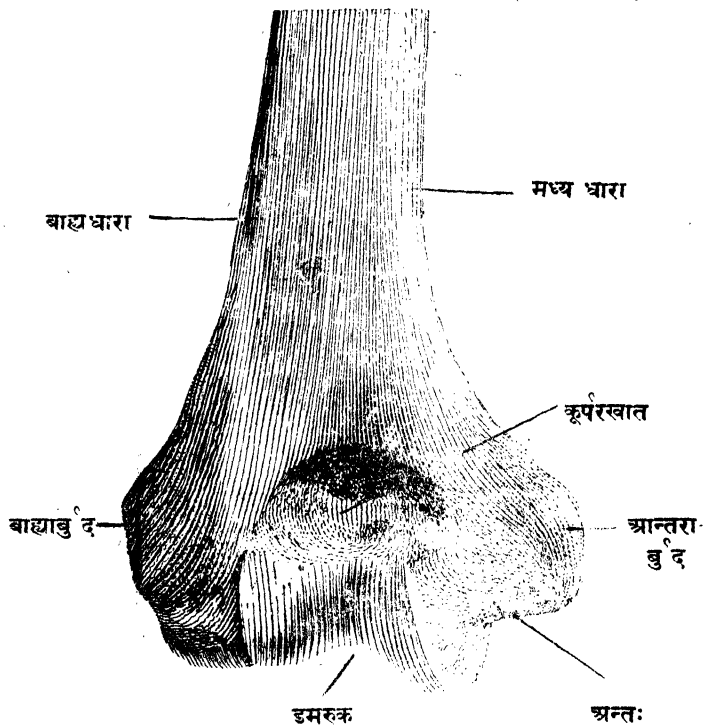
प्रगंडास्थि की लम्बाई की कुल शरीर की ऊँचाई से यह निस्बत है :—१:४·९३ से ५·२५ तक। यदि किसी प्रगंडास्थि की लम्बाई १२ इंच है तो उस मनुष्य की ऊँचाई जिसके शरीर की वह अस्थि है अनुमान से $\frac{१२ \times ४·९३}{१२}$ और $\frac{१२ \times ५·२५}{१२}$ फ़ुट

के बीच में होगी; ४·९३ और ५·२५ फुट के बीच में समझिये।

चित्र २६ प्रकोष्ठास्थियाँ (बाईं)

क–कपालिका या कूर्परकूट- वह उभार जो कोहनी में मालूम होता है।
सं–प्रकोष्ठास्थियों की संधि।
१–प्रगंडास्थि खात है।
२–चंचु प्रवर्द्धन।
३–बहिः प्रकोष्ठास्थि खात है।
४–अन्तः प्रकोष्ठास्थि का गात्र।
५–अन्तःप्रकोष्ठास्थि का नीचे का सिरा।
६–अन्तर्मणिक।
७–बहिःप्रकोष्ठास्थि का शिर।
८–बहिः प्रकोष्ठार्बुद।
९–बहिःप्रकोष्ठास्थि का गात्र।
१०–बहिःप्रकोष्ठास्थि का नीचे का सिरा।
११–बहिर्मणिक।
१२–रक्त की नलियों के छिद्र।
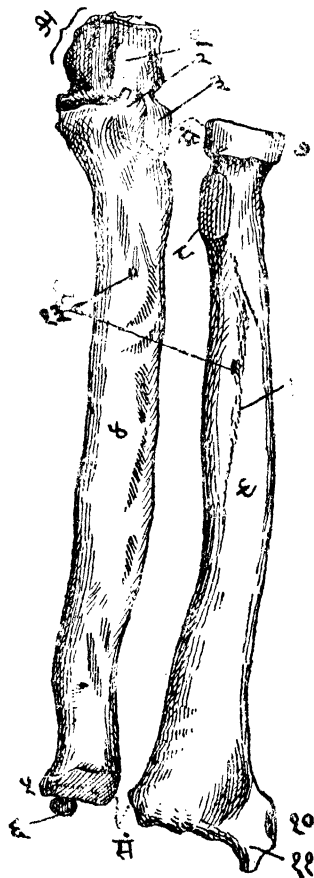
(४, ५) **प्रकोष्ठ की अस्थियाँ** (चित्र २६, २७, २८, २९, ३०) प्रकोष्ठ में दो लम्बी अस्थियाँ होती हैं। ये अस्थियाँ पास पास रहती हैं; एक अंगुष्ठ की ओर दूसरी कनिष्ठा की ओर। दोनों अस्थियों के ऊपर के सिरे प्रगंडास्थि के नीचे के सिरे से मिले और बँधे रहते हैं; नीचे के सिरे कलाई की अस्थियों से मिले रहते हैं।

यदि हम प्रकोष्ठ को इस प्रकार रक्खें कि हथेली सामने को रहे तो इन दोनों अस्थियों में से एक अस्थि शरीर की मध्य रेखा की ओर रहेगी और दूसरी उससे परे। जो चीज़ शरीर में मध्य रेखा की ओर रहती है उसके लिये छेदन शास्त्र की परिभाषा में **अंतरीय** या अन्तः शब्द का प्रयोग होता है; और जो चीज़ इस रेखा से परे होती है उसके लिये **बाह्य** या **बहिः** शब्द का प्रयोग होता है। हथेली को सामने रखे हुए इन दोनों अस्थियों में से अंगुष्ठ की ओर की अस्थि मध्यरेखा से दूर हो जाती है इस कारण यह **बहिःप्रकोष्ठास्थि** कहलाती है, कनिष्ठा की ओर की अस्थि **अन्तःप्रकोष्ठास्थि** है।

बहिःप्रकोष्ठास्थि (चित्र २६) :—इसके दो सिरे हैं जिनके बीच में अस्थि का गात्र है। गात्र का ऊपर का कुछ भाग बेलनाकार है; नीचे का अधिक भाग त्रिपार्शिवक है। ऊपर के सिरे का ऊपर का भाग गोल होता है और **शिर** कहलाता है; शिर के नीचे अस्थि की **ग्रीवा** है; ग्रीवा के नीचे सामने की ओर एक अर्बुद होता है जिसे द्विशिरस्कार्बुद कहते हैं; शिर पर एक गढ़ा होता है यह गढ़ा प्रगंडास्थि के कन्दली

चित्र २८

चित्र २९, ३० की व्याख्या

चित्र २७
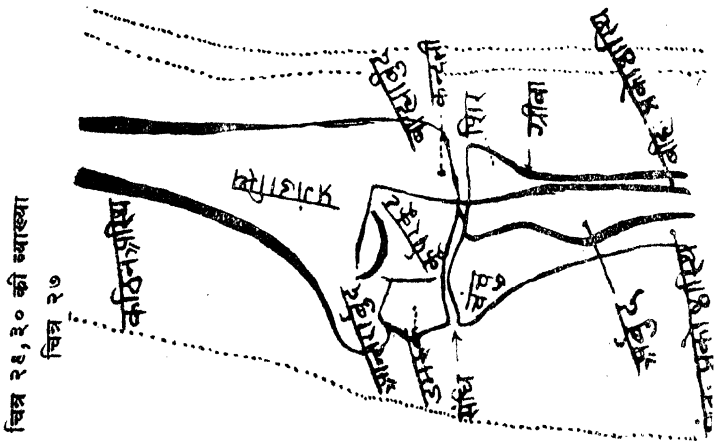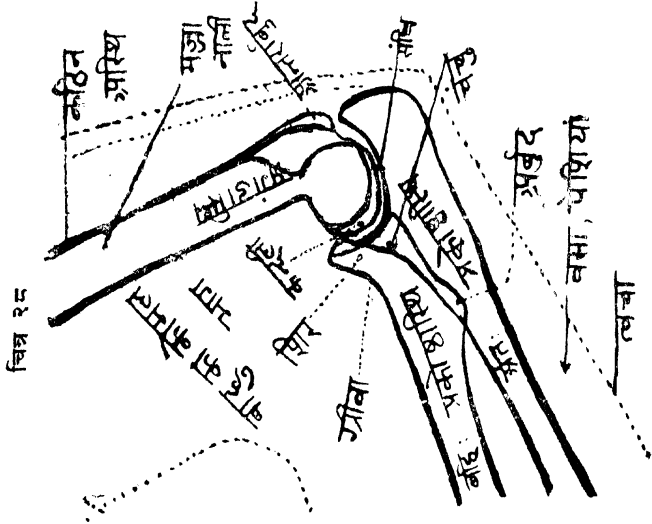
हमारे शरीर की रचना—भाग १, पाँचवी आवृत्ति—प्लेट ४

चित्र ३१—३५ वर्ष की स्त्री के हाथ का एक्स-रे चित्र

१ = सूत्रमय कारटिलेज

पृष्ठ ६१ के सम्मुख

नामक उभार से मिला रहता है; शिर अन्तःप्रकोष्ठास्थि के ऊपर के सिरे के एक गढ़े से भी मिला रहता है (चित्र २६ में सं) गात्र नीचे जा कर अधिक चौड़ा हो गया है नीचे के चौड़े और चौकोर सिरे के **अग्र, पाश्चात्य, बाह्य, मध्य** और **अधो** पांच पृष्ठ या तल होते हैं। बाह्य पृष्ठ नीचे जाकर एक अर्बुद ब गया है जिसको **बहिर्मणिक** कहते हैं—इसको जीवित शरीर में सहज में स्पर्श कर सकते हैं। मध्य पृष्ठ पर एक गड्ढा होता है इसे **अन्तःप्रकोष्ठिका भंग** कहते हैं क्योंकि यहाँ अन्तः प्रकोष्ठिका का शिर मिलता है। पाश्चात्य पृष्ठ पर मध्य में **पाश्चात्यार्बुद** नामक एक उभार होता है। इस अर्बुद के दोनों ओर कंडराओं के लिये परिखाएँ होती हैं। नीचे के पृष्ठ पर कलाई की अस्थियों के मिलने के लिये स्थालक होते हैं। (चित्र ३२)

गात्र के **अग्र, पाश्चात्य** और **मध्य** तीन धाराएँ होती हैं; इन धाराओं के बीच में अग्र; पाश्चात्य और बाह्य पृष्ठ होते हैं; इन पृष्ठों से बहुत सी पेशियाँ लगी रहती हैं। मध्य धारा से अस्थ्यान्तरिक कला लगी रहती है।

इस अस्थि की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्बत १:६.७, से ७.११ तक होती है।

यह अस्थि प्रकोष्ठ के ऊपर के भाग में मांस से खूब ढके रहने के कारण सहज में टटोली नहीं जा सकती। नीचे कलाई के पास अंगुली से टटोली जा सकती है।

चित्र २६, ३० लेखक की दाहिनी कुहनी के एक्स-रे यन्त्र द्वारा खिंचे हुए फ़ोटो हैं। चित्र २७, २८ इन फ़ोटो की व्याख्या हैं।

अन्तःप्रकोष्ठास्थि—इस अस्थि के भी दो सिरे होते हैं जिनके बीच में उसका गात्र रहता है। ऊपर का सिरा मोटा होता है और इसमें दो गढ़े होते हैं एक बड़ा दूसरा छोटा (चित्र २६ में १, ३), बड़े गढ़े में प्रगंडास्थि के नीचे के सिरे का डमरुक नामक भाग टिकता है; छोटा गड्ढा बहिःप्रकोष्ठास्थि के ऊपर के सिरे के मिलने के लिये है; बड़ा गड्ढा **प्रगंडीय** भंग और छोटा **बहिःप्रकोष्ठीका भंग** कहलाता है। जब हम कोहनी मोड़ते हैं तब उसमें पीछे की तरफ एक लम्बा और नोकीला उभार दिखाई देता है; इस उभार को **कपालिका** या **कूर्परकूट** कहते हैं (चित्र २६ में क)। गढ़ों के नीचे कुछ दूर तक अस्थि का गात्र त्रिपार्श्विक होता है और ऊपर से नीचे को पतला होता चला गया है। गात्र का नीचे का अंश बेलनाकार होता है। अस्थि का नीचे का सिरा गोल होता है और शिर कहलाता है; शिर के और कलाई की अस्थियों के बीच में एक कारटिलेज रहता है। शिर के पास एक छोटा नोकीला उभार होता है जो अंगुली से टटोल कर मालूम किया जा सकता है

चित्र ३१—यह ३५ वर्ष की स्त्री के हाथ का एक्स-रे यंत्र द्वारा खींचा गया फ़ोटो है। करभास्थियों, अंगुल्यस्थियों और प्रकोष्ठास्थियों के सिरे गात्रों से जुड़ गये हैं। अंगुष्ठ की एक कंडरा में दो छोटी अस्थियाँ हैं, चित्र में वे साफ़ साफ़ दिखाई देती हैं। इस चित्र का चित्र १०५ से मुक़ाबला करो।

एक्स-रे चित्रों में अस्थि, कंकड़, लोहा इत्यादि दृढ़ चीजें साफ़ दिखाई देती हैं। मांस, रक्त, त्वचा जैसी मुलायम चीज़ें बहुत हलकी दिखाई देती हैं।

(चित्र २६ में ६) यह **अन्तर्मणिक** है। इस अस्थि के गात्र का पिछला किनारा समस्त प्रकोष्ठ में टटोल कर स्पर्श किया जा सकता है।

गात्र—के अग्र, पाश्चात्य और बाह्य तीन धाराएँ और इनके बीच में अग्र, मध्य और पाश्चात्य तल होते हैं।

इस अस्थि की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्बत १:६·२६ से ६·६६ तक।

जब हम कुहनी मोड़ते हैं तो टटोलने पर हमको तीन उभार मालूम होते हैं—दो उभार ऊपर होते हैं और एक इन दोनों के नीचे। ऊपर वाले उभार प्रगंडास्थि के अर्बुद हैं, नीचे का मोटा उभार अंतः प्रकोष्ठास्थि का कूर्परकूट है। जब कुहनी आधी मुड़ी रहती है अर्थात् जब प्रकोष्ठ और प्रगंड के बीच में समकोण बनता है तब इन तीनों उभारों की स्थिति इस प्रकार होती है कि यदि उनके बीच में रेखाएँ खींची जावें तो एक समत्रिकोण बनेगा।

यदि कुहनी सीधी कर दी जावे तो इन उभारों की आपेक्षिक स्थिति और हो जायगी; पहले ये एक समकोण के कोने पर थे; अब ये एक रेखा में आ जाते हैं (चित्र २७, २९)। जब हड्डियाँ टूट जाती हैं या कुहनी का जोड़ उखड़ जाता है तब इन उभारों की आपेक्षिक स्थितियों की जाँच पड़ताल करने की आवश्कता होती है।

जब हमारे हाथ की हथेली सामने को या ऊपर को रहती है तब प्रकोष्ठास्थियाँ एक दूसरे के समांतर रहती हैं (चित्र ३४ दाहिना हाथ) परन्तु जब हथेली नीचे को या पीछे को रहती

है तब बहि:प्रकोष्ठास्थि अंत: प्रकोष्ठास्थि के ऊपर हो जाती है चित्र) ३४ बायां हाथ)।

(६–१३) **कलाई या पहुँचे की अस्थियाँ** (चित्र ३१, ३२, ३३) कलाई में आठ छोटी छोटी अस्थियाँ रहती हैं। ये अस्थियाँ दो समांतर पंक्तियों में रखी रहती हैं। एक पंक्ति प्रकोष्ठ की अस्थियों के नीचे के सिरों के निकट रहती है दूसरी हस्ततल की अस्थियों से मिली रहती है। ये चार चार अस्थियां कलाई की चौड़ाई के रुख रहती हैं। (चित्र ३२) प्रत्येक अस्थि का नाम उसकी आकृति के अनुसार रक्खा गया है—

ऊपर की पंक्ति में अंगुष्ठ की ओर से गिनते हुए ये चार अस्थियाँ मिलती हैं :—

१	२	३	४ *
नौकाकृति	चतुर्थी चन्द्राकार	त्रिकोण	मटराकार या वर्त्तुलक

नीचे की पंक्ति में ये चार अस्थियाँ रहती हैं :—

५	६	७	८
वृहत बहुकोण	क्षुद्र बहुकोण	शिरोधारी	वक्रास्थि या फणाधर

(१) **नौकाकृति**—इस अस्थि की शकल नाव जैसी होती है; एक ओर इसमें नाव जैसा गहराव होता है दूसरी ओर से नाव की तली की तरह उभरी रहती है। इसमें **नौकार्बुद** नाम का एक उभार होता है जो अंगुष्ठ की ओर कलाई में टटोलने से स्पर्श किया जा सकता है।

(२) **चतुर्थी चन्द्राकार**—शुक्लपक्ष की चौथी तिथि को जैसा चन्द्र होता है वैसा ही गहराव इस अस्थि में होता है।

* वर्त्तुल = गोल; मटर।

(३) **त्रिकोण**—इसकी शकल ठोस त्रिकोण से मिलती है। इन तीनों अस्थियों में से पहली और दूसरी अस्थियों के ऊपर के

चित्र ३२ हाथ की हड्डियाँ
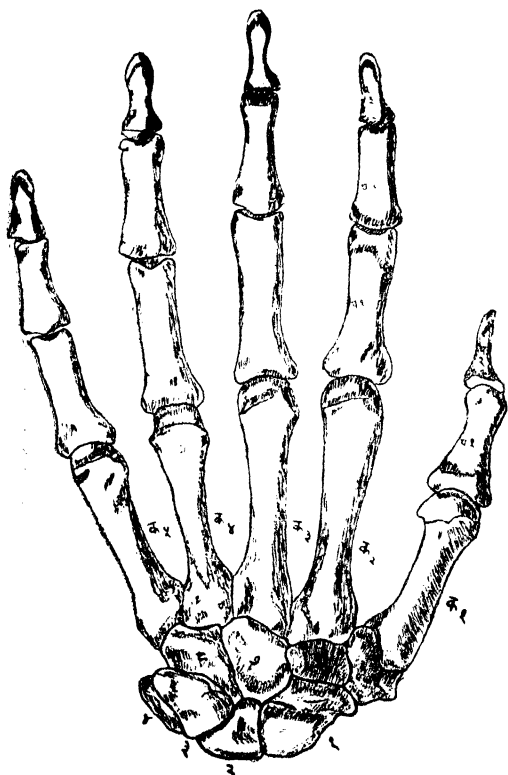
पृष्ठ (समीपस्थ) बहिःप्रकोष्ठास्थि के नीचे के सिरे से मिले रहते हैं। तीसरी अस्थि और अंतः प्रकोष्ठास्थि के नीचे (दूरस्थ)

चित्र ३२ कलाई की अस्थियां
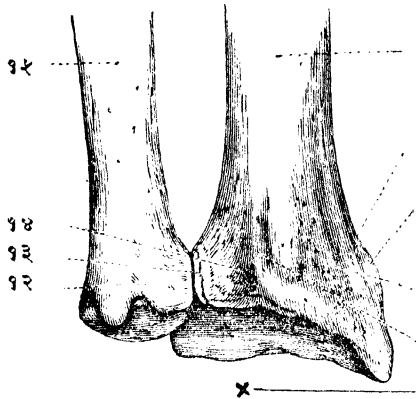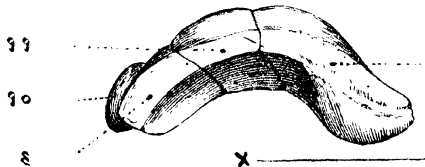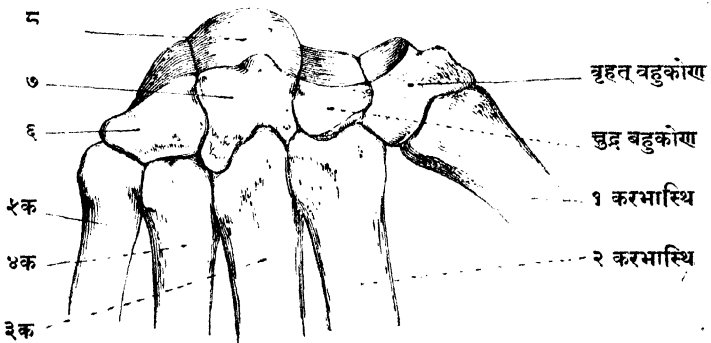
(From Sparke's Artistic Anatomy
Bailliere, Tindal (& Cox, London)

चित्र ३३ की व्याख्या

इस चित्र में यह समझाया गया है कि प्रकोष्ठ की अस्थियां कलाई की ऊपर की पंक्ति की अस्थियों से कैसे मिलती हैं और कलाई की ऊपर की पंक्ति की अस्थियां नीचे की पंक्ति की अस्थियों से कैसे मिलती हैं। प्रकोष्ठ की दोनों अस्थियों के नीचे के सिरों के पिछले पृष्ठों पर पेशियों के लिये कई परिखाएँ रहती हैं।

३, ४, ५ क = तीसरी, चौथी, पांचवी करभास्थियां।
६ = वक्रास्थि।
७ = शिरोधारी।
८ = शिरोधारी का शिर।
९ = त्रिकोण।
१० = वर्तुलक।
११ = चन्द्राकार।
१२ = मणिबन्ध प्रसारणी अन्तस्था परिखा।
१३ = कनिष्ठा प्रसारणी परिखा।
१४ = अंगुली प्रसारणी परिखा।
१५ = मध्यमा प्रसारणी विशेषा परिखा।
१६ = मणि बन्ध (प्रकोष्ठास्थियों और कलाई की ऊपर की पंक्ति की अस्थियों का जोड़)।
१७ = कलाई की दोनों पंक्तियों की अस्थियों का जोड़।

के सिरे के बीच में एक पतला कारटिलेज रहता है (चित्र १०६ में ८)।

(४) **मटराकार**—यह मटर के बड़े दाने जैसी गोल गोल होती है। यह अस्थि त्रिकोण के सामने रहती है और वह प्रकोष्ठ की किसी अस्थि से मिली हुई नहीं रहती। इस अस्थि को कलाई के सामने के भाग में टटोल कर स्पर्श कर सकते हैं।

वृहत बहुकोण के अगले तल पर एक परिखा और एक तीरगिका होती है।

(५-६) **वृहत् और क्षुद्र बहुकोण**—इन अस्थियों में कई पार्श्व (पहलू) और कई कोने होते हैं। अंगुष्ठ की ओर की अस्थि छोटी होती है दूसरी बड़ी होती है; इस कारण वे वृहत और क्षुद्र कही गई हैं।

(७) **शिरोधारी**—इसका ऊपर का अंश सिर की भाँति मोटा और गोल सा होता है।

(८) **वक्रास्थि**—इसका एक अंश शाक काटने के कटिये या दात्र की भाँति मुड़ा हुआ होता है। इसको दात्रवत अस्थि या फणधर भी कहते हैं।

इन चारों (५—६—७—८) अस्थियों के ऊपर के (समीपस्थ) पृष्ठ पहली पंक्ति की तीन अस्थियों (मटराकार को छोड़ कर) के नीचे (दूरस्थ) के पृष्ठों से मिले रहते हैं। नीचे के (दूरस्थ) पृष्ठ हस्ततल की अस्थियों से मिले रहते हैं देखो चित्र ३३। ऊपर की प्रत्येक अस्थि के ६ तल होते हैं :—समीपस्थ, दूरस्थ, बाह्य, मध्य, अग्र, पाश्चात्य।

(१४-१८) **हस्ततल की अस्थियाँ**—(चित्र ३१, ३२) कलाई की दूसरी पंक्ति की अस्थियों के आगे (या नीचे) हस्ततल की पाँच लम्बी अस्थियाँ रहती हैं। इनमें से प्रत्येक को **करभास्थि** कहते हैं। करभ हाथ के पीछे के भाग को कहते हैं; हथेली की अपेक्षा इस भाग में ये अस्थियाँ सहज में टटोल कर स्पर्श की जा सकती हैं। इन अस्थियों में से जो अंगुष्ठ से सम्बन्ध रखती हैं वह सब से मोटी और कम लम्बी है (क १) कनिष्ठा वाली सब से पतली (क ५) और प्रदेशिनी वाली (क २) सबसे लम्बी होती है। इन अस्थियों के बीच में जो अंतर रहता है वह मांसपेशियों से भरा रहता है। हर एक अस्थि के दो सिरे होते हैं और इनके बीच में अस्थि का गात्र होता है। ऊपर (समीपस्थ) के सिरे कुछ कुछ चौकोर होते हैं और वे कलाई की दूसरी पंक्ति की अस्थियों से मिले रहते हैं। नीचे के (दूरस्थ) सिरे या शिर कुछ गोल होते हैं और ये पहिले पोवों की अस्थियों से मिले रहते हैं।

(१९-३२) **अंगुलियों की अस्थियाँ**—(चित्र ३१, ३२) अंगुष्ठ में दो अस्थियाँ होती हैं शेष अंगुलियों में तीन तीन; पाँचों अंगुलियों में १४ हुई। प्रत्येक अस्थि को **अंगुल्यस्थि** या **पर्व** कहते हैं। पहली पंक्ति के पोर्वे सब से लम्बे और मोटे होते हैं; दूसरी पंक्ति के इनसे छोटे और तीसरी पंक्ति के सब से छोटे होते हैं (अंगुष्ठ में केवल दो ही पंक्तियाँ हैं; अंगुष्ठ का दूसरा पोर्वा शेष अंगुलियों के तीसरे पोर्वे के सदृश होता है) तीसरे पोर्वों पर नख लगे रहते हैं; इन तीसरे पोर्वों की शकल

घोड़े के खुर जैसी होती है; अंगुष्ठ के पोर्वे शेष अंगुलियों के पोर्वों से मोटे होते हैं।

इस प्रकार एक एक ऊर्ध्व शाखा में ३२ अस्थियाँ हुईं; दोनों में मिला कर ६४ हुईं।

अधोशाखाओं की अस्थियाँ

(१) **नितंबास्थि*** (चित्र ३५, ३६, ३७, ३८) कूल्हे या नितंब में एक बड़ी, चौड़ी, विरूप अस्थि होती है; यह नितंबास्थि कहलाती है; दोनों नितंबास्थियाँ पीछे जा कर कमर के नीचे जो त्रिक नाम की अस्थि होती है उससे बँधी रहती हैं (चित्र ३४)। दाहिनी नितंबास्थि त्रिक के दाहिनी ओर बाईं उसके बाईं ओर रहती है; सामने आकर ये दोनों अस्थियाँ आपस में मध्य रेखा में जुड़ जाती हैं। इन दोनों अस्थियों के इस जोड़ या संधि को विटप संधि (या भग संधि) कहते हैं। यह संधि सामने मध्य रेखा में उदर के सब से नीचे के भाग में होती है। इस स्थान पर ऊपर से नीचे तक इन अस्थियों का नाप १—१½ इंच होता है। संधि के नीचे पुरुष में शिश्न और स्त्री में भग नामक अंग रहते हैं। संधि के ऊपर की त्वचा में

* १३ या १४ वर्ष की आयु तक इस अस्थि के तीन बड़े भाग रहते हैं, एक ऊपर का चौड़ा भाग जो जघनास्थि या श्रोणि अस्थि कहलाता है, दूसरा सामने का भाग जिसको भगास्थि कहते हैं; तीसरा वह भाग जो चूतड़ में टटोलने से मालूम होता है (देखो चित्र ४०, ४१)। १८ वर्ष के लगभग इन तीनों भागों से एक अस्थि बन जाती है जिसको नितंबास्थि कहते हैं।

चित्र ३४
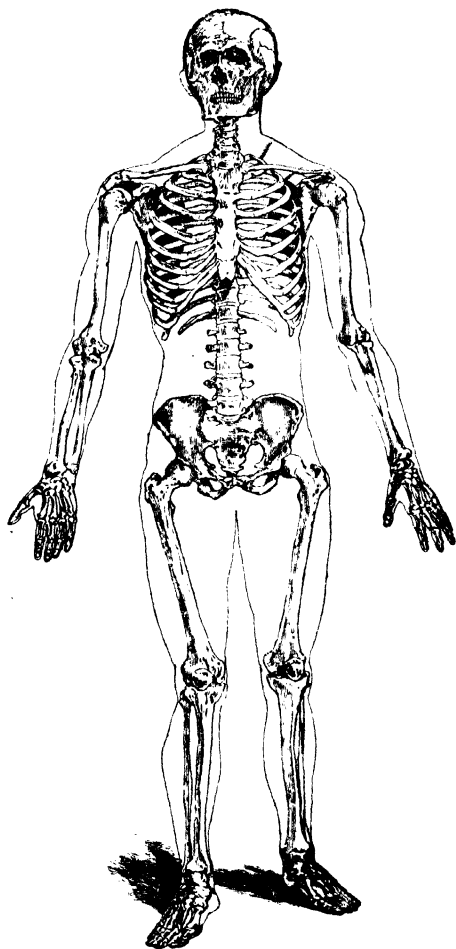
From Piersol's Human Anatomy
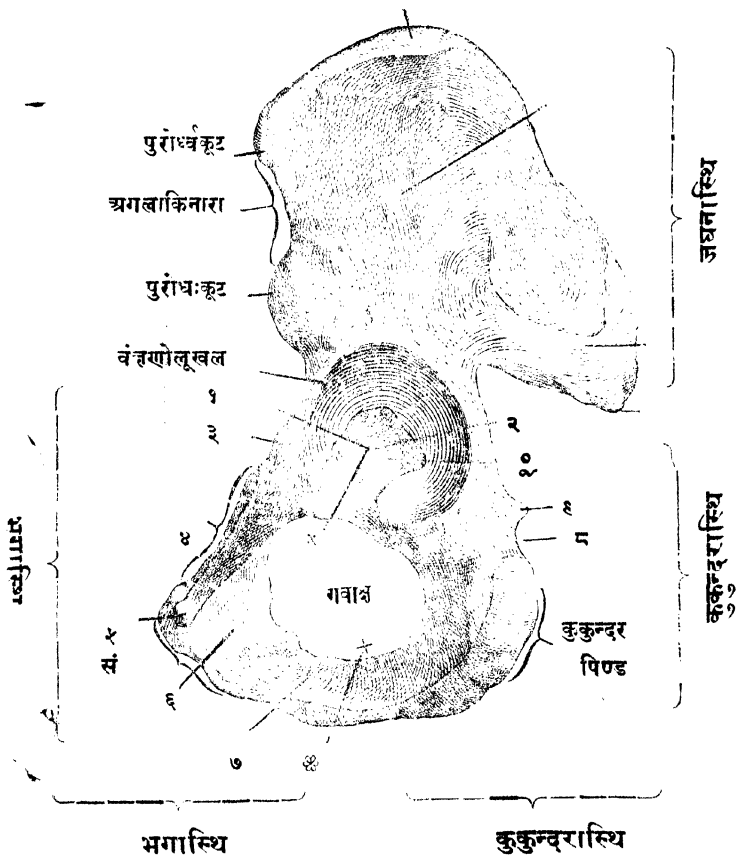
१, २ से ऊपर जघनास्थि है; उसके नीचे भगास्थि और कुकुन्दरास्थि। ३ = भगास्थि का अंश है। ४ = भगास्थि का उत्तर शृङ्ग। ६, ७ = भगास्थि का अधर शृङ्ग। ५ = भगकंटक; सं = संधि यह भाग दूसरी ओर की अस्थि से मिलता है। + ⊛ भगास्थि और कुकुन्दरास्थि का जोड़। ८ = कुकुन्दरभंग। ९ = कुकुन्दरकण्टक। १० = उलूखल खात।

तारुण्यावस्था (यौवन) में बाल उग आते हैं और यह स्थान **विपटदेश** कहलाता है।

त्रिक अस्थि के नीचे एक छोटी सी अस्थि और रहती है इसका नाम **गुदास्थि** है नितंबास्थियाँ इस अस्थि से मिली हुई नहीं रहतीं। इन चारों अस्थियों से एक घेरा बन जाता है दो अस्थियाँ घेरे के पिछले भाग में रहती हैं. शेष दो (नितंबास्थियाँ) अस्थियों से उस घेरे का पार्श्विक और अगला भाग पूर्ण होता है। इन चारों अस्थियों के बीच में जो गहरा कटोरे की शकल का स्थान है उसको **वस्तिगह्वर** कहते हैं (चित्र ३४, ४२)। इस गह्वर की तली में कोई अस्थि नहीं होती; यह तली मांस वा वसा से ही बनती है और इनके बाहर त्वचा रहती है। इस कोमल फ़र्श में कई छिद्र होते हैं; स्त्रियों में पीछे मलद्वार और उसके आगे भग की दरार रहती है; इस दरार में योनि और मूत्रद्वार के छिद्र होते हैं; पुरुषों में मलद्वार होता है और विटपसंधि के नीचे शिश्न रहता है जिसका कुछ भाग वस्तिगह्वर के भीतर से आता है।

वस्तिगह्वर उदर की कोठरी का नीचे का भाग है। उस में पुरुष में मूत्राशय, शुक्राशय, मलाशय; स्त्रियों में मूत्राशय, गर्भाशय, मलाशय, डिम्ब ग्रन्थियाँ नामक अंग रहते हैं; अस्थियों

के भीतरी पृष्ठों पर मांस पेशियाँ लगी रहती हैं। स्त्री का वस्तिगह्वर पुरुष के वस्तिगह्वर की अपेक्षा कम गहरा परन्तु अधिक चौड़ा और विशाल होता है।

चित्र ३६ वस्तिगह्वर (Jellet)
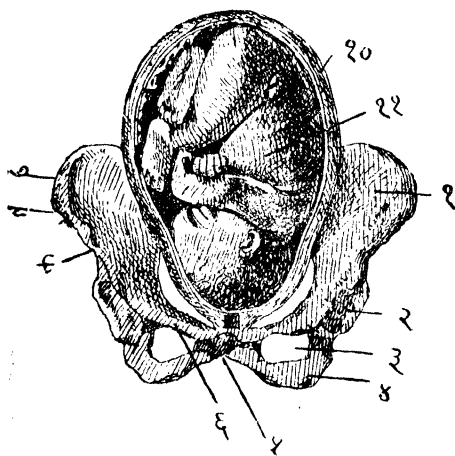
१० = गर्भाशय; ११ = बच्चा; ५ = भगसंधि

जब स्त्री बच्चा जनती है तो बच्चा इन चारों अस्थियों के बीच में से होकर योनि से बाहर निकलता है। बच्चे के शिर के दबाव से वस्तिगह्वर के फर्श की कोमल चीज़ें भिच-भिचाकर अलग हो जाती हैं और योनि का छिद्र फैल कर बड़ा हो जाता है और बच्चे का शरीर बाहर निकल आता है।

कभी कभी अस्थियों के टेढ़े होने से इनके बीच में जो रास्ता रहता है वह कम चौड़ा होता है; ऐसी दशा में बच्चे का शिर

बड़ी कठिनता से बाहर निकलता है और जननी को अधिक कष्ट होता है। कभी कभी यह रास्ता इतना तंग होता है कि बच्चे का शिर इसमें से निकल ही नहीं सकता; उसकी मृत्यु हो जाती है और यदि उसको निकालने की कोई तदबीर न की जाय तो माता की जान भी जोखों में रहती है।

चित्र ३७ बच्चा वस्तिगह्वर से बाहर आ रहा है (Jellet)
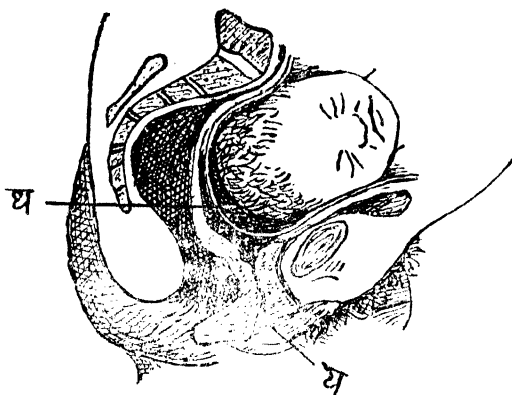
थ = पानी की थैली; य = योनि

कोख (**जघन**) के नीचे टटोलने से जो अस्थि मालूम होती है वह इसी अस्थि का ऊपर का किनारा (**जघन चूड़ा**) है। कूल्हे में यह अस्थि मोटी मोटी पेशियों से ढकी रहती है; इस कारण इनको आसानी से टटोल कर स्पर्श नहीं कर सकते। चूतड़ में दबाने से जो अस्थि मालूम होती है वह इसी अस्थि का नीचे का भाग है। जब हम बैठते हैं तब

इसी के सहारे बैठते हैं। बंदरों में मलद्वार और पूँछ के इधर उधर जो धूसर रंग के निशान होते हैं वहाँ नितंबास्थियों के यही

चित्र ३८ नितंबास्थि (नितंब तल)
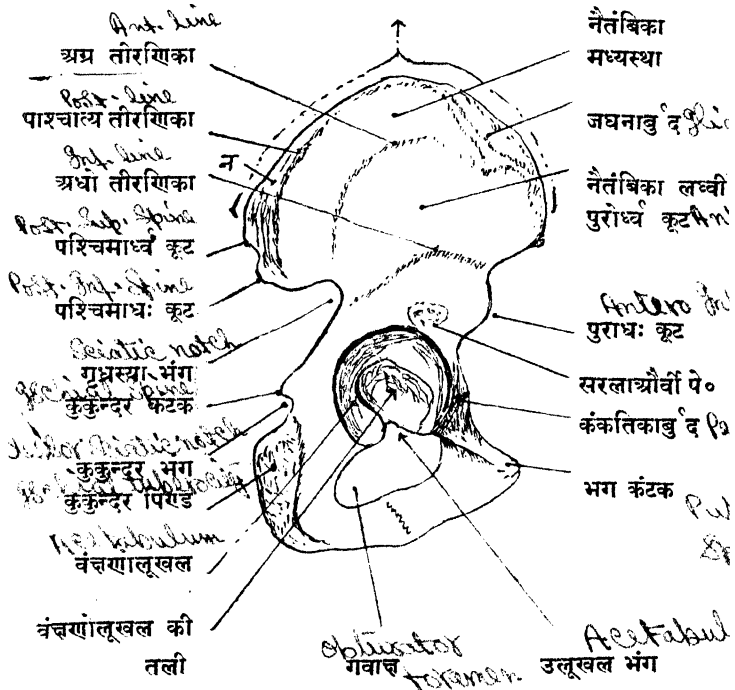
भाग हैं; उनके ऊपर की त्वचा बहुत कड़ी होती है। इस उभार को **कुकुन्दरपिण्ड** कहते हैं।

प्रत्येक नितंबास्थि के बाहरी पृष्ठ पर एक गहरा गोल गढ़ा होता है। ऊर्वस्थि का शिर इसी गढ़े में टिकता है। इस गढ़े को **वंक्षणोलूखल** कहते हैं। वंक्षणोलूखल के नीचे जो बड़ा छिद्र होता है उसका नाम **गवाक्ष** है। वंक्षणोलूखल के बनाने में तीनों

चित्र ३९ नितंबास्थि उदर तल
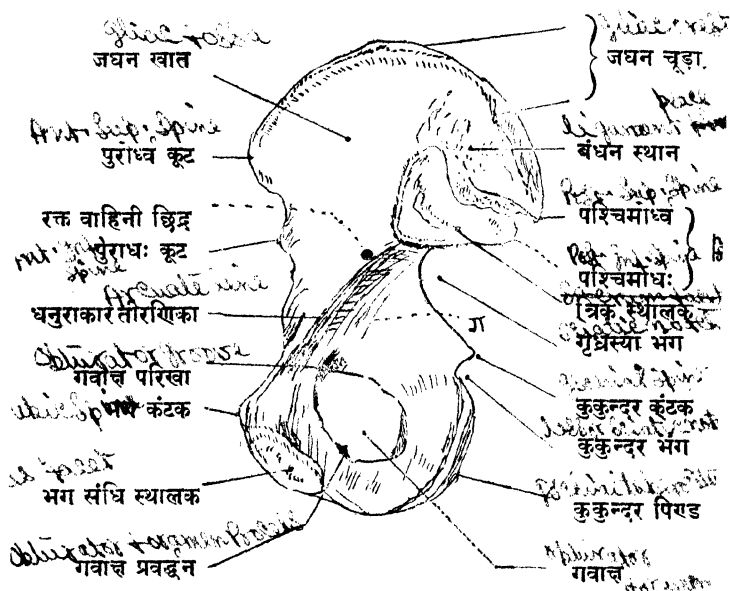
अस्थियाँ सहायता देती हैं जैसा कि चित्र ४०, ४१ से विदित है। ये चित्र एक नौ वर्ष की कन्या की नितंबास्थियाँ के फोटो हैं। तीनों अस्थियां वंक्षणोलूखल के स्थान पर आपस में)—आकार (१, २, ३,) के कारटिलेज द्वारा जुड़ी रहती हैं। इस कारटिलेज

नौ दस वर्ष की कन्या की नितंबास्थि

चित्र ४० नितंबतल — चित्र ४१ उदर तल
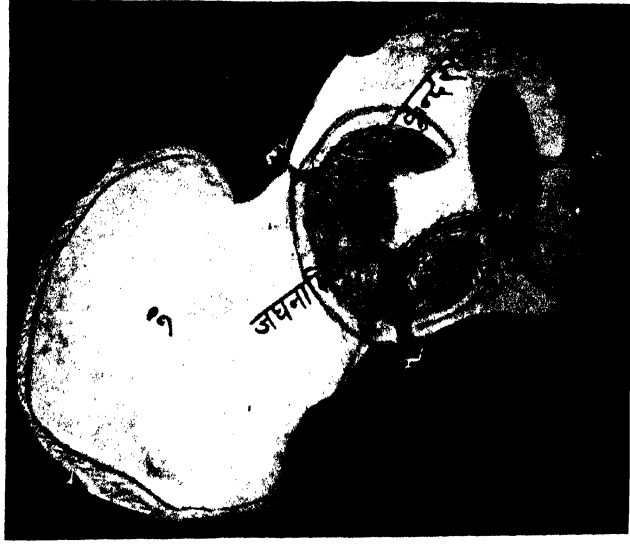
पृष्ठ ८४ के सम्मुख

में १२वें वर्ष में अस्थि का बनना आरंभ होता है। १८ वर्ष के लग-भग और कभी कभी १६ वर्ष तक भी ये तीनों भाग मिल कर एक हो जाते हैं अर्थात् ये कारटिलेज नहीं रहते। जघन चूड़ा भी १५ वर्ष तक कारटिलेज का होता है (चित्र ४०, ४१ में ५)। (देखो आगे) १५ वर्ष में अस्थि बनने लगती है और यह शेष जघनास्थि से २०—२५ वर्ष के बीच में जुड़ती है। कुकुन्दर पिंड के पिछले भाग में भी (चित्र ४१ में ६) १५ वर्ष में अस्थि बनने लगती है और २०—२५ वर्ष में यह भाग पूर्ण होता है। चित्र ३५, ३८, ३९ के देखने से विदित है कि नितंबास्थि पर कई उभार होते हैं।

जघन चूड़ा का अगला सिरा **पुरोर्ध्वकूट** कहलाता है उसके नीचे छोटा सा भंग होता है और फिर पुराधःकूट होता है। जघन चूड़ा का पिछला सिरा **पश्चिमोर्ध्वकूट** है जिसके नीचे छोटा सा भंग होता है और फिर **पश्चिमाधःकूट** है। पश्चिमाधःकूट के नीचे गृध्रस्या भंग होता है; उसके नीचे एक नोकीला उभार होता है इसे **कुकुन्दरकंटक** कहते हैं; इसके नीचे कुकुन्दर भंग होता है।

जघानास्थि के कूल्हे वाले पृष्ठ पर **(नितंबतल) पाश्चात्य, अग्र, अधो,** तीन उभरी हुई रेखाएं (तीरणिकाएं) होती है। पाश्चात्य तीरणिका के पीछे से **नैतंबिका महती** पेशी का, पाश्चात्य और अग्र तीरणिकाओं के बीच में **नैतंबिका मध्यस्था** का और अग्र और अधोतीरणिकाओं के बीच में **नैतंबिका लघ्वी** का आरंभ होता है।

चित्र ४२ नर वस्तिगह्वर
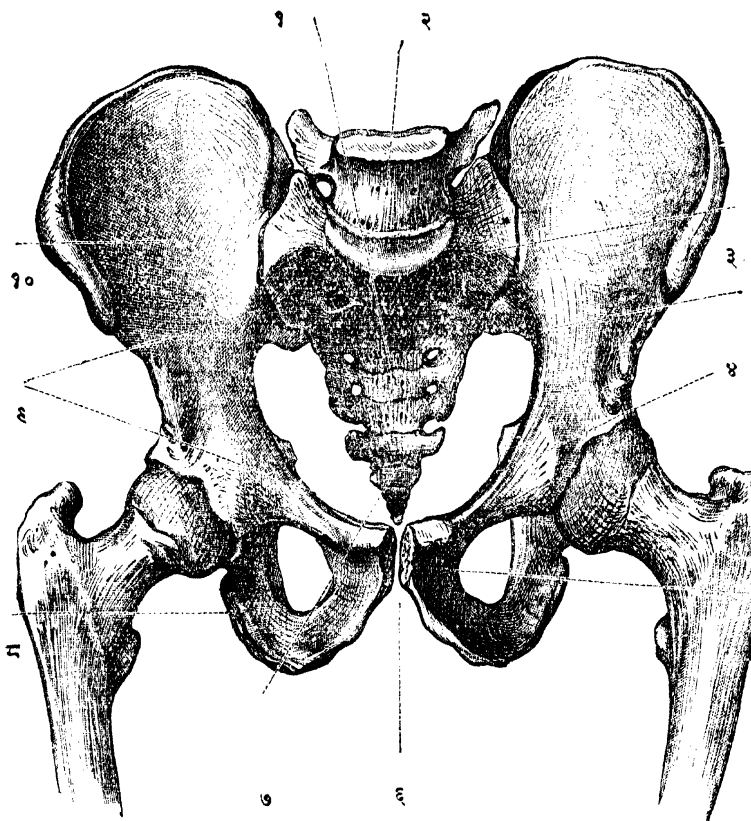
(Toldt's Atlas of Anatomy)

१ = त्रिकास्थि; २ = पंचम कटिकशेरुका; ५ = भग संधि ६ = भग कोण
७ = गुदास्थि; ८ = कुकुन्दरपिंड; १० = जघनास्थि
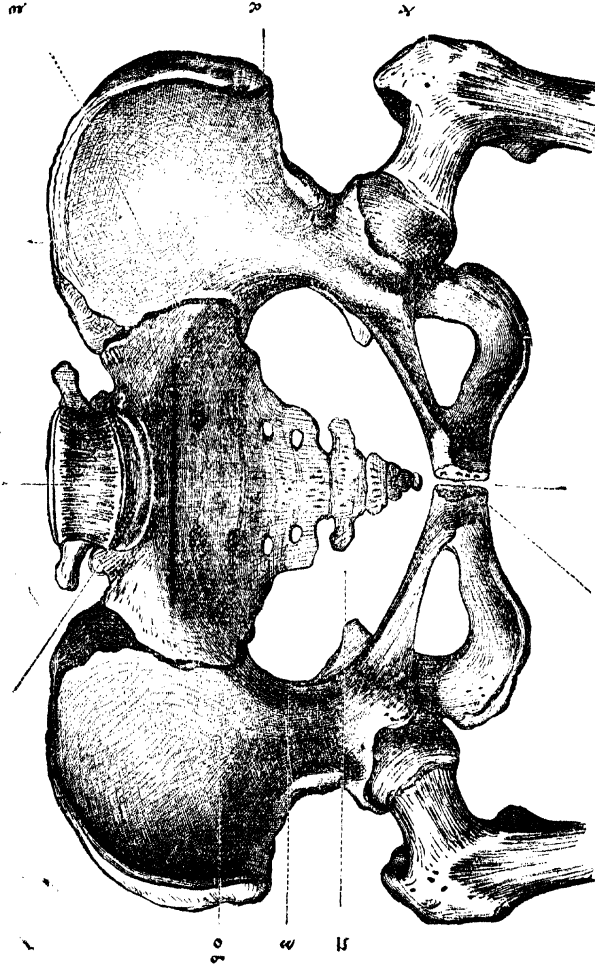
(Toldt's Atlas of Anatomy)

५ = महाशिखरक; ६ = भगकोण; ७ = भगास्थि; ८ = वस्तिगह्वर; ९ = वस्तिगह्वर का किनारा; १० = जघनखात; ३ = जघन त्रिक संधि; २ = ५ वां कटि कशेरुका; १ = कटि त्रिक संधि

जघनास्थि के उदर की ओर वाले पृष्ठ पर एक गढ़ा होता है इसे **जघन खात** कहते हैं (चित्र ४३) यहाँ **जघनीया** पेशी रहती है। जघन खात के पीछे एक कान की शकल का कुछ उभरा और कुछ दबा भाग है यहाँ त्रिकास्थि मिलती है। इसको त्रिकस्थालक कहते हैं। त्रिकस्थालक के ऊपर जो खुर्दरी जगह है वह बंधनों के लिये है। नर और नारी वस्तिगह्वरों में कुछ भेद होता है। जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है। नारी वस्तिगह्वर की समाई नर गह्वर से अधिक होती है। भगास्थियों से जो महराब बनती है (चित्र ४२ के ६ का, चित्र४३ के ६ से मुलाबला करो) वह नारियों में समकोण से अधिक होती है, नरों में समकोण या समकोण से कम। नारियों की जघनास्थियाँ नरों की अपेक्षा अधिक चौड़ी और फैली होती हैं जिसके कारण नारियों के कूल्हे चौड़े होते हैं। नारियों में त्रिकास्थि भी अधिक चौड़ी कम लम्बी, कम मुड़ी हुई और पीछे को अधिक झुकी हुई होती है (देखो त्रिकास्थि)

(२) ऊर्वस्थि (चित्र४४, ४५, ४६)

बाहु की तरह जाँघ में केवल एक ही अस्थि होती है। इस का नाम ऊर्वस्थि है। ऊर्वस्थि शरीर भर में सब से लम्बी और मज़बूत अस्थि है। और लम्बी अस्थियों की भाँति ऊर्वस्थि के दो सिरे होते हैं और इनके बीच में उसका गात्र रहता है। ऊपर का सिरा तिरछा होता है; इस सिरे और गात्र के बीच में एक कोण बनता है; इस कोण का परिमाण १२५° दरजे होता है। ऊपर के सिरे का वह भाग जो वंक्षणोलूखल में रहता है गोला-कार होता है; यह गोल भाग इस अस्थि का **शिर** कहलाता है;

शिर के नीचे गात्र तक जो भाग है उसको इस अस्थि की **ग्रीवा** कहते हैं। जहाँ ग्रीवा गात्र से मिलती है वहाँ दो उभार होते हैं एक बड़ा उभार ऊपर (**महा शिखरक**), दूसरा छोटा उभार नीचे (**लघु शिखरक**)। बड़ा उभार कूल्हे में दबा कर स्पर्श किया जा सकता है। अस्थि का गात्र बेलनाकार होता है; यह नीचे जा कर कुछ चौड़ा हो जाता है। नीचे के सिरे में सामने एक खांचा (**जान्वस्थि स्थालक**) होता है जिसके ऊपर पाली अस्थि सरका करती है। इस खांचे के इधर उधर दो मोटे मोटे उभार होते हैं, ये उभार टाँग की मोटी अस्थि के ऊपर के सिरे के ऊपर टिकते हैं। इन उभारों को **आन्तर** और **बाह्य ऊर्वार्बुद** कहते हैं। प्रत्येक ऊर्वार्बुद के ऊपर एक छोटा सा उभार और होता है जिसे **उप ऊर्वार्बुद** कहते हैं।

गात्र के पिछले पृष्ठ पर मध्य में एक उभरी हुई रेखा होती है। ऊपर और नीचे ये दो शाखाओं में फट जाती हैं (बहुधा ऊपर की ओर तीन शाखाएँ होती हैं) इस रेखा को **विश्लेषित तीरणिका** कहते हैं। इस अस्थि से बहुत सी पेशियाँ लगी रहती हैं।

चित्र ३४ से स्पष्ट है कि यह अस्थि जाँघ में कुछ तिरछी रहती है, और मांस से खूब ढकी रहती है। नीचे के सिरे के उभार पाली अस्थि को इधर उधर टटोल कर स्पर्श किये जा सकते हैं। इस अस्थि की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्बत १: ३·५३ से ३·९२ तक होती है।

चित्र ४४ कंकाल (Hæckel)
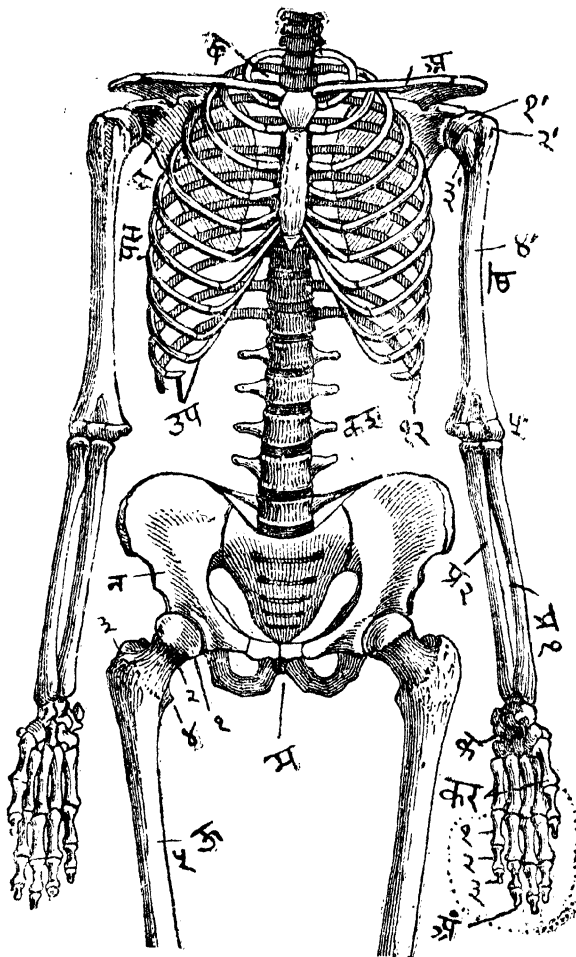
चित्र ४४ की व्याख्या

ऊ = ऊर्वस्थि; १ = शिर, २ = ग्रीवा, ३ = महा शिखरक, ४ = लघु शिखरक, ५ = गात्र ।

म = भगास्थियों की महराब ।

न = नितंबास्थि ।

ब = प्रगंडास्थि, १' = शिर, २' = महापिण्डक, ३' = लघु पिण्डक, ४' = गात्र, ५' = नीचे का सिरा ।

प्र १ = बहिःप्रकोष्ठास्थि ।

प्र २ = अंतःप्रकोष्ठास्थि ।

क = कलाई की अस्थियाँ ।

कर = करभास्थियाँ ।

अं = अंगुल्यस्थियाँ; १, २,३ = पोर्वे ।

पस = पसुलियाँ । उप = उपपर्शुका ।

स = स्कन्धास्थि । अ = अक्षक ।

छ = इस छिद्र की सीमा इन अस्थियों से बनती हैः—पीछे वक्ष का पहला कशेरुका, सामने उरोस्थि, इधर उधर दोनों ओर की पहली पसलियाँ । यह वक्ष का ऊपर का द्वार है

३—४ जंघा या टाँग की अस्थियाँ (चित्र ४७)

टाँग में दो लम्बी अस्थियाँ रहती हैं इनमें से एक अंगुष्ठ (शरीर की मध्यरेखा के निकट) की ओर रहती है और दूसरी कनिष्ठा की ओर (मध्यरेखा से परे); पहली अस्थि को **जंघास्थि** दूसरी को **अनुजंघास्थि** कहते हैं ।

जंघास्थिः—यह दोनों अस्थियों में सब से मोटी होती है ; इसका ऊपर का सिरा नीचे के सिरे से अधिक मोटा और चौड़ा होता है । इस सिरे पर दो उभार होते हैं जो **आन्तर** और **बाह्य जंघार्बुद** कहलाते हैं । इस सिरे के ऊपर के पृष्ठ पर उर्वस्थि के उभारों को सहारने के लिये दो निशान (स्थालक) होते हैं (चित्र ४८) दोनों स्थालकों के बीच में **जघा कंटक** नाम का

चित्र ४५ दाहिनी ऊर्वस्थि पिछला पृष्ठ चित्र ४६ दाहिनी ऊर्वस्थि अगला पृष्ठ
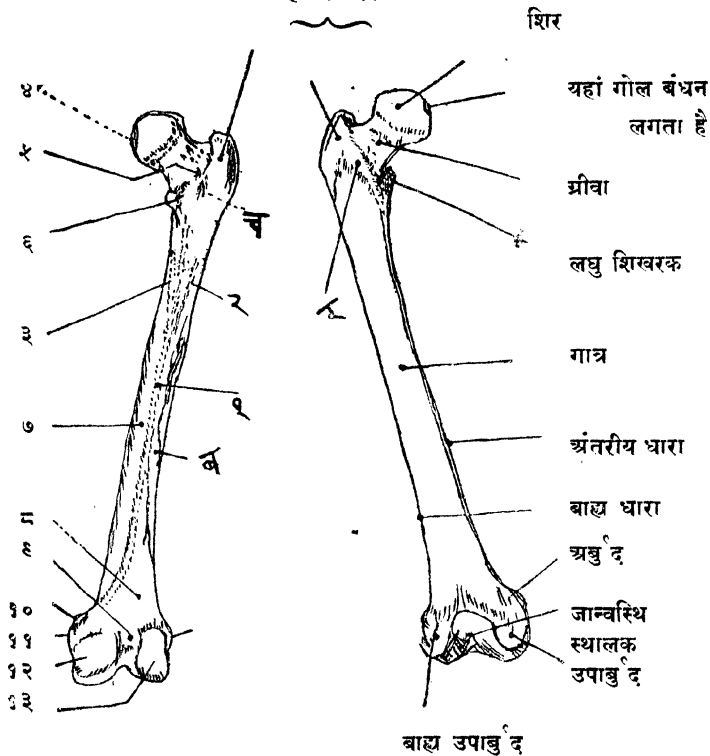
१ = विश्लेषित तीरणिका, २ = तीरणिका की ऊपर की बाह्य शाखा; ३ = तीरणिका की अंतरीय शाखा, ४ = गोल बंधन का गड्ढा, ५ = पश्चिम शिखरांतरिक तीरणिका, र = अग्र शिखरांतरिक तीरणिका, ६ = लघु शिखरक, ७ = ऊरु प्रसारणी अंतःस्था, ब = ऊरु प्रसारणी बहिःस्था, ८ = जानु पृष्ठ स्थान, ९ = अर्बुदांतरिक स्थान, १० = अर्बुद, ११ = उपार्बुद, १२ = आन्तर ऊर्वार्बुद, १३ = बाह्य ऊर्वार्बुद, च = चतुरस्त्रा अर्बुद ।

एक प्रवर्द्धन होता है। हर एक स्थालक पर एक अर्ध चक्राकार कारटिलेज रहता है। सामने इस सिरे पर एक अर्बुद होता है जो पाली अस्थि के नीचे अंगुली से टटोल कर मालूम किया जा सकता है इसको जंघा **प्रवर्द्धन** कहते हैं। इस अस्थि का गात्र कुछ त्रिपार्श्विक होता है और ऊपर से नीचे को कम चौड़ा होता चला गया है। इस गात्र का सामने का पृष्ठ और किनारा भले प्रकार टटोले जा सकते हैं। नीचे के सिरे में अंगुष्ठ की ओर एक उभार होता है; अंगुष्ठ की ओर का गट्टा इसी उभार से बनता है; यह उभार **अन्तर्गुल्फ** कहलाता है। यह सिरा टखने की एक अस्थि (गुल्फास्थि) के ऊपर टिका रहता है।

अस्थि की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्बतः—

१: ४·३२ से ४·८० तक।

अनुजंघास्थिः—यह जंघास्थि से बहुत पतली और कमज़ोर होती है और नली जैसी होती है। ऊपर का सिरा जिसे शिर कहते हैं कुछ कुछ चौपहलू होता है और यह जंघास्थि से बँधा रहता है; यह त्वचा में टटोल कर स्पर्श किया जा सकता है। अस्थि के गात्र का अधिकांश मांस से खूब ढका रहता है इस कारण उसको टटोल कर मालूम करना कठिन है। नीचे के सिरे से कनिष्ठा की ओर का गट्टा बनता है; इसको **बहिर्गुल्फ** कहते हैं; यह सिरा टखने की गुल्फास्थि नामक अस्थि से मिला रहता है। इस अस्थि की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्बत १: ४·३७ से ४·८२ तक होती है।

चित्र ४७ जंघास्थि और अनुजंघास्थि (दाहिनी)

१ = यहाँ ऊर्वस्थि का नीचे का सिरा टिकता है

अनुजंघास्थि

२ = जंघा कण्टक

३ = जंघा प्रवर्द्धन

४ = जंघास्थि का गात्र

५ = जंघास्थि का अगला किनारा जो स्पर्श किया जा सकता है

६ = अन्तर्गुल्फ

७ = { नीचे के सिरे का नीचे का पृष्ठ इस भाग के नीचे गुल्फास्थि रहती है

८ = अनुजंघास्थि का शिर

९ = अनुजंघास्थि का गात्र

१० = बहिर्गुल्फ

सं = दोनों अस्थियों की संधि
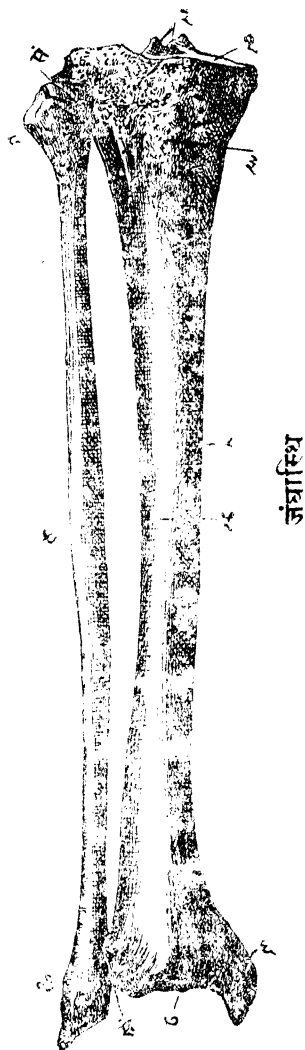
हमारे शरीर की रचना— भाग १, पाँचवी आवृत्ति—प्लेट ७

चित्र ४८ लेखक के जानु का एक्स-रे चित्र

Radiograph by Dr. M. Umar L. M. S

ऊ = ऊर्वस्थि	जा = जान्वस्थि
जं = जंघास्थि	अ = अनुजंघास्थि
बं = जान्वस्थि, बंधन	व = वसा की गद्दी

पृष्ठ ६४ के सम्मुख

चित्र ४९ पैर की अस्थियाँ

१ = गुल्फास्थि; २ = पार्ष्णि
३ = नौकाकृति; ४ = अन्तः त्रिपार्श्विक
५ = मध्य त्रिपार्श्विक; ६ = बहिः त्रिपार्श्विक
७ = घनास्थि; १′, २′, ३′, ४′, ५′ = प्रपादास्थियाँ

पृष्ठ ९५ के सम्मुख

(५) **पाली** या **जान्वस्थि ;** जानु के सामने एक तिकोनिया अस्थि रहती है। यह अस्थि हिलाई जा सकती है। यह अस्थि ऊर्वस्थि के नीचे के सिरे के सामने रहती है। जब टाँग सीधी की जाती है तब पतले मनुष्यों में यह दूर से भी दिखाई देती है (चित्र ४८ में जा)

पैर की **अस्थियाँ** (चित्र ४९) टाँग के नीचे जो निम्न शाखा का भाग है वह पैर या **पाद (पद)** कहलाता है। जिस स्थान पर टाँग पैर से जुड़ी रहती है और जहाँ इन दोनों में गति होती है वह स्थान **टखना** कहलाता है। टखने के नीचे और पीछे एडी या **पार्ष्णि** होती है। एड़ी और टखने के देशों में ७ अस्थियाँ होती हैं। यह अस्थियां कलाई की अस्थियों की भाँति सब की सब सीधी पंक्तियों में नहीं रक्खी रहतीं। बड़े छोटे होने के कारण वे कुछ आगे पीछे और ऊपर नीचे रहती हैं।

६–१२ **टखने** और **एड़ी** की अस्थियाँ (**कूर्च्चास्थियाँ**)

(१) टाँग की दोनों अस्थियों के नीचे एक विरूप अस्थि रहती है। इस अस्थि को गुल्फास्थि कहते हैं; उसका अगला भाग **शिर** कहलाता है; शिर का अगला पृष्ठ अण्डाकार होता है और वह नौकाकृति से मिला रहता है; शिर के नीचे के पृष्ठ पर पार्ष्णि से मिलने के लिये स्थालक होते हैं। शिर के पीछे **ग्रीवा** है। ग्रीवा के नीचे के पृष्ठ पर **गुल्फ खात** होता है। ग्रीवा के पीछे का मोटा भाग **गात्र** कहलाता है। गात्र के ऊपर के पृष्ठ पर जंघास्थि टिकती है; गात्र के अंतरीय तल से अन्तर्गुल्फ

मिलता है ; बाह्य तल से बहिर्गुल्फ मिलता है ; नीचे के पृष्ठ पर पार्ष्णि से मिलने के लिये स्थालक होता है। (चित्र ५०, ५१)

(२) गुल्फास्थि के नीचे एक बड़ी और विरूप अस्थि रहती है ; इसके अगले भाग के ऊपर गुल्फास्थि टिकी रहती है ; पिछला भाग पीछे को निकला रहता है और इसी उभार को एड़ी कहते हैं। इस अस्थि का नाम **पार्ष्णि** है। यह कूर्चास्थियों में सब से बड़ी है। उस के छः पृष्ठ होते हैं। ऊपर के पृष्ठ पर गुल्फास्थि के टिकने के लिये स्थालक होते है ; नीचे के पृष्ठ पर पिछले भाग में दो प्रवर्द्धन होते हैं ; बाह्य पृष्ठ त्वचा में को टटोला जा सकता है ; अन्तर पृष्ठ पर ऊपर के भाग में **गुल्फ प्रवर्द्धन** होता है इस के ऊपर गुल्फास्थि का एक भाग रहता है ; गुल्फ प्रवर्द्धन के नीचे के पृष्ठ पर एक परिखा होती है जिस में पादगुष्ठ संकोचनी दीर्घा की कण्डरा रहती है ; अगला पृष्ठ घनास्थि से मिला रहता है ; पिछला पृष्ठ टटोला जा सकता है। (चित्र ५०, ५१)

(३) गुल्फास्थि के अगले गोल सिर के सामने एक अस्थि रहती है जिस की शकल नौका जैसी होती है यह पैर की **नौकाकृति** अस्थि है। इसका गहरा भाग (नतोदर पृष्ठ) पीछे को रहता है यहीं गुल्फास्थि का गोल सिरा उससे मिला रहता है; उभरा (उन्नतोदर) पृष्ठ आगे को रहता है। यह अस्थि पैर के अंगुष्ठ की ओर के किनारे के मध्य में टटोलने से स्पर्श की जा सकती है (चित्र ४९ में ३)

४, ५, ६—नौकाकृति के अगले पृष्ठ से तीन छोटी छोटी अस्थियाँ मिली रहती हैं। इनकी शकल कुछ कुछ त्रिपार्श्व जैसी

होती है इस कारण ये **त्रिपार्श्विक** अस्थियाँ कहलाती हैं ; इन अस्थियों की गिनती अंगुष्ठ की ओर से होती है :—प्रथमा (या अन्तः), द्वितीया (या मध्य), तृतीया (या वहिः) त्रिपार्श्विक अस्थियाँ कहलाती हैं (चित्र ४९ में ४, ५, ६)

७—पार्ष्णि के अगले सिरे से लगी हुई कनिष्ठा की ओर एक घनाकार अस्थि रहती है ; यह पैर की **घनास्थि** कहलाती है (चित्र ४९ में ७)

इन सातों कूर्चास्थियों में से अगली चार अर्थात् प्रथमा द्वितीया, तृतीया, त्रिपार्श्विक और घन एक पंक्ति में रहती हैं। पिछली अस्थियों में से गुल्फास्थि पार्ष्णि के ऊपर रहती है। पार्ष्णि आड़ी रहती है ; इसका अगला सिरा पैर के कनिष्ठा की ओर के किनारे की तरफ़ को रहता है। गुल्फास्थि भी कुछ आड़ी रहती है ; उसका अगला सिरा पैर के अंगुष्ठ की ओर के किनारे की तरफ़ रहता है ; इस अगले सिरे के सामने नौकाकृति अस्थि रहती है।

१३–१७ प्रपादकी अस्थियाँ (चित्र ४९, ५२, ५३, ५४, ५५) त्रिपार्श्विक वा घन अस्थियों के सामने और अंगुलियों के पीछे पैर का जो भाग है वह प्रपाद या प्रपद कहलाता है। प्रपाद में हस्ततल की तरह पाँच लम्बी लम्बी शलाकाकार अस्थियाँ होती हैं। अंगुष्ठ की प्रपादास्थि सबसे मोटी होती है। इन अस्थियों के अगले सिरे गोल होते हैं। इनकी गिनती अंगुष्ठ की ओर से १-२-३-४-५ होती है। पहली तीन प्रपादास्थियाँ त्रिपार्श्विक अस्थियों के सामने रहती हैं; ४,५ प्रपादास्थियाँ घनास्थि के

अगले पृष्ठ से मिली रहती हैं। प्रपादास्थियाँ करभ की अस्थियों से तुरन्त पहचानी जा सकती हैं (चित्र ४९ में १,'२,'३,'४,'५')

१८—३१ अंगुलियों की अस्थियाँ

पैर की अंगुलियों में उतनी ही अस्थियाँ हैं जितनी हाथ की अंगुलियों में; इनको भी **पोर्वे** (या अंगुल्यस्थियाँ) कहते हैं। अंगुष्ठ में दो मोटे-मोटे पोर्वे होते हैं; शेष अंगुलियों में तीन तीन। सबसे अगले पोर्वे खुर जैसे होते हैं और इन पर नख रहते हैं। कनिष्ठा के पोर्वे बहुत छोटे छोटे हैं।

इस प्रकार दोनों निम्न शाखाओं में ३१ × २ = ६२ अस्थियाँ हुईं।

चित्र ५२, ५३ लेखक के दाहिने पैर के एक्स-रे फोटो हैं और चित्र ५४,५५ इन फोटो की व्याख्या है।
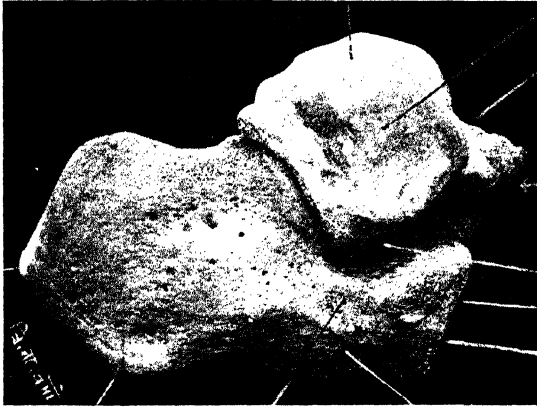
———

चित्र ४० दाहिनी गुल्फास्थि और पार्ष्णि (बहिस्तल)

चित्र ४१ उन्हीं अस्थियों का अन्तस्तल

चित्र २४ पैर का एक्स-रे चित्र

चित्र २२ पैर का एक्स-रे चित्र

चित्र ५३ एक्स-रे चित्र ५५ की सूची
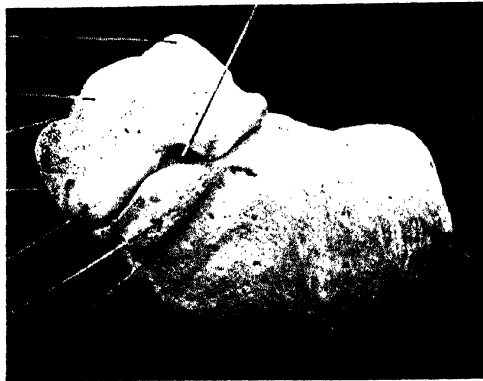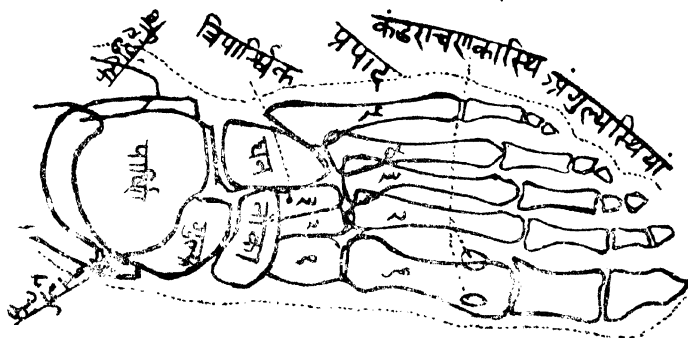
चित्र ५२ एक्स-रे चित्र ५४ की सूची

अध्याय ४

रीढ़ (पृष्ठवंश) की **अस्थियाँ** (चित्र ५६, ५७) ग्रीवा, पीठ, और कमर की मध्य रेखा में अंगुली से टटोलने से जो डंडे जैसी कड़ी चीज़ मालूम होती है उसको रीढ़, पृष्ठवंश या कशेरु कहते हैं। इस डंडे के वास्तव में २६ टुकड़े हैं जो आपस में बन्धनों से बँधे रहते हैं। इन २६ पृथक् पृथक् अस्थियों में से सबसे नीचे की दो अस्थियाँ वास्तव में कई छोटी छोटी अस्थियों के आपस में जुड़ जाने से बनी हैं। यदि हम इन अस्थियों की गिनती अलग-अलग करें तो रीढ़ की कुल अस्थियों की संख्या ३३ हो जायगी। पृष्ठवंश की हर एक अस्थि को **कशेरुका** या **मोहरा** कहते हैं। एक कशेरुका दूसरे के ऊपर रक्खा रहता है। यदि पृष्ठवंश में अलग अलग अस्थियाँ न होतीं और वह केवल एक लम्बा डंडा होता तो जो गतियाँ ग्रीवा और धड़ में होती हैं वे कदापि न हो सकतीं।

इन २६ अस्थियों में से ७ ग्रीवा में रहती हैं; १२ पीठ में ; ५ कमर में; शेष २ अस्थियाँ कमर के नीचे वस्तिगह्वर की पिछली दीवार में रहती हैं। इन नीचे वाली दोनों अस्थियों में से ऊपर की बड़ी होती है और नीचे की छोटी। बड़ी अस्थि वास्तव में ५ कशेरुका के आपस में जुड़ जाने से बनी है; और छोटी अस्थि ४ कशेरुका से। बड़ी अस्थि को **त्रिक** और छोटी को **पुच्छास्थि, गुदास्थि** या **चंचु** कहते हैं।

चित्र ५६ कशेरुका।
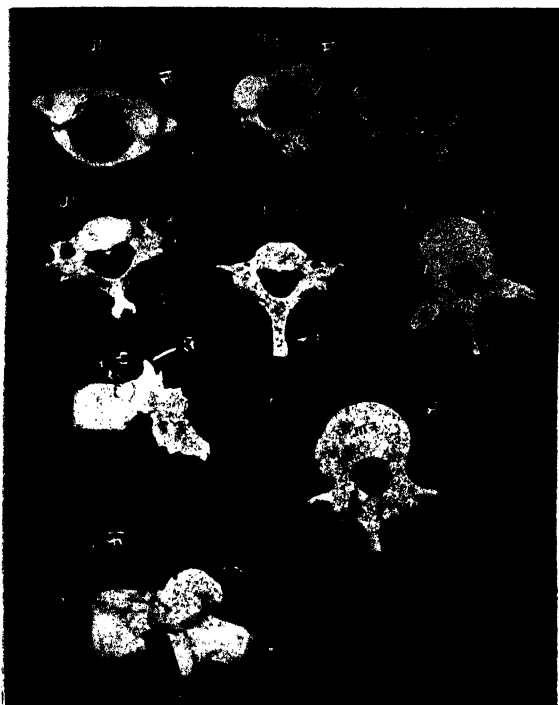
ग = ग्रीवा; पी = पीठ; क = कटि

ग १ = ग्रीवा का पहला कशेरुका; स = संधि अर्बुद; पा = पार्श्वप्रवर्द्धन

ग २ = " दूसरा " स = संधि प्रवर्द्धन

ग २′ = " " " द = दंत प्रवर्द्धन

ग = ग्रीवा का सामान्य " पार्श्वप्रवर्द्धन में छिद्र है

ग ७ = ग्रीवा का सातवाँ " १ = लंबा कशेरु कण्टक

पृष्ठ १०० के सम्मुख

चित्र ६६

चित्र ५७
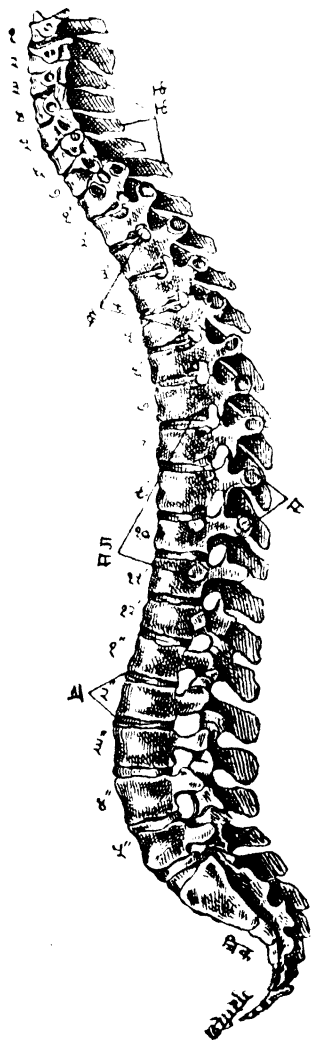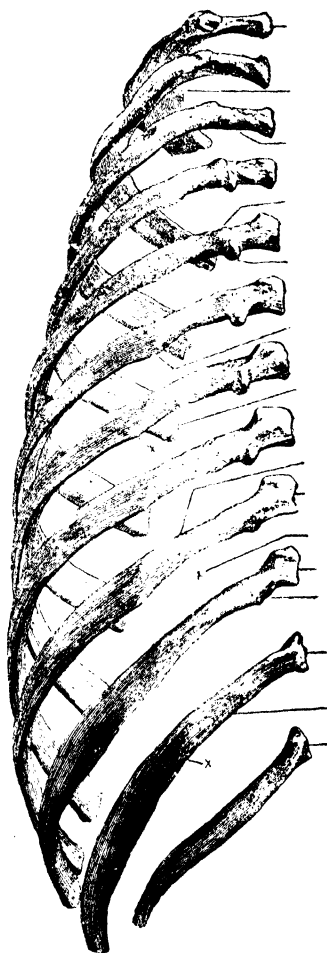
चित्र ४७ पृष्ठवंश

१ से ७ तक = ग्रीवा के कशेरुका

१' से १२' तक = पीठ के कशेरुका

१" से ५" तक = कटि या कमर के कशेरुका

क क = कशेरु कण्टक या पाश्चात्य प्रवर्द्धन

स = स्थालक या गढ़ा यहाँ पसली का अर्बुद या उभार मिलता है

स ग = गात्र का स्थालक, यहाँ पसली का पिछला सिरा मिलता है

च = कारटिलेज की चक्री

छ = नाड़ियों के बाहर आने के लिये रास्ता
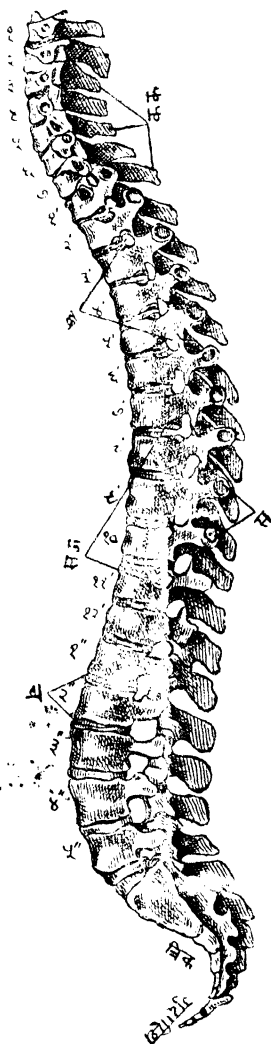
कशेरुका की गिनती विरूप अस्थियों में है क्योंकि इनमें कहीं उभार होता है, कहीं छिद्र होता है; कहीं से ये मोटे होते हैं, और कहीं से पतले। रीढ़ की लम्बाई पुरुषों में २८ इंच, स्त्रियों में २४ इंच के लगभग होती है। रीढ़ की लम्बाई की शरीर की ऊँचाई से निस्बत १:२·४ से २·७ तक के लगभग होती है।

चित्र ४८ पीठ का कशेरुका
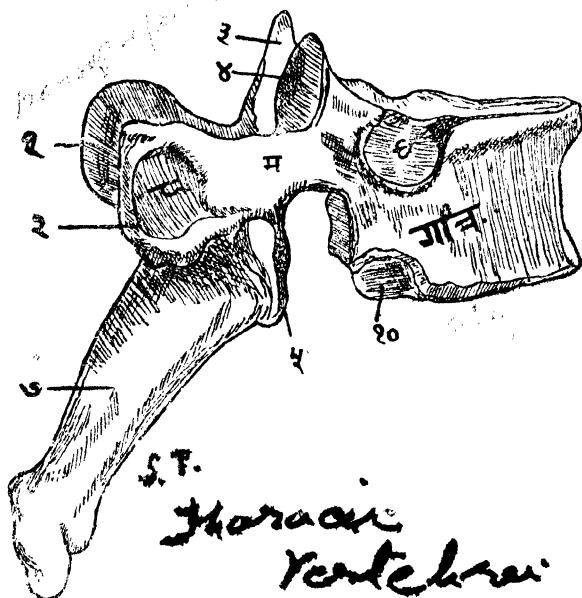
१, २ पार्श्व प्रवर्द्धन। ३, ४, ५—संधि प्रवर्द्धन। ७—पाश्चात्य प्रवर्द्धन या कशेरुकण्टक। ८—स्थालक (गढ़ा)। ९, १०—स्थालक (गढ़े)। म = चक्र मूल।

एक सामान्य कशेरुका का वर्णन

कशेरुका की शकल कुछ कुछ नगदार अँगूठी से मिलती है। अँगूठी का नग वाला भाग मोटा होता है और शेष भाग जो घेरा बनाता है पतला। कशेरुका के भी दो मुख्य अंश होते हैं; अगला अंश मोटा होता है। इसको **गात्र** या **पिंड** कहते हैं; गात्र के पीछे उससे जुड़ा हुआ एक घेरा (चक्र) रहता है। इन दोनों भागों से अर्थात् गात्र और घेरे से कई उभार निकले रहते हैं। इन उभारों को छेदन शास्त्र की परिभाषा में **प्रवर्द्धन** कहते हैं। प्रत्येक कशेरुका में सात प्रवर्द्धन होते हैं :—

(१—२) जिस स्थान पर घेरा गात्र से जुड़ा रहता है वहाँ से दोनों ओर एक एक अनुप्रस्थ प्रवर्द्धन निकला रहता है। ये **पार्श्व प्रवर्द्धन** कहलाते हैं। (चित्र ५८ में २)

(३—४; ५—६) जहाँ गात्र, पार्श्व प्रवर्द्धन वा घेरा एक दूसरे से मिलते हैं वहाँ दोनों ओर दो दो प्रवर्द्धन होते हैं। इनमें से एक ऊपर को खड़ा रहता है और दूसरा नीचे को जाता है। जब कशेरुका एक दूसरे के ऊपर रहते हैं तो ऊपर के कशेरुका के नीचे के प्रवर्द्धन नीचे वाले कशेरुका के ऊपर के प्रवर्द्धनों से मिल जाते हैं और इस मेल से संधियाँ या जोड़ बन जाते हैं; इन प्रवर्द्धनों को संधि प्रवर्द्धन कहते हैं। ऊपर वाले ऊर्ध्व नीचे वाले निम्न, **संधि प्रवर्द्धन** कहलाते हैं। चित्र ५८

(७) घेरे के पिछले भाग से एक नोकीला प्रवर्द्धन निकला रहता है। जब हम रीढ़ को अंगुली से टटोलते हैं तब मध्य रेखा में इन्हीं प्रवर्द्धनों को स्पर्श करते हैं यह पाश्चात्य प्रवर्द्धन या

कशेरुकएटक कहलाता है। (चित्र ५८) कशेरुका का वह भाग जहाँ घेरा और गात्र एक दूसरे से मिलते हैं **चक्रमूल** कहलाता है।

एक कशेरुका का गात्र दूसरे के गात्र के ऊपर टिका रहता है। दो गात्रों के बीच में सूत्रमय कारटिलेज की एक मोटी चक्री रहती है। घेरे एक दूसरे के ऊपर आ जाते हैं; इनके एक दूसरे के ऊपर रहने से एक नली बन जाती है जो काशेरुकी नली कहलाती है। इस नली में बात संस्थान का वह भाग रहता है जिसको **सुषुम्णा** कहते हैं। दो कशेरुका के बीच में गात्रों के पीछे और संधि प्रवर्द्धनों के आगे एक रास्ता रहता है जिसमें से होकर सुषुम्णा से निकली हुई नाड़ियाँ काशेरुकी नली से बाहर आती हैं।

अब हम हर एक देश के मोहरों में जो विशेष बातें होती हैं उनका वर्णन करते हैं।

ग्रीवा के कशेरुका के लक्षण (चित्र ५६ में ग १ ग २, ग, ग ७) पहिले और दूसरे मोहरों को छोड़कर शेष मोहरे एक ही जैसे होते हैं केवल छोटे बड़े का भेद होता है। नीचे वाले मोहरे ऊपर वालों से कुछ बड़े होते हैं। इन मोहरों के पार्श्व प्रवर्द्धनों में एक छिद्र होता है; छिद्र के आगे यह प्रवर्द्धन बहुधा फटकर दो भागों मे विभक्त हो जाता है (चित्र ५६ में ग,)। पहिले और सातवें मोहरों (चित्र ५६ में ग ७) छोड़ कर और सब मोहरों के पाश्चात्य प्रवर्द्धन नोक पर से फटे हुए होते हैं। सातवें मोहरे का यह प्रवर्द्धन बहुत लम्बा होता है और नोक पर से फटा हुआ नहीं होता (चित्र ५६ ग ७ में १)।

चित्र ५९ प्रथमा ग्रीवा कशेरुका

(ऊपर का भाग)
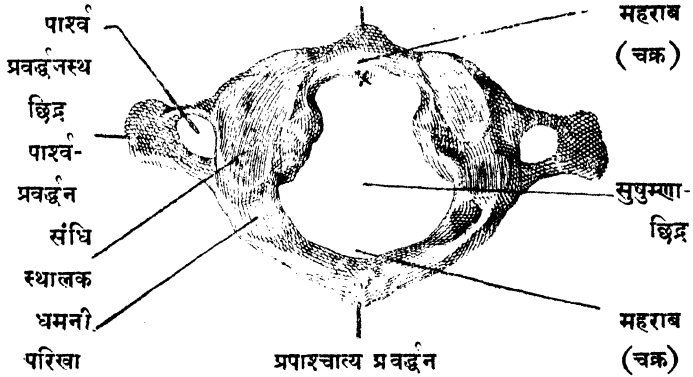
चित्र ६० प्रथमा ग्रीवा कशेरुका

(नीचे का भाग)
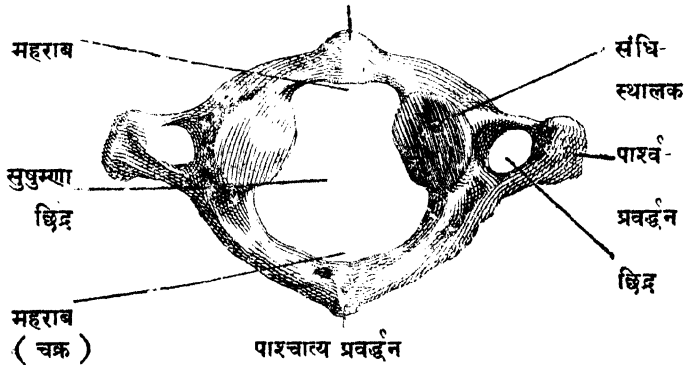
पहिले मोहरे में और मोहरों के गात्र जैसा कोई मोटा भाग नहीं होता। गात्र के स्थान में एक महराब होती है। पाश्चात्य प्रवर्द्धन बहुत छोटा होता है। संधि प्रवर्द्धन भिन्न प्रकार के होते हैं; इनमें से ऊपर के प्रवर्द्धनों पर कपाल की पाश्चात्य अस्थि आश्रित रहती है। (चित्र ५६ में ग १, चित्र ५९, ६० ,)

दूसरे मोहरे में यह विशेषता है कि गात्र के ऊपर से एक दाँत के सदृश (दंतवत्) प्रवर्द्धन और निकला रहता है। (चित्र ५६-ग २ में द)

पीठ के मोहरों के लक्षण (चित्र ५८ चित्र ५६ में पी) पीठ के मोहरे ग्रीवा के मोहरों से अधिक मोटे और मजबूत होते हैं। इनके पार्श्व प्रवर्द्धनों में कोई छिद्र नहीं होता परन्तु ऊपर के दस मोहरों में इन प्रवर्द्धनों के सिरों पर एक छोटा सा गढ़ा या स्थालक होता है; यहाँ पर पसली के पिछले सिरे का एक अंश आकर मिलता है। सब मोहरों के गात्रों पर दोनों ओर पार्श्व प्रवर्द्धनों के आगे पसलियों के पिछले सिरों के मिलने के लिये दो (या एक) गढ़े होते हैं। ऊपर के आठ मोहरों में दो दो गढ़े होते हैं एक ऊपर के किनारे के पास दूसरा नीचे के किनारे के पास (चित्र ५८ में ९, १०)। ९, १०, ११, १२ मोहरों के गात्रों पर केवल एक एक गढ़ा होता है। पाश्चात्य प्रवर्द्धन सिरों पर से फटे हुए नहीं होते और वे नीचे को झुके रहते हैं।

कमर (कटि) के मोहरों के लक्षण (चित्र ५६ क, क, चित्र ६१) इस देश के मोहरे सब से मोटे और मजबूत होते हैं। इनके गात्र बहुत चौड़े और मोटे होते हैं। इस देश में पसलियों के न होने के कारण गात्रों पर पीठ के मोहरों की भाँति कोई गढ़ा नहीं होता है। पार्श्व प्रवर्द्धन बहुत मोटे होते हैं और उन

पर कई छोटे छोटे उभार होते हैं। इन प्रवर्द्धनों में न कोई छिद्र होता है और न कोई गढ़ा।

चित्र ६१ कटि कशेरुका
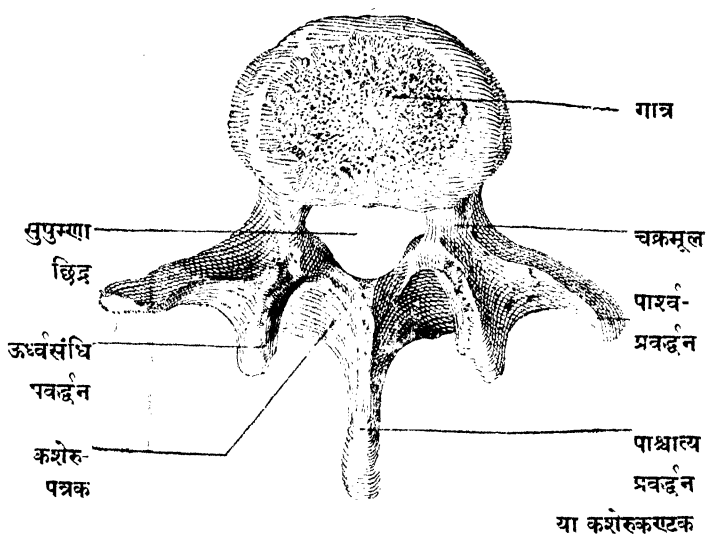
त्रिक देश के मोहरे (चित्र ६२, ६३)

त्रिक :—इस देश में दो अस्थियाँ हैं जिनमें से ऊपर की बड़ी होती है और नीचे की छोटी। बड़ी अस्थि वास्तव में पाँच मोहरों के आपस में जुड़ जाने से बनी है; इस बात के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। अस्थि के अगले पृष्ठ पर चौड़ाई के रुख चार उभरी हुई रेखाएँ होती हैं; यहीं पर इन मोहरों के गात्र आपस में जुड़े हैं। गात्रों के इधर उधर अस्थि का जो भाग है वह पार्श्व

प्रवर्द्धनों के जुड़ जाने से बना है। अस्थि का पिछला भाग मोहरों के घेरों और सन्धि प्रवर्द्धनों के आपस में मिल जाने से बना है; इनके आपस में जुड़ने से एक नली बन जाती है जिसके भीतर नाड़ियाँ रहती हैं। ऊपर वाले मोहरों के नीचे वालों से बड़े होने के कारण इस अस्थि की शकल तिकोनी होती है (शायद इसी कारण इसका नाम त्रिक पड़ा है) इस अस्थि के अगले और पिछले पृष्ठों पर ८, ८ छिद्र होते हैं, चार मध्य रेखा के एक ओर चार दूसरी ओर। इन छिद्रों में से होकर नाड़ियाँ बाहर निकलती हैं और रक्त की नलियाँ आती जाती हैं।

इस अस्थि के पार्श्वों से नितंबास्थियाँ जुड़ी रहती हैं।

चित्र ६२ में त्रिकास्थि (अगला पृष्ठ)
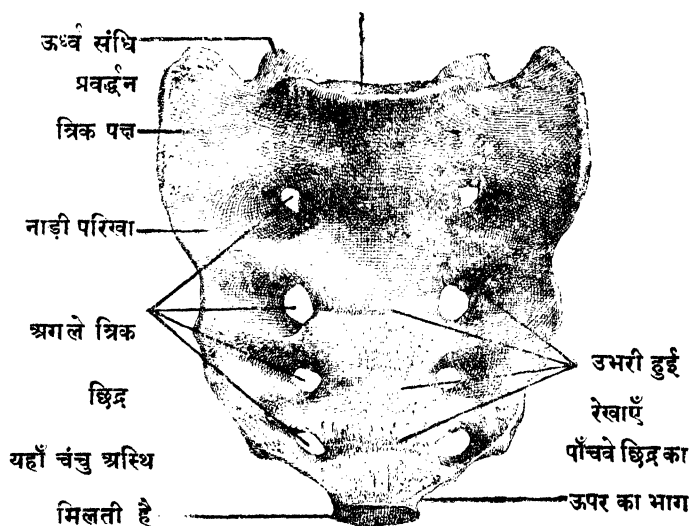
चित्र ६३ त्रिकास्थि (पिछला पृष्ठ)
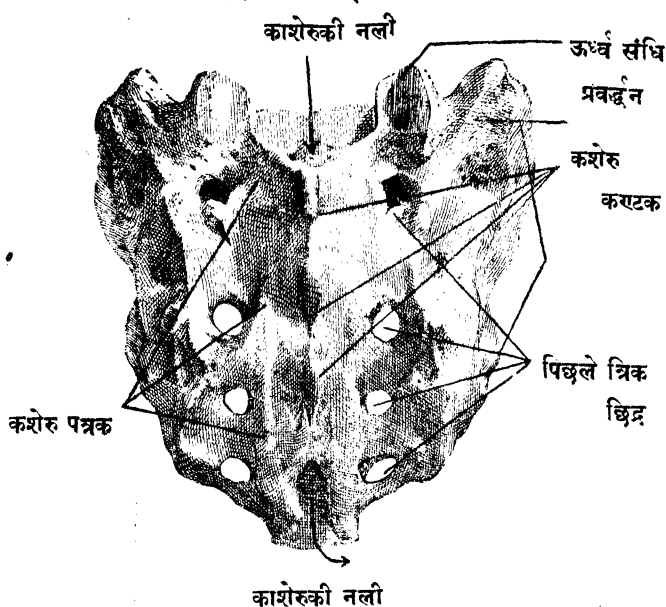
पुच्छास्थि या गुदास्थि:—वास्तव में यह चार छोटी छोटी अस्थियों के जुड़ जाने से बनी है। जिन जानवरों में पूँछ होती है उनमें ये मोहरे जुदा जुदा होते हैं*। यह अस्थि पूँछ की अस्थि है। मनुष्य के शरीर के विकास के समय यह पूँछ लुप्त हो गई। इसकी शकल तिकोनी होती है। यह अस्थि ऊपर चौड़ी होती है और नीचे नोकीली। मलद्वार के पीछे

* घोड़े की पूंछ में १९-२१ तक सामान्यतः १८; बैल में १८-२०; सुअर और कुत्ते में २०-२३ कशेरुका होते हैं। (देखो चित्र १९-१६ तक)

अंगुली से दबा कर हम इस अस्थि की नोक को स्पर्श कर सकते हैं। इस अस्थि में न कोई छिद्र होता है और न कोई नली। (चित्र ६४ में पुच्छास्थि; चित्र ४२, ४३)

चित्र ६४ पीठ
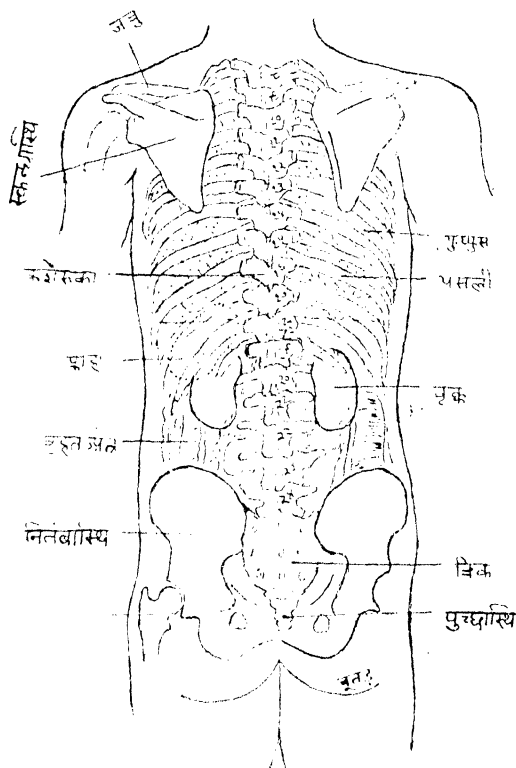
जत्रु = अक्षक

वक्षःस्थल की अस्थियाँ (चित्र ९, ११, ४४)

वक्ष की दीवार में ३७ अस्थियाँ होती हैं। इनमें से एक अस्थि सामने मध्य रेखा में रहती है, इसको वक्षोऽस्थि कहते हैं। पीठ में १२ मोहरे रहते हैं; इनका वर्णन पीछे किया जा चुका है। दोनों पार्श्वों में १२, १२ अस्थियाँ रहती हैं, इनको पसलियाँ कहते हैं। इस प्रकार पीठ के मोहरों को छोड़कर २५ अस्थियों का वर्णन करना शेष है।

वक्षोऽस्थि या उरोऽस्थि (चित्र ६५, ६८)

यह एक चौड़ी और चपटी अस्थि है। इसके दो पृष्ठ होते हैं एक अगला, दूसरा पिछला; दो किनारे होते हैं एक दाहिना दूसरा बायाँ; दो सिरे होते हैं एक ऊपर का दूसरा नीचे का। ग्रीवा के नीचे के भाग से आरम्भ होकर यह अस्थि उदर के कौड़ी देश तक रहती है। कौड़ी में दबा कर टटोलने से जो कड़ी चीज मालूम होती है वह इसी अस्थित के नीचे का भाग है।

इस अस्थि का ऊपर का भाग अधिक चौड़ा है, यहाँ दोनों ओर अक्षकास्थियों के सिरों के लिये स्थालक होते हैं। इन स्थालकों के नीचे दोनों किनारों पर सात सात स्थालक और होते हैं जिनसे ऊपर की सात पसलियों के अगले सिरों पर लगे हुए कारटिलेजों (उपपर्शुका) के नोकीले सिरे मिलते हैं।

चित्र ६४ उरोस्थि (अगला पृष्ठ)
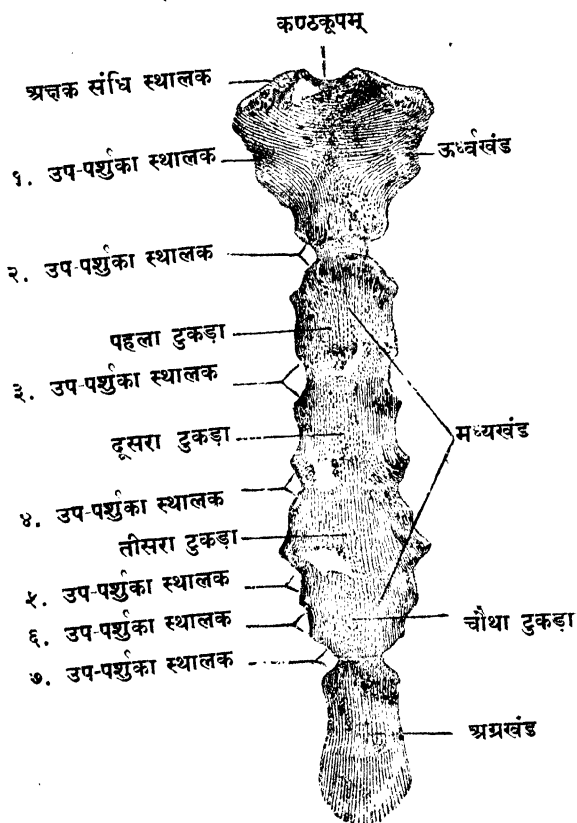
बहुधा इस अस्थि के तीन अंश या टुकड़े अलग अलग पाए जाते हैं (चित्र ६८ में) (१)—एक ऊपर का चौड़ा और छोटा

(ऊर्ध्वखंड), दूसरा बीच का लम्बा (मध्यखंड), तीसरा नीचे का पतला (अग्रखंड) जो कौड़ी देश में दबाने से स्पर्श किया जा सकता है (चित्र ६८ के १ में १, २, ३) जहाँ ऊर्ध्वखंड मध्यखंड से जुड़ता है वहाँ टटोलने से चौड़ाई के रुख एक उभरी हुई रेखा मालूम होती है। ऊर्ध्वखंड से अक्षक और पहली पसली का कारटिलेज; उर्ध्व और मध्यखंड के जोड़ पर दूसरी पसली का कारटिलेज ; दूसरे खंड के शेष भाग से ३, ४, ५, ६ पसलियों के कारटिलेज मिलते हैं। मध्य और अग्रखंड के जोड़ पर सातवीं पसली का कारटिलेज लगता है (चित्र ९ और ६५)※

पसलियाँ (पर्शुका) (चित्र ९, ४४, ६४, ६६, ६७)

दोनों ओर बारह बारह पसलियाँ होती हैं। ऊपर और नीचे की पसलियाँ बीचवाली पसलियों से कम लम्बी होती हैं। ऊपर की दस पसलियों के पिछले सिरे पीठ के मोहरों के गात्रों और पार्श्व प्रवर्द्धनों से मिले और बँधे रहते हैं, ११ वीं और १२ वीं पसलियों के पिछले सिरे केवल ११ वें और १२ वें मोहरों के गात्रों से बँधे रहते हैं, उनका प्रवर्द्धनों से कोई संबंध नहीं होता।

※ देखो चित्र ६८। बचपन में उरोस्थि के छः टुकड़े होते हैं जो आपस में कारटिलेज द्वारा जुड़े रहते हैं (२); वृद्धावस्था में तीनों टुकड़े एक दूसरे से जुड़ जाते हैं और अग्रखंड जो जवानी में कारटिलेज का था अस्थिकृत हो जाता है (३)।

चित्र ६६ पर्शुका

पसलियों के अगले सिरे सामने मध्यरेखा तक नहीं पहुँचते, उनका वक्षोऽस्थि से कुछ दूरी पर अन्त हो जाता
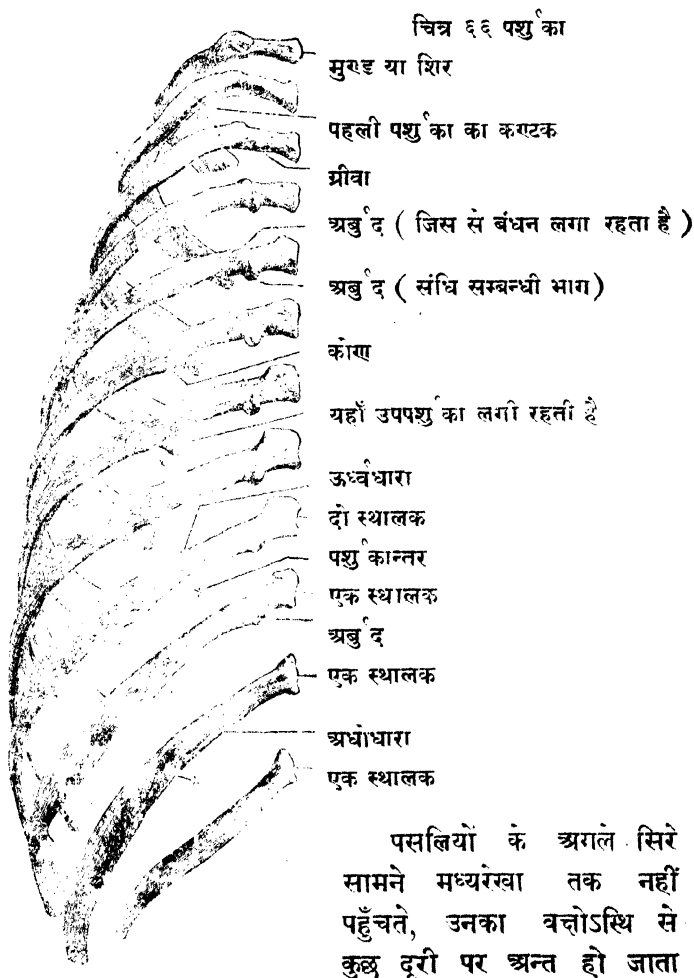
है। पसलियों के अगले सिरों और वक्षोऽस्थि के किनारे के बीच में कारटिलेज* की पट्टियाँ रहती हैं इनको **उपपर्शुका** कहते हैं। केवल ऊपर की सात उपपर्शुका वक्षोऽस्थि से जुड़ी रहती हैं; आठवीं नवीं और दसवीं उपपर्शुकाएं

चित्र ६७ पर्शुका (पसली)
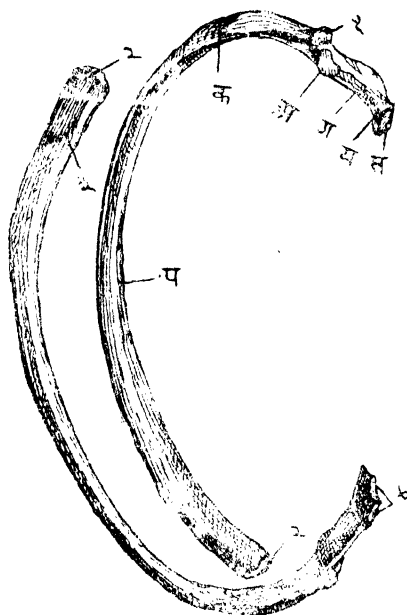
म = मुण्ड या शिर

स = स्थालक

ग = ग्रीवा

अ = अर्बुद

क = कोण

प = गात्र

१. अर्बुद का यह भाग पार्श्व प्रवर्द्धन के स्थालक से मिलता है

२ = वक्षोऽस्थि की ओर का सिरा जिस पर उपपर्शुका लगी रहती है; ३ = कोण; ४ = कशेरुका की ओर का सिरा जिस पर सामान्यतः दो गड़े या स्थालक होते हैं।

* अंग्रेजी भाषा।

वक्षोऽस्थि तक नहीं पहुँचतीं; आठवीं उपपर्शुका ऊपर वाली सातवीं उपपर्शुका से बँधी रहती है; इसी प्रकार नवी आठवीं से और दसवीं नवीं से बँधी रहती है (चित्र ९)

नीचे की ११ वीं और १२ वीं पसलियाँ छोटी छोटी होती हैं। इनके अगले सिरों के कारटिलेज न वक्षोऽस्थि तक पहुँचते हैं और न अपने ऊपर वाले कारटिलेजों से बँधे रहते हैं। ११ वीं पसली का अगला सिरा उदर की दीवार को दबाकर स्पर्श किया जा सकता है।

पसलियों के बीच में जो अंतर रहता है उसमें मांस-पेशियाँ रहती हैं। ये पेशियाँ ऊपर की पसली के नीचे के किनारे से और नीचे की पसली के ऊपर के किनारे से लगी रहती हैं।

पसलियाँ तिरछी लगी रहती हैं। श्वास लेते समय वक्षोऽस्थि और पसलियाँ मांसपेशियों के सिकुड़ने के कारण ऊपर को उठती और फिर नीचे को गिरती दिखाई देती हैं। ऊपर को उठने से वक्षःस्थल (छाती) की समाई बढ़ जाती है।

यदि हम अक्षक, स्कन्धास्थि और बाहु को वक्ष से जुदा कर दें तो वक्ष का आकार कुछ कुछ गावदुमी (शंकाकार) दिखाई देगा (चित्र नं० ९) अर्थात् वह गरदन की ओर कम चौड़ा है और यहाँ से उदर की ओर अधिक चौड़ा होता चला गया है। इस कोष्ठ की तली में एक मांस का परदा लगा है जो **वक्षउदरमध्यस्थ पेशी** कहलाता है।

कंकाल को देखने से (चित्र ४४ में छ) पीठ के पहले मोहरे, दोनों ओर की पहिली पसलियों और वक्षोऽस्थि के ऊपर के किनारे के बीच में एक गोल छिद्र दिखाई देता है (इस छिद्र

चित्र ६८ उरोस्थि

(१) (२) (३)
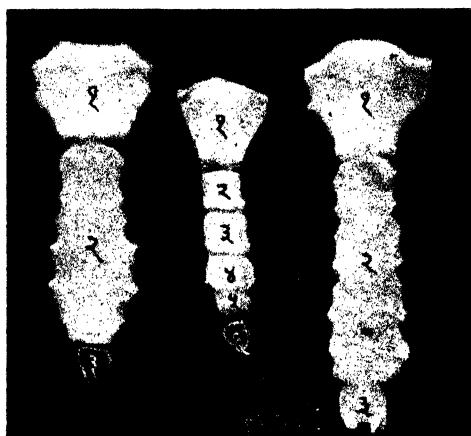
त्रि. ना. वर्मा

(१) = जवान मनुष्य की उरोस्थि
(२) = १०, १२ वर्ष के बालक की उरोस्थि
(३) = वृद्ध पुरुष की उरोस्थि

पृष्ठ ११६ के सम्मुख

चित्र ६९ खोपड़ी
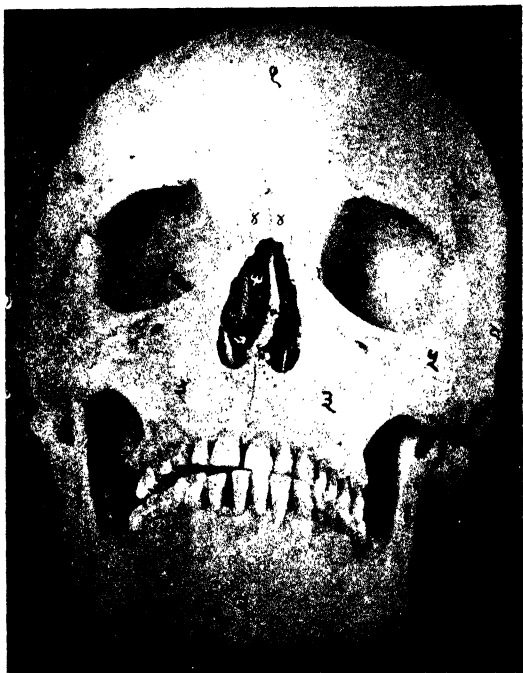
त्रि० ना० वर्मा

१ = ललाटास्थि
२ = अधोहन्वस्थि
३ = ऊर्ध्वहन्वस्थि
४ = नासास्थि
५ = गंडास्थि
६ = नासाफलक
७ = अधोशुक्तिका
८ = शंखास्थि
९ = मध्य शुक्तिका

पृष्ठ ११७ के सम्मुख

की सीमा उपर्युक्त अस्थियों से बनती है)। इस छिद्र या द्वार में से हो कर टेंटुवा, अन्न प्रणाली और रक्त की कई नलियाँ ग्रीवा से वक्ष के भीतर जाती हैं और रक्त की कई नलियाँ व महा लसीका वाहिनी वक्ष से निकल कर ग्रीवा में जाती हैं।

जब बाहु वक्ष से जुड़ी रहती है तो वक्ष का ऊपर का भाग नीचे से अधिक चौड़ा और मोटा दिखाई देता है; कारण यह है कि बाहु वक्ष से सामने की तरफ़ मोटी मोटी मांसपेशियों द्वारा बँधी रहती है और इन पेशियों के ऊपर वसा रहती है; इन पेशियों, वसा और स्कन्ध के उभार के कारण वक्ष का ऊपर का भाग नीचे के भाग से अधिक चौड़ा और उभरा हुआ दिखाई देता है।

कर्पर (खोपड़ी) की अस्थियाँ

खोपड़ी में २२ अस्थियाँ होती हैं। इनमें से ८ अस्थियों के परस्पर मेल से एक कोष्ठ बन जाता है जिसके भीतर मस्तिष्क या दिमाग़ रहता है। शेष १४ अस्थियाँ इस कोष्ठ के अगले भाग में लगी रहती हैं और इन से चेहरे का ढाँचा बनता है। इस ढाँचे में आँखों के लिये गढ़े होते हैं; नासिका होती है और नासिका के नीचे जबड़े होते हैं। (चित्र ६९)

खोपड़ी का वह भाग जो आठ अस्थियों के परस्पर मेल से बना है **कपाल** कहलाता है। (चित्र ७०)

कपाल की अस्थियां

(१) **ललाटास्थि*** (चित्र ६९ में १; चित्र ७०, ७१)। इस कोष्ठ के अगले भाग में जो अस्थि है उसको ललाटास्थि कहते

* दूसरा नाम पुरःकपालम्।

हैं। माथा या मस्तक इसी अस्थि से बनता है। इस अस्थि के दो भाग हैं, एक भाग भौं के ऊपर दूसरा उसके नीचे। भौं के स्थान में अस्थि मुड़ गई है; ऊपर का भाग ऊपर को चोटी की ओर चला जाता है; नीचे का भाग पृथिवी के समांतर पीछे को चला गया है। पहिला भाग ऊर्ध्व (खड़ा) दूसरा समस्थ (पड़ा) कहलाता है। भौं के स्थान पर दोनों भागों के मेल से एक समकोण बनता है। समस्थ भाग मध्यरेखा में कटा रहता है; इस अंतर या घाई में कपाल की बहुछिद्रास्थि (झर्झरास्थि) का एक अंश फँसा रहता है (चित्र ७१ में १, चित्र ८१) समस्थ भाग के दो पृष्ठ होते हैं एक ऊपर का, दूसरा नीचे का; ऊपर के पृष्ठ से कपाल की तली का अगला भाग बनता है और उस पर मस्तिष्क का अगला भाग रक्खा रहता है (चित्र ८४ में २३) नीचे के पृष्ठ से आँखों के गढ़ों की छतें बनती हैं (चित्र ९२)। ऊर्ध्व भाग के अगले पृष्ठ से माथा, पिछले पृष्ठ से कपाल की अगली दीवार और कुछ भाग छत का बनता है। नवजात बालक में इस अस्थि के दाहिने और बाएँ दो भाग होते हैं और इनके बीच में झिल्ली रहती है (चित्र ७३)।

(२–३) **पार्श्विकास्थि** (चित्र ७०, ७२, ७३, ७४, ८८)। ललाटास्थि के पीछे कपाल की छत में दो चौड़ी और चपटी अस्थियाँ हैं। इन अस्थियों से छत का बीच का भाग और दोनों पार्श्वों के अधिक भाग बनते हैं। एक अस्थि दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर रहती है। हर एक अस्थि चौकोर है; उस के चार कोने चार किनारे और पृष्ठ होते हैं। अस्थि बीच में शिर की गोलाई के अनुसार मुड़ी रहती है; कान के ऊपर टटो-लने से जो एक उभार मालूम होता है यह वह स्थान है जहाँ

चित्र ७० कपाल की आठ अस्थियाँ

(Toldt's Atlas of Anatomy)

चित्र ७१ ललाटास्थि का भीतरी पृष्ठ (अन्तस्तल)
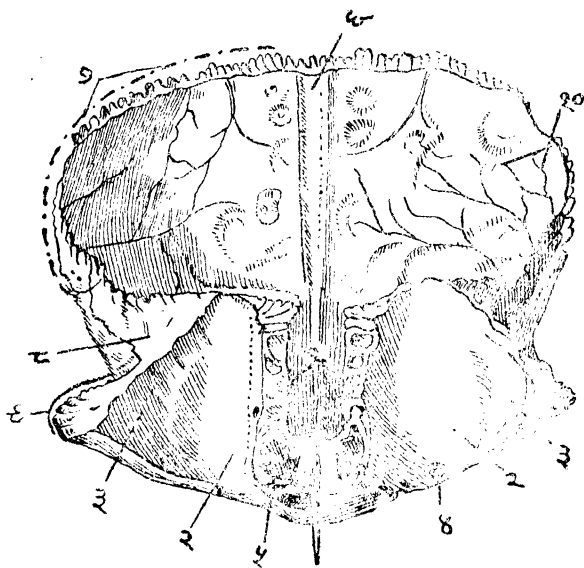
१—थाई या अंतर जिसमें झर्झरास्थि का एक भाग फँसा रहता है। २, ३, ४—समस्थ भाग का नीचे का पृष्ठ जिससे आँख के गढ़े की छत बनती है। इस भागको नेत्रच्छदिफलक कहते हैं। ३—अश्रु ग्रन्थिखात। ४—धमनी वा नाड़ीछिद्र। ५—खोखला भाग जिसमें वायु रहती है (वायुकोटर)। ६—शिरा कुल्या परिखा। ७—इस किनारे से पार्श्विकास्थि का अगला किनारा जुड़ता है। ८—यहाँ जतूकास्थि इस अस्थि से जुड़ी रहती है। ९—यहाँ गंडास्थि लगी रहती है। १०—धमनियों के दबाव से ये नालियाँ बन गई हैं।

यह अस्थि मुड़ी रहती है। अस्थि का अगला किनारा ललाटास्थि के ऊर्ध्व भाग के पिछले किनारे से मिला रहता है, ऊपर का किनारा मध्यरेखा में दूसरी ओर की अस्थि के किनारे से मिला रहता है; पिछला किनारा पश्चादस्थि के अगले किनारे से मिला रहता है; नीचे का टेढ़ा किनारा शंखास्थि के किनारे से मिला रहता है।

अस्थि में चार कोने होते हैं—दो अगले ऊपर और नीचे के (चित्र ७४ में १, २) दो पिछले ऊपर और नीचे के (चित्र

चित्र ७२ बालक की खोपड़ी का ऊपर का पृष्ठ
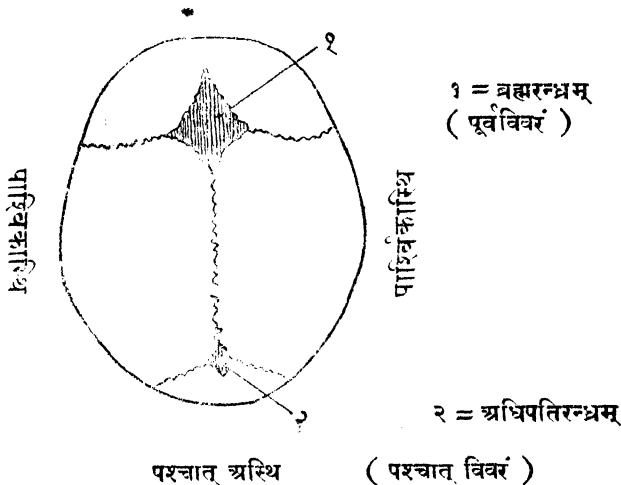
चित्र ७२ एक नवजात बालक के शिर का छेदन है। ललाटास्थि के बचपन में दो भाग होते हैं यह स्पष्टरूप से मालूम होता है।

७४ में ३, ४) उसके दो पृष्ठ होते हैं एक बाहर का (बहिः) दूसरा भीतर का (आभ्यन्तर)। भीतरी पृष्ठ पर धमनियों के दबाव से कई परिखाएं बनी होती हैं (चित्र ७४ में ६, ७)

यदि आप किसी नवजात बालक के शिर को उस स्थान पर दबायें जहाँ इन अस्थियों के ऊपर के अगले कोने ललाटास्थि से मिलते हैं तो आप को एक गढ़ा मिलेगा और कोई चीज़ फड़कती हुई मालूम होगी। बालकों में इस स्थान में अस्थि नहीं होती; केवल एक झिल्ली रहती है (चित्र७३ में ५) मस्तिष्क में रक्त भ्रमण करने से जो गति होती है वह गति इस झिल्ली में से मालूम होती है। दूसरे वर्ष के भीतर इस झिल्ली की जगह अस्थि बन जाती है और फिर गढ़ा नही रहता और न फड़क मालूम होती है। दो वर्ष की आयु के पश्चात फड़क का पाया जाना किसी रोग का साक्षी है। यह स्थान पूर्व विवर या **ब्रह्मरन्ध्रम्** कहलाता है।

चित्र ७४:—यह बाईं पार्श्विकास्थि का भीतरी पृष्ठ है।

१ = पुरोर्ध्व कोण ; २ = पुराधः कोण ; ३ = पश्चिमोर्ध्व कोण; ४ = पश्चिमाधः कोण ; ५ = पार्श्वशिरा कुल्या परिखा ; ६, ८ = धमनी परिखाएँ ; ८ = ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या परिखा।

चित्र ७५:— पश्चात् अस्थि का भीतरी पृष्ठ है।

१ = दाहिनी शिराकुल्या परिखा ; २ = बाईं शिराकुल्या परिखा ; ३ = उर्ध्व अन्वायाम शिराकुल्या परिखा ; ४ = तीर्णिका ; ५ = शिरा कुल्या संगम ; ६ = शिखर ; ७, ८ = पार्श्व कोण ; ११, १२ = परिखा के किनारे ; १३ = द्वादशी नाड़ी सुरंगा ; × = यह भाग जतूकास्थि से जुड़ा या मिला रहता है।

चित्र ७४
पार्श्विकास्थि
भीतरी पृष्ठ

चित्र ७५
पश्चात् अस्थि
भीतरी पृष्ठ

चित्र ७३ नवजात बालक की खोपड़ी

त्रि० ना० वर्मा

३, ४ = ललाटास्थि के दो भाग जो अभी अलग अलग हैं

५ = ब्रह्मरन्ध्रम्   ६ = झिल्ली

१, २ = पार्श्विकास्थियाँ

पृष्ठ १२३ के सम्मुख

(४) **पश्चात् अस्थि**—(चित्र ७६ में ३ चित्र ७५, ६९, ८८)। कपाल के पिछले भाग में जो अस्थि है उसका नाम पश्चादस्थि है। गुद्दी के ऊपर के भाग में जो उभार है वह इसी अस्थि का एक अंश है। यह अस्थि शिर की गोलाई के अनुसार मुड़ी हुई होती है। मुड़े रहने के कारण इस अस्थि से न केवल कपाल की छत और पिछला भाग ही बनता है प्रत्युत तली या फर्श के बनने में भी सहायता मिलती है (चित्र ७९, ८४)। जहाँ यह अस्थि मुड़ी हुई है वहाँ एक बड़ा छिद्र है (चित्र ७९, ७५ महाछिद्र)। छिद्र के सामने का भाग पृथिवी के समांतर रहता है और समस्थ भाग कहलाता है; छिद्र के पीछे का भाग खड़ा है और ऊपर को जाता है यह ऊर्ध्व भाग कहलाता है। छिद्र के इधर उधर समस्थ भाग के नीचे के पृष्ठ पर दो उभार होते हैं (चित्र ७९ में २८ चित्र ८८ में १०); ये उभार ग्रीवा के प्रथम कशेरुका के संधि प्रवर्द्धनों के ऊपर टिकते हैं और **आलम्ब कूट** कहलाते हैं। जब कपाल इस कशेरुका पर आश्रित रहता है तो अस्थि का बड़ा छिद्र कशेरुकी नली के ऊपर आ जाता है और इस प्रकार कशेरुकी नली का कपाल के कोष्ठ से सम्बन्ध हो जाता है। ऊर्ध्व भाग का अगला किनारा दोनों पार्श्विकास्थियों के पिछले किनारों से मिला रहता है। समस्थ भाग के किनारे शंखास्थियों के किनारों से मिले रहते हैं और सिरा कपाल की तली में रहने वाली जतूकास्थि से जुड़ा रहता है।

दो मास से कम आयु वाले बालक के शिर में जहाँ पार्श्विकास्थियों के ऊपर के पिछले कोने पश्चादस्थि से मिलते हैं वहाँ पर एक गढ़ा रहता है (चित्र ७२ में २); यहाँ भी मस्तिष्क की फड़क मालूम हुआ करती है। दो मास के भीतर ही यह स्थान

अस्थि के बन जाने से मजबूत हो जाता है और फड़क बन्द हो जाती है। यह वही स्थान है जहाँ हिन्दुओं में चोटी (शिखा) रखाने का रिवाज है; बहुत से हिन्दुओं में अगले गढ़े के स्थान में भी कुछ वर्षों तक शिखा रक्खी जाती है (चित्र ७२ में अधिपतिरन्ध्र)।

(५-६) **शङ्खास्थि**—(चित्र ७७, ८८)। पार्श्विकास्थि के नीचे के किनारे से एक बेडौल विरूप अस्थि लगी रहती है, इस अस्थि के ऊपर कान लगा रहता है और उसके भीतर श्रवणेन्द्रिय के शेष भाग रहते हैं; इस अस्थि के बाहरी पृष्ठ पर मध्य में एक छिद्र होता है; यह कान का बाहरी छिद्र है। (चित्र ७७ में कर्ण बहिर्द्वार) इस छिद्र के ठीक पीछे एक मोटा उभार होता है; यह कान के पीछे टटोल कर स्पर्श किया जा सकता है। छिद्र के आगे और कुछ उसके नीचे अस्थि में एक गढ़ा रहता है (चित्र ७७ में हनुसन्धिस्थालक), अधो हन्वस्थि के ऊर्ध्व भाग का एक अंश (हनुमुण्ड) इस गढ़े में रहता है; यदि हम छिद्र के आगे अंगुली रक्खें और मुँह खोलें और बन्द करें तो अधोहनु इस स्थान पर गति करता मालूम होगा। इस गढ़े के ऊपर और छिद्र के आगे एक लम्बा और पतला प्रवर्द्धन है; हम इसको छिद्र के आगे टटोल कर मालूम कर सकते हैं; दुबले मनुष्यों में वसा कम होने के कारण यह प्रवर्द्धन त्वचा में से उभरा हुआ दिखाई देता है (चित्र ७७ में गंड प्रवर्द्धन)। छिद्र और प्रवर्द्धन के ऊपर का भाग चोड़ा और चपटा होता है और **शङ्ख चक्र** कहलाता है।

शङ्खास्थि के भीतरी पृष्ठ से एक मोटा त्रिपार्श्विक भाग आगे को और कुछ कुछ मध्यरेखा की ओर निकला रहता है। यह अंश

चित्र ७६ खोपड़ी (वहिस्तल)

त्रि. ना. वर्मा

१ = ललाटास्थि; २ = पार्श्विकास्थि; ३ = पश्चात् अस्थि;
४ = शङ्खास्थि; ५ = गंडास्थि; ६ = जतूकास्थि का बृहत् पक्ष;
७ = ऊर्ध्वहन्वस्थि, ८ = अधोहन्वस्थि; ९ = अश्रवस्थि;
१० = नासास्थि; प = शिफा प्रवर्द्धन

पृष्ठ १२४ के सम्मुख

हमारे शरीर की रचना—प्लेट १२ चित्र ७७ शंखास्थि (बाहरी पृष्ठ)
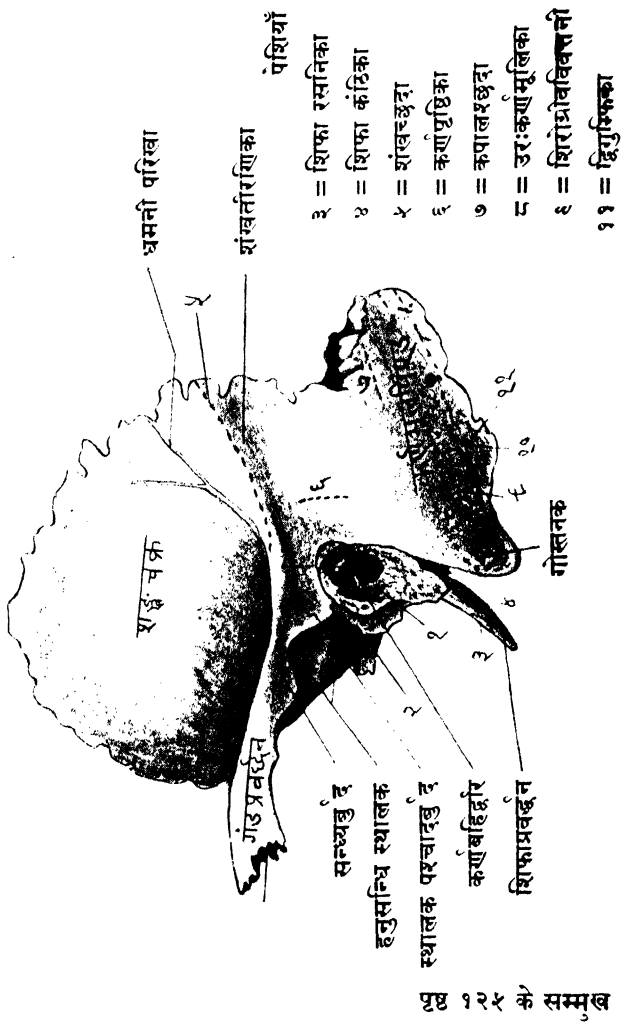
पृष्ठ १२५ के सम्मुख

शेष अस्थि से उसी स्थान पर जुड़ा रहता है जहाँ उसके बाहरी पृष्ठ पर छिद्र है। इसके तीन पृष्ठ हैं, सामने का, पीछे का और नीचे का। कपाल की तली को बाहर से देखने से केवल नीचे का पृष्ठ दिखाई देगा (चित्र ७९) इसमें कई गढ़े और छिद्र होते हैं और एक कील जैसा नोकीला प्रवर्द्धन भी निकला रहता है (चित्र ७७ में **शिफा प्रवर्द्धन**); दो पृष्ठ कपाल के भीतर रहते हैं (चित्र ८४) और उन पर मस्तिष्क रक्खा रहता है; पिछले पृष्ठ पर एक छिद्र होता है जिसको **कर्णान्तर्द्वार** कहते हैं। त्रिपार्श्विक अंश के उस भाग में जो दोनों छिद्रों (बाहरी और भीतरी) के बीच में है श्रवणेन्द्रिय के मुख्य भाग रहते हैं। यह त्रिपार्श्विक भाग पत्थर जैसा सख्त होता है और **अश्म-कूट** कहलाता है।*

शङ्खास्थि अपने आस पास की अस्थियों से मिली रहती है; चौड़े भाग का ऊपर का किनारा पार्श्विक अस्थि से और पिछला किनारा पश्चादस्थि से मिला रहता है। त्रिपार्श्विक भाग पीछे पश्चादस्थि के समस्थ भाग से मिला रहता है। यह अस्थि और अस्थियों से भी मिली रहती है।

अब इन ६ अस्थियों से कपाल का अधिक भाग बन गया है; उसकी अगली और पिछली दीवारें, छत, दोनों पार्श्व पूर्ण हो गये हैं। फ़र्श (तली) का भी अधिक भाग बन गया है, परन्तु बीच में कुछ अपूर्णता है जो निम्नलिखित अस्थियों से पूर्ण होती है।

* इस भाग में तीन छोटी अस्थियाँ भी रहती हैं।

चित्र ७९ की व्याख्या

१ = अग्र तालुखात
२ = कर्तनक दंत उलूखल
३ = भेदक दंत उलूखल
४ = संधि
५ = अग्र चर्वणक दंत उलूखल
६ = संधि
७ = पश्चिम चर्वणक दंत उलूखल
८ = पश्चिम तालुछिद्र
९ = गंडास्थि (शंख प्रवर्द्धन)
१० = चर्णखात
११ = जतूका चरण (बाह्यफलक)
१२ = चर्णतालु सुरंगा
१३ = शिरोधीया धमनी सुरंगा का अंत
१४ = अंडाकार छिद्र
१५ = कोण छिद्र
१६ = संधि
१७ = शिरोधीया धमनी सुरंगा का आरंभ
१८ = शङ्खास्थि का गंडप्रवर्द्धन
१९ = संध्यर्बुद
२० = हनुसंधि स्थालक
२१ = विवर
२२ = कर्ण बहिर्द्वार
२३ = शिफा छिद्र
२४ = गोस्तन प्रवर्द्धन
२५ = द्विगुल्फिका खात
२६ = संधि
२७ = अनुकूट प्रवर्द्धन
२८ = आलम्बकूट
२९ = खात
३० = अधर तीर्णिका
३१ = मन्या तीर्णिका
३२ = ऊर्ध्व तीर्णिका
३३ = मन्यार्बुद
३४ = से ४७ तक = पेशियाँ जो पाश्चात्य अस्थि से लगी रहती हैं
४८ = अंतर
४९ = शिफा प्रवर्द्धन
५० = शंखास्थि के अश्मकूट के अधो पृष्ठ का वह भाग जिससे कंठ कर्ण नाली का कारटिलेजकृत भाग लगा रहता है
५१ = जतूका चरण (अंतः फलक)
५२ = नासा फलकास्थि
५३ = तालू छिद्र
५४ = नासा पश्चिम द्वार

चित्र ७९ खोपड़ी अधोभाग

पृष्ठ १२६ के सम्मुख

चित्र ७८ जतूकास्थि

पृष्ठ १२७ के सम्मुख

[७] तितलीस्वरूपास्थि या जतूकास्थि * (चित्र ७८)

इसकी शकल पर फैलाये हुए तितली के सदृश होती है। यह कपाल की तली में पश्चादस्थि के समस्थ भाग के आगे और ललाटास्थि के समस्थ भाग के पीछे और दोनों शङ्खास्थियों के बीच में फंसी रहती है (चित्र ८४) इस अस्थि के ऊपर के पृष्ठ को देखें तो बीच का भाग तितली के धड़ की भाँति मोटा दिखाई देगा; यह इस अस्थि का गात्र कहलाता है। गात्र से तितली के परों के समान दोनों ओर दो दो पंख (पक्ष) निकले रहते हैं; अगला पंख (लघु पक्ष) पतला और छोटा होता है; पिछला मोटा और चौड़ा (बृहत् पक्ष)। अस्थि के इन अंशों में कई छिद्र होते हैं (देखो चित्र ८४)।

गात्र के नीचे के पृष्ठ से दो प्रवर्द्धन निकले रहते हैं; ये अंश तितली (और जतूक) की टाँगों के सदृश हैं और कपाल की तली को बाहर से देखने से दिखाई देते हैं। इनको **जतूकाचरण** कहते हैं (चित्र ७८)

गात्र का पिछला पृष्ठ पश्चादस्थि से जुड़ा रहता है; अगला पृष्ठ बहुछिद्रास्थि से। पंख और नीचे के प्रवर्द्धन आस पास की अस्थियों से मिले रहते हैं। गात्र भीतर से खोखला होता है और उसके भीतर वायु भरी रहती है।

(८) झर्झरास्थि या बहुछिद्रास्थि (चित्र ८०, ८१)

सातों अस्थियों के आपस में मिलने के पश्चात भी कपाल

*जतूक = चमगीदड़ या चामचिड़िया। इस अस्थि की शकल पंख फैलाये चामचिड़िया से मिलती है।

की तली में कुछ कसर रह जाती है। ललाटास्थि के समस्थ भाग की घाई अभी तक नहीं भरी; यह आठवीं अस्थि से पूर्ण होती है। इस अस्थि के उस अंश में जो इस घाई में फँसा रहता है बहुत से छोटे छोटे छिद्र होते हैं; छिद्रों के कारण इस अस्थि का नाम बहुछिद्र पड़ा है। अस्थि का पिछला भाग जतूकास्थि से मिला रहता है।

चित्र ८० झर्झरास्थि
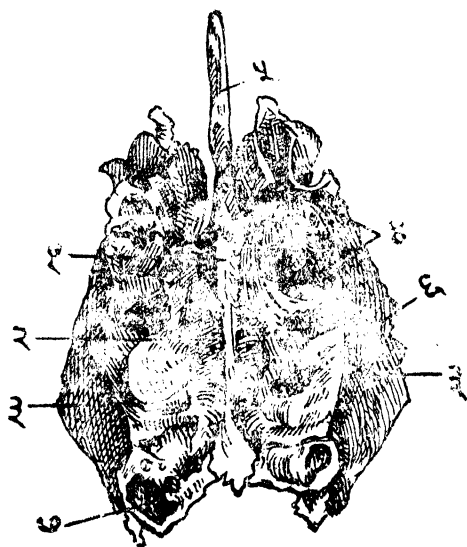
१—शिखरकंटक,

२—छलनी जैसा भाग जिसमें बहुत से छिद्र हैं (चालनीपटल),

३—अस्थि के पार्श्व; ४, ६, ७—इन कोठरियों में वायु रहती है। इसका वह भाग जो ललाटास्थि की घाई में फँसा रहता

चित्र ८१—ललाटास्थि जिससे झर्झरास्थि (बहुछिद्रास्थि) जुड़ी हुई है। अस्थि का अंतरीय पृष्ठ दिखलाया गया है।
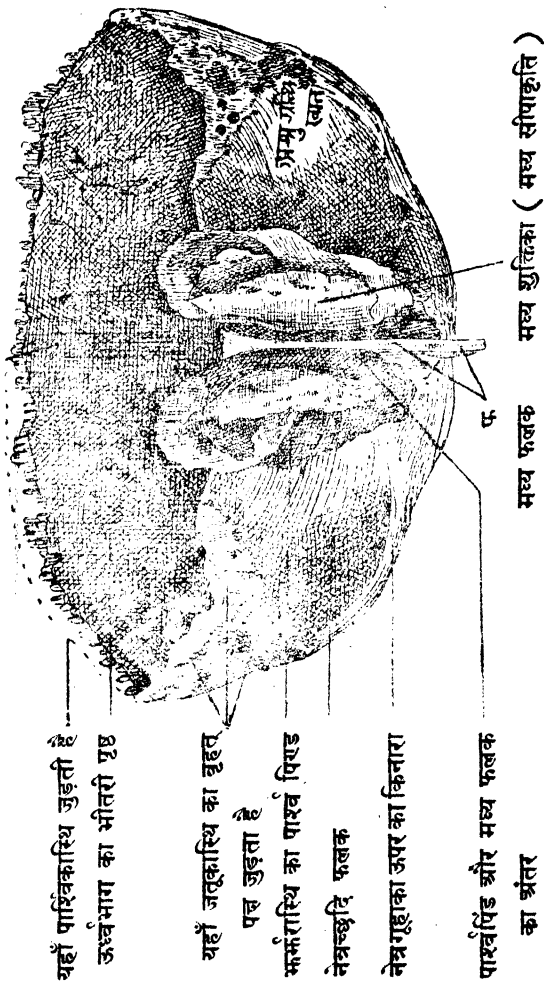
है पतरे के समान पतला होता है और उसमें बहुत से छिद्र होते हैं; इसी कारण वह **चालनीपटल** कहलाता है। कपाल के भीतर केवल इतना ही भाग रहता और दिखाई देता है। शेष भाग कपाल के बाहर उसकी तली में दिखाई देता है; यह नासिका की दीवारों के बनाने में सहायता देता है।

यह अस्थि बहुत खोखली और हलकी होती है; यदि जोर से दबाई जाये तो शीघ्र चूर चूर होती है।

अब कपाल का कोष्ठ सब ओर से पूर्ण हो गया। इस कोष्ठ की तली में बहुत से छिद्र होते हैं; सब से बड़ा छिद्र तली के पिछले भाग में है; इस छिद्र में से हो कर सुषुम्णा (जो बात संस्थान का एक अंग है) कपाल से निकल कर काशेरुकी नली में जाती है; और छिद्रों में से नाड़ियाँ बाहर निकलती हैं व रक्त की नलियाँ आती जाती हैं।

इनमें से कोई छिद्र ऐसा नहीं है जिसमें से होकर कफ या बलग़म खोपड़ी के भीतर से बाहर निकलता हो; यह एक मिथ्या और अत्यंत हानिकारक विचार है कि कफ या बलग़म मस्तिष्क (दिमाग़) में बनता है और नासिका और मुख से बाहर निकलता है।

चेहरे की अस्थियाँ

(१) **अधोहन्वस्थि** (चित्र ८२, ८३)—(नीचे के जाबड़ की अस्थि:) यह चेहरे की अस्थियों में से सब से बड़ी और मज़बूत अस्थि है और सबसे नीचे के भाग में रहती है; ठुड्डी (ठोढ़ी) इससे बनती है। यह अस्थि देसी जूते की नाल की भाँति मुड़ी हुई होती है। नाल की तरह उसके तीन भाग हैं; एक आधे घेरे या महराब की भाँति मुड़ा हुआ भाग जिससे ठुड्डी बनती

है ; यह समस्थ भाग या **हनुमण्डल** कहलाता है ; इस भाग के पिछले दोनों सिरे मुड़ कर ऊपर को चले गये हैं, ऊपर को खड़े हुए ये भाग अस्थि के ऊर्ध्व भाग या **हनुकूट** कहलाते हैं । जहाँ ऊर्ध्व भाग समस्थ भाग से मिलता है वहाँ एक कोण बनता है; जन्म के समय इस कोण का परिमाण १७५° *होता है अर्थात् ऊर्ध्व भाग ऊपर को सीधा खड़ा रहने के पलटे पीछे को बहुत झुका रहता है; ज्यों ज्यों बालक बढ़ता है इस कोण का परिमाण घटता जाता है, ४-५ वर्ष की आयु में १४०° हो जाता है; प्रौढ़ावस्था में इसका परिमाण ११०°-१२०° हो जाता है; वृद्धावस्था में यह फिर बढ़ता है और १४०° तक हो जाता है । इस कोण को कान के नीचे टटोल कर स्पर्श कर सकते हैं । किसी अधोहन्वस्थि को देख कर इस बात का कुछ अनुमान किया जा सकता है कि वह मनुष्य जिसकी वह अस्थि है किस अवस्था में मरा अर्थात् वह वृद्ध हो कर मरा या प्रौढ़ावस्था में या बचपन में । समस्थ भाग के दो पृष्ठ होते हैं एक बाहर का दूसरा भीतर का । बाहर के पृष्ठ से निम्न ओष्ठ को गति देने वाली मांस पेशियाँ लगी रहती हैं; भीतर के पृष्ठ से जिह्वा को गति देने वाली पेशियाँ लगी रहती हैं । इस भाग के दो किनारे भी होते हैं एक नीचे का जो टटोला जा सकता है और जिससे मध्यरेखा में ठुड्डी बनती है; दूसरा ऊपर का जिसमें १६ दाँतों के लिये गढ़े होते हैं । ‡

---

* कोण ऊर्ध्व भाग की पिछली धारा और समस्थ भाग की अधोधारा के बीच में मापा जाता है ।

‡ दाँत के लिये जो गढ़ा होता है उसको दंतोलूखल कहते हैं ।

चित्र ८४ की व्याख्या

खोपड़ी कनपटी के ऊपर से काटी गई है और भीतर के पृष्ठ का यह फोटो है।

२ = गुप्त छिद्र यहीं से ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या का आरम्भ होता है।
३ = शिखर कंटक
४ = चालनी पटल के छिद्र
५ = जतूका कंटक
६ = दृष्टि नाड़ी परिखा
७ = जतूका-ललाट संधि
८ = पत्तांतराला (ऊर्ध्व अक्षिगूहा विवर)
९ = लघु पत्त
१० = लघु पत्त कूट
११ = (काला चित्र के भीतर) लघुपत्त कूट
१२ = वृत्त रन्ध्र
१३ = जतूक-शंखास्थि संधि
१४ = मध्य मात्रिका नाड़ी परिखा
१५ = शंख पार्श्व संधि। १४ और १५ के बीच में जो लकीर है वह अंडाकार छिद्र से आती है
१६ = मात्रिका धमनी छिद्र
१७ = शंख-जतूक संधि यहां एक शिरा कुल्या रहती है
१८ = कर्णान्तरद्वार
१९ = अश्म कूट के अगले और पिछले पृष्ठों के बीच का किनारा। यहाँ अश्म शिरा कुल्या रहती है
२० (चित्र के भीतर) = छुदि कूट
२१ = (चित्र के भीतर) = उभार
२२ = (चित्र के भीतर) द्वादशी नाड़ी सुरंगा
२३ = यहां वृहत मस्तिष्क का ललाट ध्रुव रहता है
२४ = पत्तांतराला
२५ = छिद्र
२६ = आंधीया धमनी विवर
२७ = अश्म कूट और शंख चक्र संधि
२८ = यहां पंचमी नाड़ी गंड रहती है
२९ = गंभीर शिरोधिया शिरा विवर
३० = पश्चात अस्थि का अंतरीय अर्बुद
३१ = वृहत् मस्तिष्क खात
३२ = लघु मस्तिष्क खात
स = सरल शिराकुल्या परिखा * = संगम
अ = ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या परिखा

चित्र ८४ करोटि अधोभाग (भीतरी पृष्ठ)
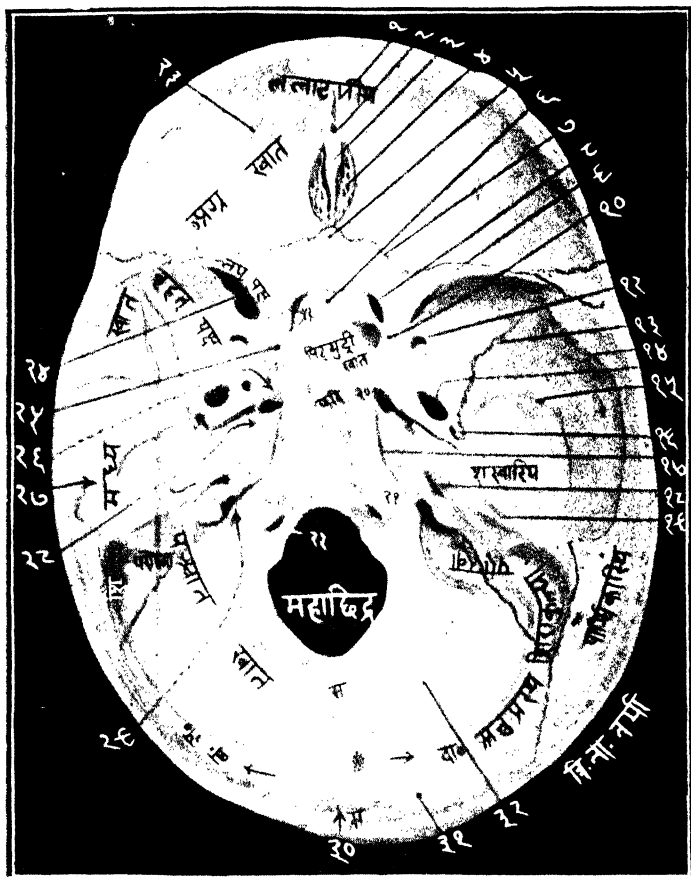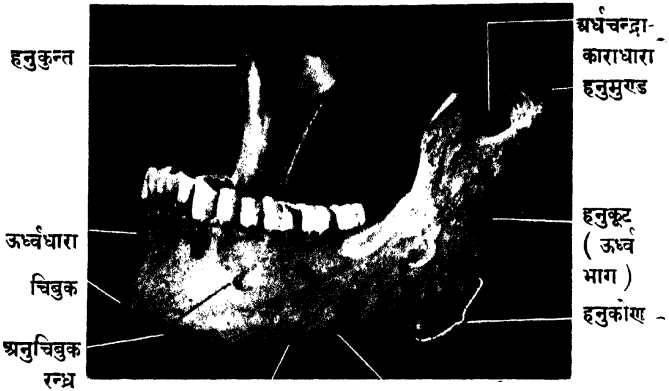
पृष्ठ १३२ के सम्मुख

चित्र ८२ अधो हन्वस्थि

चित्र ८३ अधो हन्वस्थि भीतरी पृष्ठ

ऊर्ध्व भाग नीचे से चौड़ा और चपटा होता है; इसके पिछले किनारे को कान की लौर † के नीचे स्पर्श कर सकते हैं। इसके बाहर के पृष्ठ पर चर्वणपेशी (वह पेशी जो भोजन चबाने के काम में आती है) लगी रहती है। ऊपर जा कर ऊर्ध्व भाग के दो अंश हो गये हैं और इन अंशों के बीच में कुछ अंतर रहता है। अगला अंश तिकोनिया है इसको **हनुकुन्त** कहते हैं; उससे कनपटी की एक बड़ी पेशी लगी रहती है। पिछले अंश का ऊपर का सिरा मोटा और गोल सा होता है यह भाग **हनुमुण्ड** कहलाता है; यह शङ्खास्थि के बाहरी छिद्र के नीचे और सामने रहनेवाले गढ़े में रहता है। अधोहन्वस्थि इसी स्थान पर गति करती है।

(२–३) **ऊर्ध्वहन्वस्थि**—(चित्र ७६ में ७ चित्र ७९)। ऊपर के जाबड़े में दो विरूप अस्थियाँ हैं एक दाहिनी दूसरी बाई; दोनों अस्थियाँ मध्यरेखा में एक दूसरे से मिली रहती हैं।

हर एक अस्थि के नीचे के किनारे में ८ दाँतों के लिये गढ़े होते हैं (चित्र ७२) दोनों अस्थियों में १६ दाँत जड़े रहते हैं। इन अस्थियों के मध्यरेखा में मिलने से मुँह की छत का अगला भाग और नासिका का फ़र्श बनता है। जिस अंश से नासिका का फ़र्श बनता है उससे बाहर की ओर (मध्यरेखा से परे) जो भाग है वह मोटा परन्तु भीतर से खोखला होता है; इस कोष्ठ में वायु भरी रहती है; इस खोखले भाग को इस अस्थि का गात्र कहते हैं। यह गात्र कुछ कुछ चौपहलू होता है। इसके चार पृष्ठों में से एक पृष्ठ से तो नासिका की बाहरी दीवार बनती है

† लौर का दूसरा नाम कर्णपाली है।

और इसमें एक छिद्र होता है जिसके द्वारा इसका वायु से भरा हुआ कोष्ठ नासिका से सम्बन्ध रखता है। शेष तीन पृष्ठों में से एक पृष्ठ सामने गाल में रहता है। (नासिका के छिद्र के पास); एक से आँख के गढ़े का फ़र्श बनता है; चौथा पृष्ठ पीछे को रहता है।

जहाँ आँख का नासिका की ओर का कोया होता है वहाँ इस अस्थि का एक अंश ऊपर जा कर ललाटास्थि से जुड़ा रहता है; इस अंश के अगले किनारे से नासास्थि जुड़ी रहती है और पिछला किनारा एक पतली अस्थि से जिसको अश्रवस्थि कहते हैं मिला रहता है। कनपटी की ओर के आँख के कोये के नीचे यह अस्थि गाल की अस्थि से मिली रहती है।

(४–५) **नासास्थि** (चित्र ६९ में ४; चित्र ७६ में १०)

नासिका के ऊपर के भाग में ललाटास्थि के नीचे मध्य रेखा के ठीक इधर उधर दो छोटी छोटी अस्थियाँ होती हैं एक दाहिनी दूसरी बाईं; ऐनक इन्हीं अस्थियों के ऊपर टिकती है; ये नासास्थियाँ कहलाती हैं। इन अस्थियों के मध्यरेखा में मिलने से जो पुल बनता है उसको **नासावंश** कहते हैं। प्रत्येक अस्थि कुछ चौकोर होती है; उसके चार किनारे और दो पृष्ठ होते हैं। ऊपर और नीचे के किनारे छोटे और अगले और पिछले किनारे लम्बे होते हैं। अगला किनारा मध्यरेखा में दूसरी ओर की अस्थि के किनारे से जुड़ा रहता है; पिछला किनारा ऊर्ध्व हन्वस्थि से और ऊपर का किनारा ललाटास्थि से मिला रहता है। नीचे के किनारे से नाक के अगले और नीचे के भाग में रहने वाला कारटिलेज लगा रहता है।

(६–७) अश्रुवस्थि (चित्र ८५, चित्र ७६ में ९)

आँख के गढ़े* की भीतरी (मध्यरेखा के निकट की) दीवार कई अस्थियों के अंशों से बनती है। इस दीवार के अगले भाग में जहाँ आँख का कोया होता है एक छोटी और पतली अस्थि लगी रहती है। यह अस्थि कुछ कुछ चौकोर होती है परन्तु बिलकुल सपाट नहीं होती; यह इस प्रकार मुड़ी रहती है कि उसमें एक नाली सी बन जाती है और यह नाली नीचे जा कर नासिका से संबन्ध रखती है; (चित्र ८५ में ५) इस नाली में सौत्रिक तंतु से निर्मित एक थैली रहती है; आँख से अश्रु इसी थैली में हो कर नासिका के भीतर पहुँचते हैं अश्रुओं से संबन्ध रखने के कारण इस अस्थि का नाम अश्रुवस्थि पड़ा है। यह अस्थि काग़ज़ जैसी पतली और बहुत कोमल होती है।

चित्र ८५ अश्रुवस्थि (बाहरी पृष्ठ) चित्र ८६ अधोशुक्तिका (बाहरी पृष्ठ)
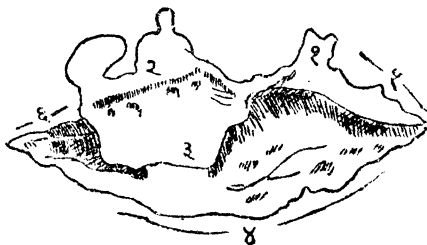
(८–९) अधोसीपाकृति या **अधोशुक्तिका** (चित्र ८६, ८७)

यदि आप किसी खोपड़ी के नासिका के छिद्रों को देखें

*अक्षिगुहा

चित्र ८७
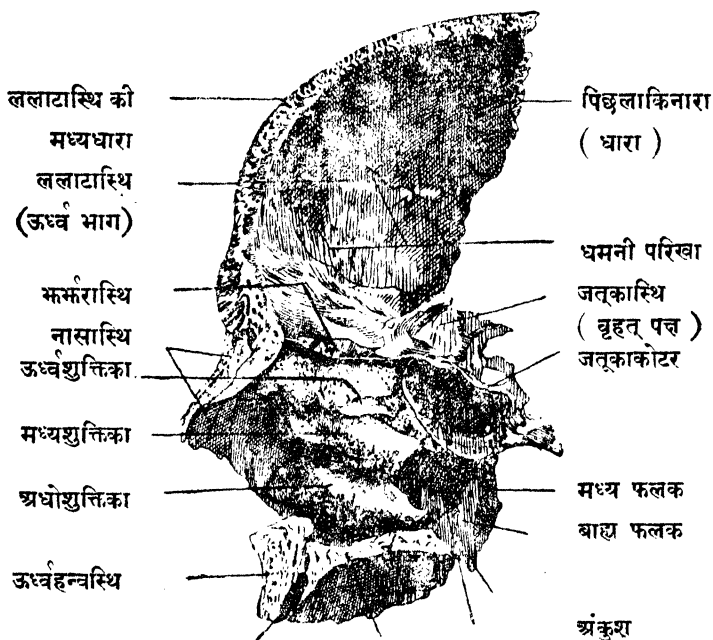
तो नासिका की बाहरी दीवार पर तीन मुड़ी हुई अस्थियाँ दिखाई देंगी। इनमें से सब से ऊपर वाली दीवार के पिछले भाग में है और सब से छोटी है, शेष दो अगले भाग में हैं। इन तीनों में से ऊपर की दो पृथक् पृथक् अस्थियाँ नहीं हैं; वे झर्झरास्थि के नीचे के अंश हैं। नीचे वाली तीनों में सब से बड़ी है और एक पृथक् अस्थि है अर्थात् यह और अस्थियों से

बिना किसी को तोड़े जुदा की जा सकती है। इस अस्थि की शकल सीपी जैसी होती है; एक पृष्ठ उभरा हुआ है और दूसरा गहरा; उभरा हुआ पृष्ठ नासिका के परदे की ओर रहता है। जीवित शरीर में इस अस्थि के ऊपर गहरे गुलाबी रंग की एक झिल्ली चढ़ी रहती है।

(१०) नासाफलकास्थि (चित्र ८८ चित्र ६९ में ६)

नासिका के बीच में एक परदा लगा है; इस परदे का पिछला भाग अस्थि से बना है और अगला कारटिलेज से। जो

चित्र ८८ नासाफलकास्थि
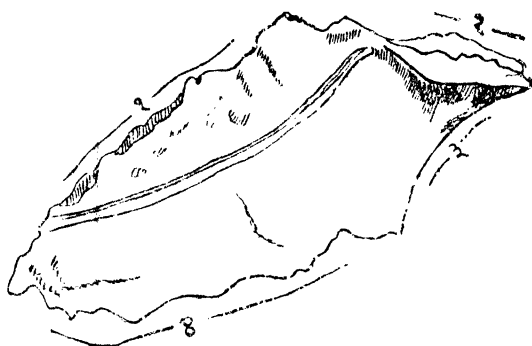
भाग अस्थि का है उसमें एक तो पृथक् अस्थि है। (इससे अधिक भाग बनता है) और कई अस्थियों के अंश होते हैं। पृथक् अस्थि नासाफलकास्थि कहलाती है। यह अस्थि सपाट और चौकोर होती है। इसके दो बड़े और दो छोटे किनारे और दो पृष्ठ होते हैं। एक किनारा (४) नासिका के फ़र्श से जुड़ा

चित्र ८९ एक्सरे चित्र ९० की सूची
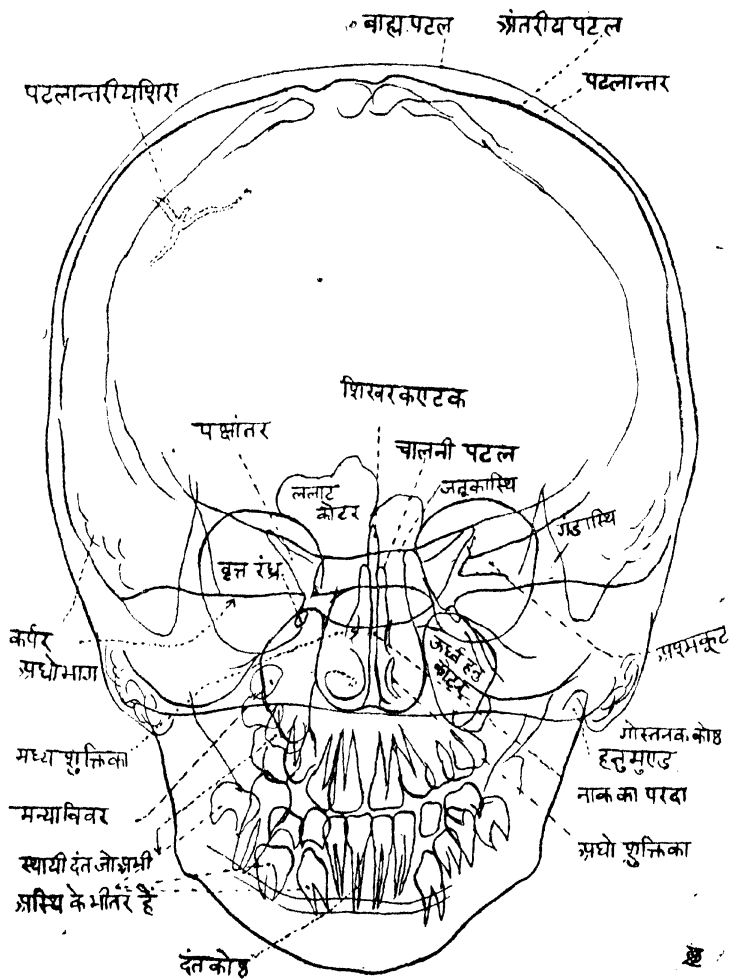
हमारे शरीर की रचना—भाग १, पाँचवी आवृत्ति—प्लेट १५ चित्र ६०

बालक के शिर का एक्स-रे चित्र

By courtesy, of Professor Schuller of Vienna

पृष्ठ १२८ के सम्मुख

हमारे शरीर की रचना—प्लेट १५ चित्र ६१ बालक के शिर का एक्स-रे चित्र
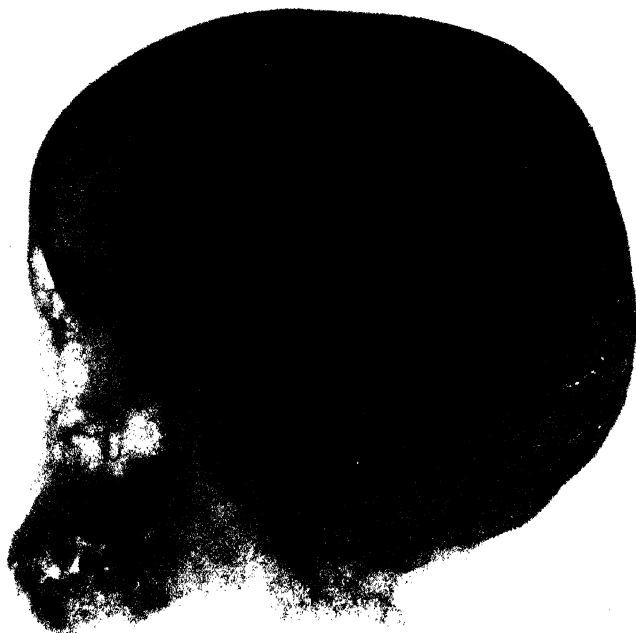
By courtesy of Professor Schuller of Vienna

पृष्ठ १३६ के सम्मुख

रहता है; एक (२) ऊपर कपाल की तली की जतूकास्थि नामक अस्थि के गात्र से; अगले किनारे का ऊपर का भाग झर्झरास्थि के एक अंश से और नीचे का भाग कारटिलेज से मिला रहता है। पिछला किनारा (३) किसी से नहीं मिला रहता।

चित्र ६२ एक्सरे चित्र ६३ की सूची
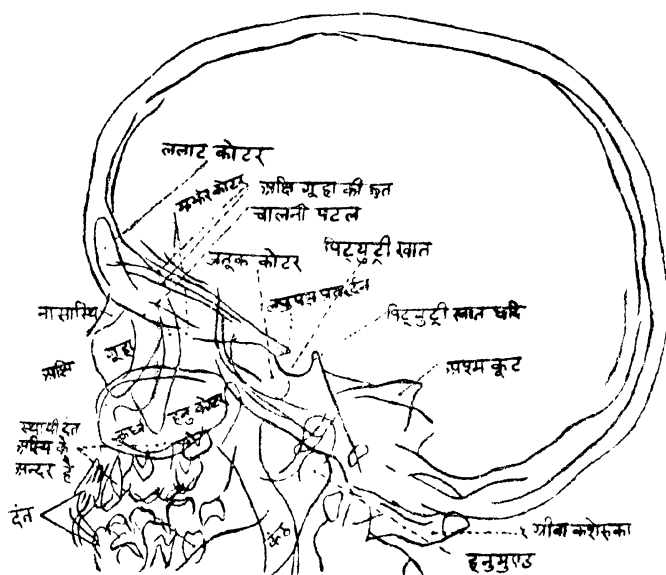
(११-१२) ताल्वस्थि (चित्र ७८ ; चित्र ८७)

कठिन (सख़्त) तालु का अगला (दाँतों के ठीक पीछे का) $\frac{3}{4}$ भाग तो ऊर्ध्व हन्वस्थियों के अंशों से बनता है, पिछला $\frac{1}{4}$ भाग उन अस्थियों के अंशों से बनता है जिनको ताल्वस्थियाँ

कहते हैं। प्रत्येक अस्थि के दो भाग होते हैं एक ऊर्ध्व (खड़ा) दूसरा समस्थ (पड़ा) ; जहाँ ये दोनों भाग मिलते हैं वहाँ सम-कोण (९०°) बनता है। अस्थि की शकल अंग्रेजी लिपि के एल (L) अक्षर से बहुत कुछ मिलती है ; समस्थ भाग ऊर्ध्व से कम लम्बा होता है ; इसका एक किनारा दूसरी ओर की अस्थि के किनारे से मध्यरेखा में जुड़ा रहता है ; अगला किनारा ऊर्ध्व हन्वस्थि से। पिछले किनारे से कोमल तालु लगा रहता है ; ऊपर के पृष्ठ से नासिका के फ़र्श का पिछला भाग, और नीचे के पृष्ठ से कठिन तालु का पिछला भाग बनता है।

ऊर्ध्व भाग ऊर्ध्व हन्वस्थि के गात्र से जुड़ा रहता है और नासिका की बाहरी दीवार के बनाने में सहायता देता है।

(१३-१४) कपोलास्थि या गण्डास्थि (चित्र ७६ में ५ चित्र ६९ में ५ ; चित्र ९१, ९४)

आँख और कनपटी के नीचे टटोलने से एक उभार मालूम होता है ; दुबले मनुष्यों में जिनके गाल पिचके रहते हैं यह उभरा हुआ स्थान दूर से भी दिखाई देता है। जिस अस्थि से यह उभार बनता है वह (गाल में रहने के कारण) कपोलास्थि या गण्डास्थि कहलाती है। यह अस्थि सामने ऊर्ध्वहन्वस्थि से जुड़ी रहती है ; पीछे इस अस्थि का एक अंश शंखास्थि के एक लम्बे प्रवर्द्धन से जुड़ा रहता है ; इन दोनों अंशों से एक महराब बन जाती है जो कान के सामने टटोल कर स्पर्श की जा सकती है ; इस महराब के नीचे से होकर कनपटी की मांसपेशी * निम्नहन्वस्थि के ऊर्ध्व भाग से जा कर लगती है। (चित्र ७९)।

* शंखच्छदा पेशी।

चित्र ९३ खोपड़ी

१ = मन्यार्बुद	११ = गोस्तनक
३ = अधर तीर्णिका	१२ = कर्ण बहिर्द्वार
५ = मन्या तीर्णिका	१३ = शिफा प्रवर्द्धन
६ = द्विगुम्फिका खात	१४ = हनु सन्धि स्थालक
७ = गोस्तनक	१५ = जतूका चरण (बाह्य फलक का बाह्य पृष्ठ)
८ = महा छिद्र	१६ = जतूका चरण (बाह्य फलक का अंतःपृष्ठ)
९ = द्वादशी नाड़ी सुरंगा	१८ = अंकुश
१० = आलम्बकूट	१९ = चरण हनु विवर
	२० = कठिन तालु

चित्र ६४ अक्षिगुहा
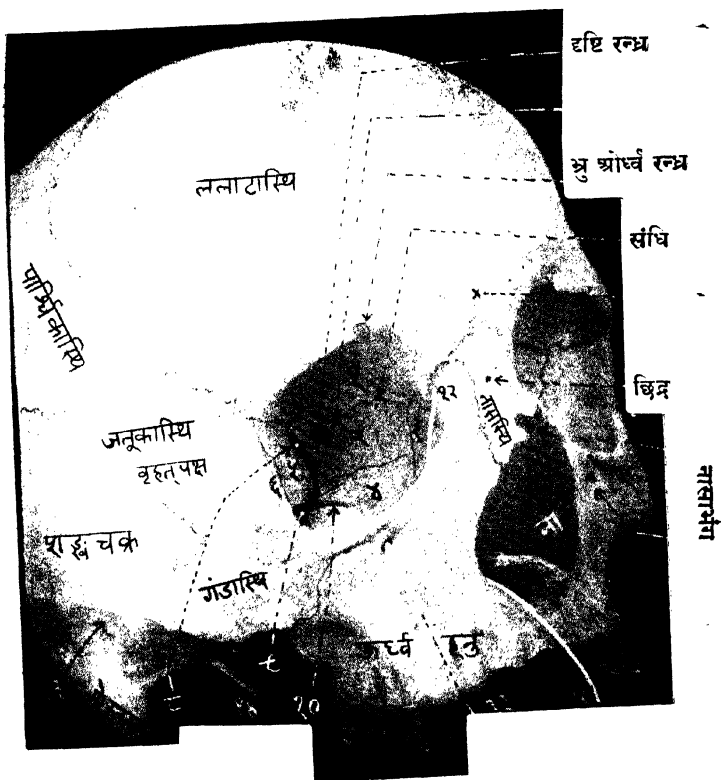
१ = नेत्रच्छदि फलक
२ = झर्झरास्थि पार्श्व
३ = अश्रवस्थि
४ = ऊर्ध्व हन्वस्थि
५ = जतूकास्थि वृहत् पक्ष
६ = गंडास्थि
७ = ताल्वस्थि
८ = ऊर्ध्व अक्षि विवर
९ = अधर अक्षि विवर
१० = अक्षि अधः परिखा
११ = अक्षि अधः छिद्र में सीक है

पृष्ठ १४१

चित्र ९५ श्रवणेन्द्रिय
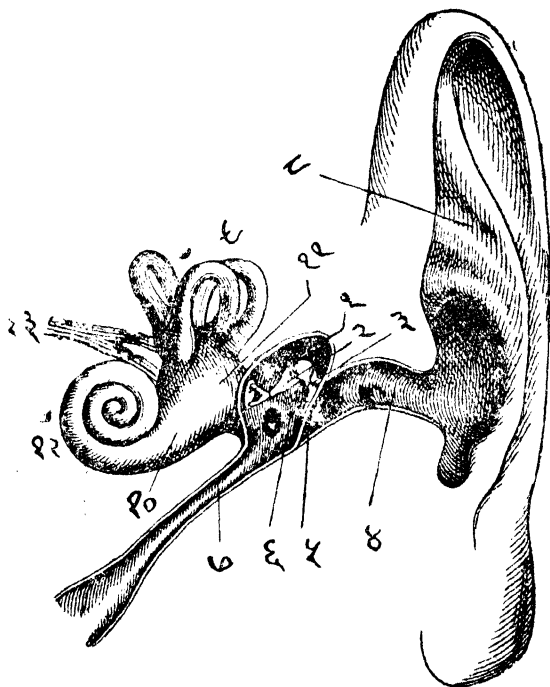
(From Haeckel's Evolution of man)

१ = रकाबास्थि, २ = शूर्मिकास्थि, ३ = मुद्गरास्थि, ४ = कर्णांजली, ५ = कर्णपटह, ६ = मध्यकर्ण, ७ = कंठकर्णी नाली, ८ = कर्णशष्कुली, ९ = अर्द्धचक्राकारा नालियाँ, १०, ११ = अंतःकरण का कोष्ठ, १२ = कोकला, १३ = नाड़ी ।

कपोलास्थि आँख के गढ़े (अक्षिगुहा) के फ़र्श और उसकी बाहरी दीवार के बनाने में सहायता देती है (चित्र ९४)

इस प्रकार कर्पर की २२ अस्थियों का वर्णन समाप्त हुआ। चित्र ७८, ७९ एक नौ दस वर्ष के बालक की खोपड़ी के एक्सरे चित्र हैं।

श्रवणेन्द्रिय संबंधी तीन छोटी अस्थियाँ

शंखास्थि के अश्म कूट नामक भाग के भीतर श्रवणेन्द्रिय का स्थान है। इसमें तीन छोटी छोटी अस्थियाँ रहती हैं। इन अस्थियों या अस्थिकाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन इस पुस्तक के दूसरे भाग में है; इन अस्थियों के नाम **मुद्गर, नेहाई** या **शूर्मिका** और **रकाब** हैं। (चित्र ९५)

कंठिकास्थि

यदि आप ग्रीवा में स्वरयंत्र के ऊपर के किनारे और ठोढ़ी के बीच में अंगुली से टटोलें तो एक कड़ी चीज़ मालूम होगी। यह कंठिकास्थि है। यह निम्नहन्वस्थि के समस्थ भाग की तरह मुड़ी हुई होती है। सामने बीच में से मोटी होती है; यह मोटा भाग इस अस्थि का गात्र कहलाता है। शेष भाग पतला होता है। यह पतले भाग इस अस्थि के वृहत शृङ्ग कहलाते हैं; गात्र से दो प्रवर्द्धन निकले रहते हैं ये लघु शृङ्ग हैं इस अस्थि से कई मांसपेशियाँ लगी रहती हैं।

चित्र ६६ कंठिकास्थि
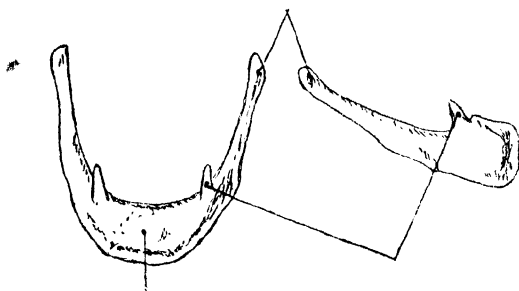
२०६ अस्थियों के अतिरिक्त जिनका वर्णन हो चुका है हथेली और पैर की कई कंडराओं और बन्धनों में कई बहुत नन्हीं नन्हीं अस्थियाँ पाई जाती हैं। अधिकतर ये पैर और हाथ के अंगूठों की कंडराओं में होती हैं। हमेशा और हर-एक मनुष्य में न पाये जाने के कारण इनकी गिनती नहीं की जाती। प्रायः ऐसी ऐसी कोई ८ अस्थियाँ होती हैं (देखो चित्र ३१)

———

अध्याय ५

कारटिलेज (उपास्थि; तरुणास्थि)

शरीर में कई स्थानों में श्वेत या पीले रङ्ग की एक चिकनी, चमकदार और लचकदार चीज़ पाई जाती है जिस को कारटिलेज कहते हैं। यह वस्तु दृढ़ तो होती है परन्तु इतनी नहीं जितनी कि अस्थि; कई स्थानों में इससे वही काम निकलता है जो कि अस्थि से, इससे कई अङ्गों के ढाँचे बने होते हैं जिनके ऊपर मांस और त्वचा लगी रहती है; कान का और नाक की फूँग का ढाँचा इसी वस्तु का है; नासिका के परदे के अगले भाग में कारटिलेज होता है; स्वरयन्त्र और टेंटुवा अधिकतर कारटिलेज के बहुत से छोटे छोटे टुकड़ों से बने हुए हैं। कारटिलेज कोष्ठों के बनाने में भी सहायता देता है जैसे पसलियों के अगले सिरों और वक्षोऽस्थि के बीच में रहने वाली कारटिलेज की पट्टियों या उपपर्शुकाओं से वक्ष की अगली दीवार पूर्ण होती है। लम्बी अस्थियों के सिरों पर जहाँ एक अस्थि दूसरी अस्थि से मिलती है (सन्धियों में) कारटिलेज की पतली तह चढ़ी रहती है (चित्र ९३)।

यदि हम ५, ६ सप्ताह के गर्भ को काट छाँट कर देखें तो उस के शरीर में कहीं अस्थि जैसी दृढ़ वस्तु न मिलेगी। अस्थि इस आयु के पश्चात् बननी आरम्भ होती है। इस समय बहुत सी अस्थियों के स्थान में श्वेत रङ्ग की चिकनी और चमकदार चीज़ मिलती है, यह कारटिलेज है। (चित्र९७) ज्यों ज्यों गर्भ बढ़ता

है, इस कारटिलेज की रचना में परिवर्तन होता है और उससे अस्थि बन जाती है। जिस कारटिलेज से शरीर के बढ़ने पर अस्थि बन जाती है उसको तरुणास्थि या उपास्थि भी कहते हैं; तरुणास्थि और उपास्थि शब्दों का प्रयोग उस कारटिलेज के लिये न करना चाहिये जिससे कभी अस्थि न बने। गर्भ में अस्थियों के स्थान में रहने वाले कारटिलेज को हम तरुणास्थि या उपास्थि कह सकते हैं परन्तु स्वरयन्त्र टेंटुवे, कान, नासिका के कारटिलेजों को 'तरुण' या 'उप' अस्थि कहना अशुद्ध होगा क्योंकि इनकी रचना कभी भी अस्थि जैसी नहीं होती।

अस्थि की स्थूल रचना

जीवितावस्था में अस्थि का रङ्ग रक्त के कारण हलका गुलाबी होता है। जब हम अस्थि को जल में उबाल कर और क्षारों और अम्लों के घोलों में भिगो कर साफ़ कर लेते हैं तो उसका रङ्ग धूसर श्वेत हो जाता है।

यदि हम किसी लम्बी अस्थि को मोटाई के रुख़ काटें तो वह भीतर से खोखली मिलेगी। लम्बी अस्थियों के भीतर एक नाली रहती है (देखो एक्सरे चित्र २९, ३०) जिसमें एक चिकनाईदार गुलाबी मायल पीले रङ्ग की चीज़ भरी रहती है। इस चीज़ का नाम मज्जा है। इस नली के चारों ओर रहने वाली अस्थि बहुत ठोस और मज़बूत नहीं होती; उसकी बनावट कुछ कुछ स्पञ्ज या जाफ़री टट्टी की बनावट के सदृश होती है; पतले पतले तारों से एक जाल सा बन जाता है जिसके सूक्ष्म सूक्ष्म छिद्रों में मज्जा भरी रहती है (देखो चित्र ९८) अस्थि का सब से बाहर का (पृष्ठ के नीचे का) भाग बहुत ठोस,

कठिन और मजबूत होता है इसको **अस्थि वल्क** कहते हैं। अस्थियों के ऊपर सौत्रिक तन्तु से निर्मित एक झिल्ली चढ़ी रहती है; इसको **अस्थ्यावरक** कहते हैं।

लम्बी अस्थियों के सिरे गात्रों की तरह खोखले नहीं होते। उनकी भीतरी बनावट स्पञ्ज या जाफ़री टट्टी जैसी होती है जिसके छिद्रों में मज्जा भरी रहती है (चित्र ९८)।

छोटी छोटी अस्थियाँ (जैसे पहुँचे और टखने की) भी खोखली नहीं होतीं; उनकी बनावट लम्बी अस्थियों के सिरों जैसी होती है। इन अस्थियों में भी मज्जा रहती है।

खोपड़ी की चपटी अस्थियों की बनावट बादाम के छिलके की बनावट जैसी होती है। अस्थि के अन्तरीय और बाह्य दो पटल होते हैं। बीच में पतला सा अन्तर होता है जिस में अस्थि की जाली सी होती है (देखो एक्सरे चित्र ९०, ९३)

मज्जा

मज्जा दो प्रकार की होती है (१) लाल, (२) पीली। लम्बी अस्थियों के खोखले गात्रों में पीली मज्जा रहती है। लम्बी अस्थियों के सिरों, कलाई और टखने की छोटी छोटी अस्थियों, कशेरुका के गात्रों वक्षोऽस्थि और पसलियों में लाल मज्जा रहती है।

पीली मज्जा में प्रति १०० भागों पीछे ९६ भाग वसा (चर्बी) के होते हैं शेष ४ भाग और चीज़ों के होते हैं। लाल मज्जा में १०० में से ७५ भाग जल के होते हैं शेष २५ भाग और चीज़ों के (जैसे सेलें, सौत्रिक तन्तु)। लाल मज्जा में वसा बहुत कम होती है; उसमें सौत्रिक तन्तु, रक्त की नलियाँ और कई प्रकार

चित्र ६७

चित्र ६८ ऊर्वस्थि के नीचे के सिरे की भीतरी बनावट

पृष्ठ १४६ के सम्मुख

चित्र ९९
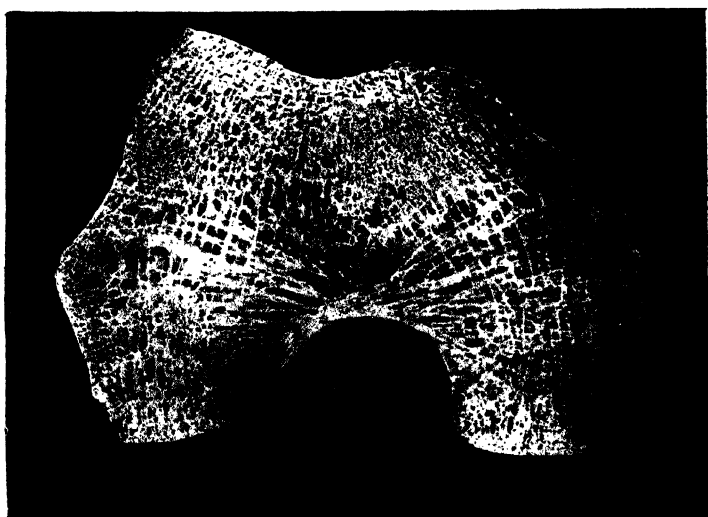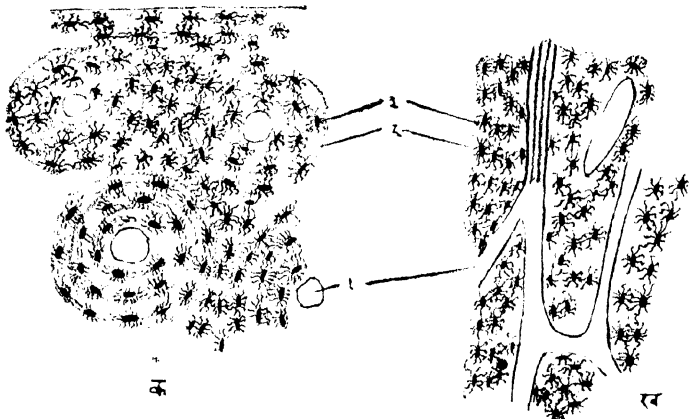
१ = नाली जिसमें रक्त और लसीका की नलियाँ रहती हैं

२ = घेरे ३ = (अस्थि की) मकड़ीवत् सेलों के घर

चित्र १०० सूत्रविहीन कारटिलेज

चित्र १०१ सूत्रमय कारटिलेज
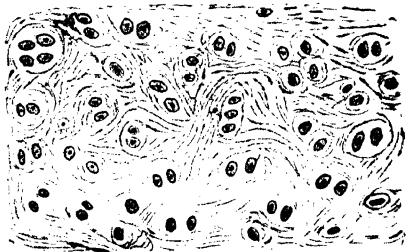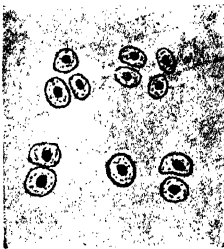
पृष्ठ १४७ के सम्मुख

की सेलें पाई जाती हैं; कुछ सेलों का रङ्ग गुलाबी सा होता है, रक्त के लाल कण इन्हीं सेलों से बनते हैं; कुछ सेलें बहुत बड़ी बड़ी होती हैं और इनमें एक से अधिक मींगियाँ होती हैं (चित्र ६ में १८) ; ये बहुमींगी सेलें पीली मज्जा में भी पाई जाती हैं। लाल मज्जा में और कई विशेष प्रकार की सेलें भी होती हैं।

अस्थि का रासायनिक सङ्गठन (चित्र ९७)

अस्थि दो प्रकार के पदार्थों से बनी है :—

(१) सजीव पदार्थ जैसे सौत्रिक तन्तु, सेलें, वसा

(२) निर्जीव या खनिज पदार्थ जैसे चूने के संयोजित या मुरक्कब (लवण)

यदि हम किसी अस्थि को जलमिश्रित हाईड्रोक्लोरिक अम्ल* (नमक का तेजाब) में या गन्धक या शोरे के तेजाब में कुछ देर भिगो दें तो इस अम्ल में अस्थि के खनिज पदार्थ घुल जायँगे, सजीव पदार्थ ज्यों के त्यों बचे रहेंगे। अस्थि के आकार में कोई भेद न आयेगा; जितनी लम्बी और चौड़ी वह भिगोने से पहले थी उतनी ही अब भी रहेगी। परन्तु उसमें एक बड़ा परिवर्तन हो जाता है; पहले अस्थि दृढ़ थी अब वह मुलायम हो गई है; भिगोने से पहले यदि आप उसको मोड़ने की कोशिश करते तो वह न मुड़ती या अधिक जोर लगाने से टूट जाती; अब यह कोमल हो गई है, आप उसको दबा सकते हैं और मोड़ सकते हैं; यदि अस्थि लम्बी है तो उसमें गाँठ लगा सकते हैं। यह खनिज पदार्थ रहित अस्थि सौत्रिक तन्तु और सेलों से निर्मित है; जलाने से वह जल जायगी (देखो चित्र ९७)

---

* अभिद्रवहरिक।

यदि हम अस्थि को अम्ल में भिगोने के बजाय भट्टी में जलायें तो जलते जलते पहले तो वह काली सी पड़ जायगी; कुछ देर पश्चात् उसका रङ्ग श्वेत हो जायगा। आकार ज्यों का त्यों रहेगा। परिवर्तन यह होता है कि अब वह भुरभुरी हो गई है; यदि आप उसको जोर से दबायें तो टूट जायगी और उसका चूरा हो जायगा। भीतर से वह जाफरी टट्टी और पकी हुई सूखी तोरई के भीतर की जाली के सदृश दिखाई देगी। इस जाली के तार खनिज पदार्थ से बने हैं; जलने से पहले इन तारों के बीच में सजीव पदार्थ (सेलें, सौत्रिक तंतु, वसा इत्यादि) थे, जलाने से ये पदार्थ जल गये और गैसों के रूप में उड़ कर वायु में मिल गये। (चित्र ९८)

सजीव और खनिज पदार्थ कितने कितने होते हैं।

(१) सजीव पदार्थ = ३३.३०%
(२) खनिज पदार्थ

चूने के लवण	कैलशियम फोस्फेट	५१.०४ %	
	,, कार्बोनेट	११.३० %	
	,, फ्लोराइड	२.०० %	= ६६.७०%
	मगनेशियम फोस्फेट	१.१६ %	
साधारण लवण या सोडियम क्लोराइड		१.२० %	
		६६.७० %	

अस्थि = १०० भाग

सजीव और खनिज पदार्थ आपस में इस तरह से मिले रहते हैं कि अस्थि को देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि कौन

चीज़ कहाँ है। खनिज पदार्थों से अस्थि में दृढ़ता आती है सजीव पदार्थों के कारण उसमें लचक होती है।

अस्थि की सूक्ष्म रचना (चित्र ९९)

यदि अस्थि अम्ल में भिगो कर मुलायम कर ली जाय और फिर उसके यंत्रों द्वारा लम्बाई या चौड़ाई के रुख सूक्ष्म सूक्ष्म पन्ने काटे जायँ तो इन पन्नों को अणुवीक्षण द्वारा यथाविधि देखने से अस्थि के एक छोटे भाग की रचना ऐसी दिखाई देगी जैसी कि चित्र १०० में दर्शाई गई है। 'क' पन्ना मोटाई के रुख और 'ख' लम्बाई के रुख काटा गया है। दोनों पन्ने अस्थि के बाहरी कठिन और ठोस भाग (वल्क) से काटे गए हैं, मज्जा की नाली चित्र में नहीं दिखाई गई। 'क' में चार गोल छिद्र (१) हैं जिनके चारों ओर कई कई घेरे हैं (२)। घेरे सौत्रिक तंतु से निर्मित हैं; बीच के गोल छिद्र वास्तव में लम्बी लम्बी नालियों के कटे हुए मुख हैं जो अस्थि में लम्बाई के रुख रहती हैं, इन नालियों में रक्त और लसीकावाहिनियाँ रहती हैं। सौत्रिक तंतु से निर्मित घेरों के बीच में (कोई दो घेरे लीजिये) बहुत से काले-काले स्थान (३) दिखाई देते हैं, इन स्थानों में अस्थि की विशेष सेलें रहती हैं, प्रत्येक सेल में बहुत से सूक्ष्म सूक्ष्म तार होते हैं जिनके कारण उसकी शकल छोटी मकड़ी जैसी हो जाती है। सेलों के इन घरों से बहुत सी सूक्ष्म सूक्ष्म नालियाँ निकली रहती हैं जो आस पास की नालियों से मिली रहती हैं। बीच की नाली में रक्त का कुछ तरल भाग रक्तवाहिनी नलियों की दीवारों में से चू जाता है, यह तरल सूक्ष्म नालियों में बह कर सेलों और सौत्रिक तंतु तक पहुँचता है और उनका पोषण

करता है। अम्ल में भिगोने के पूर्व सूत्रों और सेलों के बीच में खनिज पदार्थ थे।

यदि अस्थि की रचना समझ में न आई हो तो यों समझिये :—

एक बेलनाकार खोखली शलाका पर आप बहुत से काग़ज़ एक दूसरे के ऊपर चिपका दीजिये। मान लीजिये आपके पास ऐसी ऐसी बहुत सी शलाकाएँ हैं, इन शलाकाओं को पास पास एक दूसरे से मिला कर खड़ी कर दीजिये और इन सबके ऊपर फिर काग़ज़ चिपका दीजिये। खोखली शलाका उस नाली के सदृश है जिसमें रक्त की नलियाँ रहती हैं, काग़ज़ के घेरे सौत्रिक तंतु के घेरों के सदृश हैं, काग़ज़ के दो घेरों के बीच में जो स्थान है जिसमें गोंद लगा है वह सौत्रिक तंतु के घेरों के बीच के अंतर के सदृश है जिसमें सेलों के रहने के लिये छोटे छोटे घर बने हैं।

चित्र ९९ 'ख' में अस्थि लम्बाई के रुख काटी गई है। नालियाँ लम्बाई के रुख कटी हुई दिखाई देती हैं; एक नाली में दो रक्तवाहिनियाँ हैं।

कारटिलेज* की सूक्ष्म रचना (चित्र १००, १०१)

कारटिलेज की रचना उसके पतले-पतले पन्नों को अणुवीक्षण से देखने से मालूम होती है। कारटिलेज दो प्रकार का होता है:—

(१) वह जिसमें अणुवीक्षण से देखने से सेलों के अति-

---

* अंगरेजी भाषा का शब्द है; उर्दू भाषा में इसको कुरी या कुरकुरी हड्डी कहते हैं।

रिक्त बारीक बारीक सूत्र दिखाई देते हैं—**सूत्रमय कारटिलेज** (चित्र १०१)

(२) वह जिसमें सूत्र नहीं होते—**सूत्रविहीन कारटिलेज** (चित्र १००) सूत्रमय कारटिलेज दो प्रकार का होता है। एक में पीले सूत्र होते हैं दूसरे में श्वेत। पीले सूत्रों वाले कारटिलेज का रंग पीला सा होता है। पीला कारटिलेज श्वेत की अपेक्षा अधिक लचकदार होता है।

कारटिलेज में विशेष प्रकार की सेलें पाई जाती हैं। उबालने से उससे एक लेसदार वस्तु बन जाती है जिसको जेलाटीन कहते हैं; जेलाटीन एक भाँति की प्रोटीन होती है।

किस प्रकार का कारटिलेज कहां पाया जाता है

(१) सूत्रविहीन कारटिलेज—

१. लम्बी अस्थियों के सिरों पर; अस्थियों के उन गढ़ों में जहाँ दूसरी अस्थियाँ आ कर मिलती हैं और संधियाँ बनाती हैं जैसे वंक्षणोलूखल में जहाँ ऊर्वस्थि का शिर मिलता है।

२. पसलियों के अगले सिरों और वक्षोऽस्थि के बीच में (=उपपर्शुका)

३. नासिका, स्वरयंत्र, टेंटुवा, कर्णाञ्जली में

४. गर्भ में अस्थियों का प्रतिनिधि सूत्रविहीन कारटिलेज होता है।

(२) श्वेत सूत्रमय कारटिलेज—

कशेरुकाओं के गात्रों के बीच में जो चक्रियाँ रहती हैं वे इसी प्रकार के कारटिलेज से बनती हैं।

(३) पीला सूत्रमय कारटिलेज—

१. कान में (कर्णशष्कुली में)

२. स्वरयंत्र के ढकने (स्वरयंत्रच्छद) में

३. मध्य कर्ण और कंठ के बीच में रहने वाली (कंठकर्णी नाली) नाली में

कारटिलेज से अस्थि का बनना

पाँच छः सप्ताह के गर्भ के शरीर में कहीं भी अस्थि नहीं रहती। बहुत सी अस्थियों की जगह पहले कारटिलेज बनता है फिर धीरे धीरे इस कारटिलेज की रचना बदलती है और उससे अस्थि बन जाती है। छठे, सातवें, आठवें सप्ताहों में बहुत स्थानों में अस्थि बनना आरम्भ हो जाता है (चित्र १०२) कारटिलेज से अस्थि बनने में एक बड़ा परिवर्तन यह होता है कि चूने के संयोजित (मुरक्कब) जैसे कैलशियम फोस्फेट, कार्बोनेट तथा क्लोराइड उसमें आ कर इकट्ठे होने लगते हैं; इनके आने से उसमें दृढ़ता आ जाती है। सौत्रिक तंतु भी बनता है और कारटिलेज की सेलों की जगह अस्थि की सेलें बन जाती हैं।

वह स्थान जहाँ कारटिलेज के भीतर सब से पहले अस्थि बनती है, **अस्थिविकाश केन्द्र** कहलाता है। इस केन्द्र से आरम्भ हो कर सब दिशाओं में अस्थि बनने लगती है। लम्बी अस्थियों में सब से पहले गात्रों में अस्थि बनना आरम्भ होता है। किसी अस्थि में एक ही अस्थिविकाश केन्द्र होता है; किसी में एक से अधिक। लम्बी अस्थियों में एक केन्द्र तो गात्र के लिये होता है और एक एक दोनों सिरों के लिये। जब सिरों पर उभार

चित्र १०२। २ मास का भ्रूण लम्बाई ५४ मिलीमीटर
(२ इंच); वास्तविक परिमाण से २½ गुना बड़ा

From Mall, Amer. Journ. of Anat. Volv, 1906 P. 441

(From Bertwistle's Descriptive Atlas of Radiographs

या प्रवर्द्धन होते हैं तो बहुधा एक एक केन्द्र हर एक उभार के लिये भी होता है।

जब बालक जन्म लेता है तो शरीर की सब अस्थियाँ पूरे तौर से नहीं बन पातीं; (चित्र १०३) कई स्थानों में तो अस्थियों के प्रतिनिधि कारटिलेज ही रहते हैं, जैसे कलाई में आठों अस्थियों की जगह आठ कारटिलेज रहते हैं। यही नहीं प्रत्युत लम्बी लम्बी अस्थियों के सिरों में (ऊर्वस्थि के नीचे के सिरे को छोड़ कर) अभी अस्थि बनना आरंभ भी नहीं हुआ है, ये सिरे अभी कारटिलेज के हैं। इन सिरों में अस्थिविकाश केन्द्र जन्म के पश्चात् उदय होते हैं; धीरे धीरे इन सिरों में कारटिलेज की जगह अस्थि बन जाती है परंतु बहुत काल तक सिरों और गात्रों की अस्थि के बीच में कारटिलेज के पतरे रहते हैं; जब तक इन पतरों में अस्थि न बन जाय उस समय तक सिरों और गात्र का संयोग पक्का नहीं होता; चोट लगने से सिरा गात्र से जुदा हो सकता है (चित्र १०४, १०६)

अस्थिविकाश केन्द्र नियत समय पर उदय हुआ करते हैं; अस्थियों के सिरों का गात्रों से संयोग भी एक नियत समय पर हुआ करता है।

जो कुछ हमने अस्थिविकाश के विषय में लिखा है उसको स्पष्ट करने के लिये हम एक उदाहरण देते हैं :—

ऊर्वस्थि (चित्र १०४)। सात सप्ताह के गर्भ की जाँघ में ऊर्वस्थि की जगह कारटिलेज की एक शलाका रहती है जिसका आकार ऊर्वस्थि के आकार से बहुत कुछ मिलता है; इसी सप्ताह में कारटिलेज के गात्र में एक अस्थिविकाश केन्द्र उदय होता है; इस केन्द्र से लम्बाई और मोटाई के रुख अस्थि

बनने लगती है। गर्भ के नौवें मास तक कुल गात्र में अस्थि बन जाती है। ऊपर और नीचे के सिरे अभी तक बिलकुल कारटिलेज ही के हैं।

चित्र १०४ ऊर्वस्थि
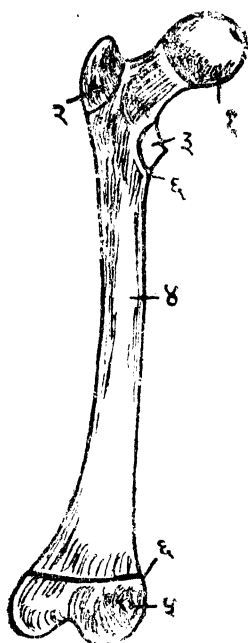
नौवें मास के अंत में नीचे के सिरे में दूसरा केन्द्र उदय होता है। जन्म से पहले इस सिरे में इस केन्द्र के आस पास, थोड़ी सी अस्थि बन जाती है।

यदि हम नवजात बालक की ऊर्वस्थि को देखें तो उसकी

ऐसी दशा दिखाई देगी:—गात्र अस्थि का है; नीचे का सिरा बाहर से कारटिलेज का है परन्तु उसका भीतरी भाग अस्थि का है; ऊपर का सिरा जिसमें दो उभार, शिर और ग्रीवा हैं अभी बिलकुल कारटिलेज का है। यदि यह अस्थि उबाली जाय तो ऊपर के सिरे से जेलाटीन बन जायगा। और नीचे का सिरा अलग हो जायगा और उसके भीतरी भाग को छोड़ कर बाहर के भाग से भी जेलाटीन बन जायगा।

जन्म के पश्चात् पहले वर्ष के अंत में अस्थि के शिर में तीसरा केन्द्र उदय होता है; धीरे-धीरे इस केन्द्र से शिर और ग्रीवा में अस्थि बन जाती है।

चौथे वर्ष में ग्रीवा के नीचे वाले बड़े उभार में चौथा केन्द्र उदय होता है।

तेरहवें या चौदहवें वर्ष के लगभग छोटे उभार में पाँचवाँ केन्द्र उदय होता है।

१६ से १८ वर्ष तक की आयु में अस्थि की यह दशा होती है; अस्थि के इस समय पाँच टुकड़े हैं:—१. गात्र, २. महा शिखरक, ३. लघु शिखरक, ४. शिर, ५. नीचे का सिरा। चारों छोटे भागों और गात्र के बीच में कारटिलेज के पतरे रहते हैं। यदि इस समय यह अस्थि उबाली जाय तो पाँचों टुकड़े अलग अलग हो जायँगे, (चित्र ११५ में गात्र और नीचे के सिरे के बीच का कारटिलेज साफ दिखाई देता है; ऊ और व के बीच में)।

१८ वें साल के लगभग शिर और ऊपर के दोनों उभारों और गात्रों के बीच में जो पतरे हैं उनसे अस्थि बन जाती है। अब ऊपर का कुल सिरा गात्र से पक्के तौर से जुड़ जाता है।

२०वें वर्ष के लगभग नीचे के सिरे और गात्र के बीच का

कारटिलेज भी अस्थि बन जाता है; नीचे का सिरा गात्र से पक्की तरह जुड़ जाता है। अब पाँचों पृथक् पृथक् अंशों के संयोग से एक अस्थि बन जाती है।

यह देखकर कि अस्थियों के सिरे गात्रों से जुड़ गये या नहीं और अस्थियों में किसी विशेष विकाश केन्द्र का उदय हुआ या नहीं मनुष्यों की आयु निश्चय करने में बहुत सहायता मिलती है। जीवित अवस्था में शरीर को बिना चीरे फाड़े या किसी और प्रकार का दुःख दिये **एक्सरे** यंत्र की सहायता से अस्थि-विकाश केन्द्रों का होना या न होना और सिरों का जुड़ जाना या अलग रहना बहुत आसानी से जाना जा सकता है (देखो एक्स-रे चित्र ४८, १०५)। उदाहरण :—मान लो कि किसी मनुष्य की जाँघ को "एक्स-रे" यंत्र से देखने से ज्ञात हुआ

चित्र १०४—यह फोटो एक ११, १२ वर्ष की आयु की लड़की के हाथ का है जो एक्स-रे यंत्र द्वारा खींचा गया है। कलाई में आठों अस्थियाँ मौजूद हैं; मटराकार अस्थि अभी छोटी है; यह अभी बननी आरम्भ हुई है। प्रकोष्ठास्थियों के नीचे के सिरे अभी गात्रों से नहीं जुड़े; इन सिरों और गात्रों के बीच में जो श्वेत भाग है वह कारटिलेज है (एक्स-रे से कारटिलेज की जगह श्वेत स्थान ही मालूम होता है) प्रत्येक करभास्थि का गात्र शिर से जुदा है। प्रत्येक अंगुल्यस्थि के भी दो भाग हैं। इस आयु में कलाई और हाथ में ४६ अस्थियों के टुकड़े हैं। यदि इस आयु के मृत शरीर के हाथ की हड्डियां उबाली जावें तो कारटिलेज के पिघल जाने के कारण ये सब टुकड़े अलग-अलग हो जावेंगे। यह लड़की बीच की अंगुली में अँगूठी पहने हुए थी।

चित्र १०५—१२ वर्ष की लड़की के हाथ का एक्स-रे चित्र
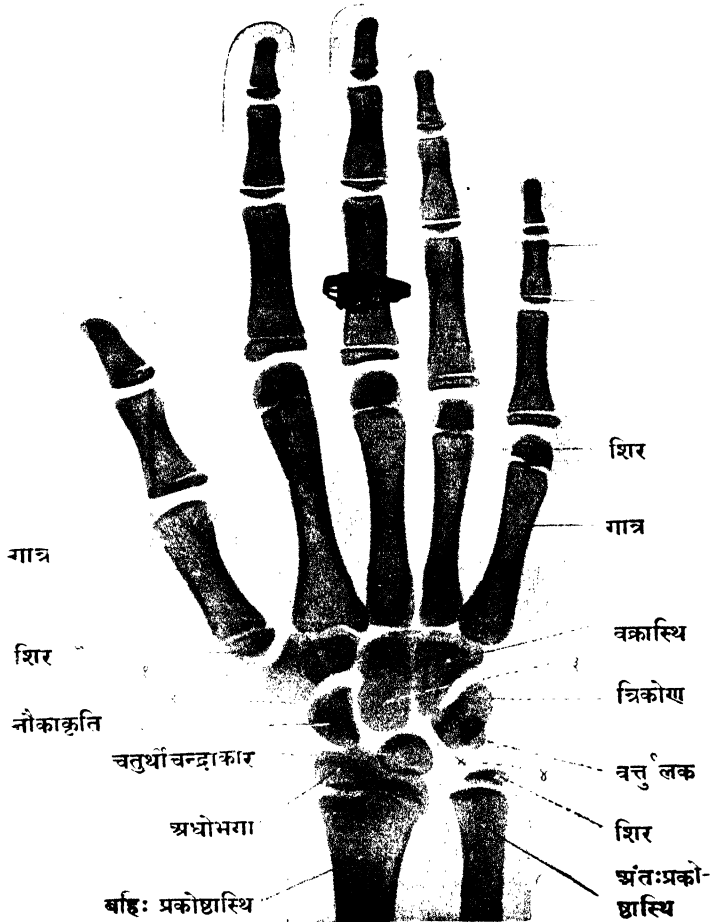
१ = वृहत्बहुकोण २ = क्षुद्रबहुकोण ३ = शिरोधारी
४ = त्रिकोण सूत्रमय कारटिलेज

पृष्ठ १२६ के सम्मुख

चित्र १०६—नौ दस वर्ष के बालक का हाथ
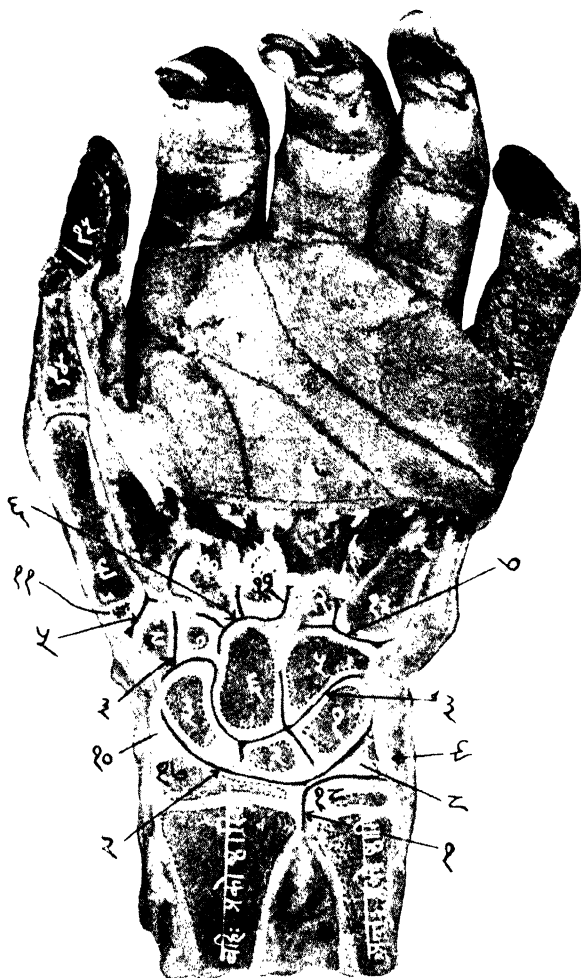
पृष्ठ १५७ के सम्मुख

चित्र १०६ की व्याख्या

नौ दस वर्ष के बालक का हाथ लम्बाई के रुख कुछ दूर तक दो भागों में काटा गया है;केवल अँगूठा कटा है; अँगुलियाँ रह गई हैं। ध्यान से देखिये :—

१. अन्तः वा बहिः प्रकोष्ठास्थियों के नीचे के सिरे गात्र से अभी नहीं जुड़े हैं (१७, १८)।

२. पहली करभास्थि का ऊपर का सिरा अभी शेष अस्थि से नहीं जुड़ा है (चित्र में श्वेत ६, ११)

३. अंगुष्ठ की अंगुल्यस्थियों के सिरे भी अभी अलग हैं; यही दशा शेष अंगुलियों की अंगुल्यस्थियों की है ।

४. पहुँचे की अस्थियाँ किस प्रकार एक दूसरे से बंधनों द्वारा बँधी रहती हैं यह इस चित्र में स्पष्ट है । बंधन मोटी मोटी श्वेत रेखाओं द्वारा दर्शाए गये हैं जैसे चित्र के भीतर ५, ६ के बीच में ६, ७ के बीच में; ११,-१२ के बीच में; १२, १३ के बीच में इत्यादि। देखो चित्र के बाहर:—

१ = अंतः वा बहिः प्रकोष्ठास्थियों की नीचे की संधि । २ = दोनों प्रकोष्ठास्थियों और पहुँचे की अस्थियों की पहली पंक्ति की अस्थियों के बीच की संधि ।३ = नौकाकृति, चन्द्राकार, त्रिकोण; और बृहत् बहुकोण, क्षुद्र बहुकोण, शिरोधारी, वक्रास्थि के बीच की संधि (अर्थात् मटराकार को छोड़कर पहली और दूसरी पंक्तियों की अस्थियों की संधि) ४ = यह संधि-चित्र में नहीं देख पड़ती; वर्तुलक (मटराकार) और त्रिकोण के बीच में रहती है । ५ = बृहत् बहुकोण और पहली करभास्थि की संधि । ६ = क्षुद्र बहुकोण और शिरोधारी;और दूसरी और तीसरी करभास्थियों की संधि। ७ = वक्रास्थि और चौथी वा पाँचवीं करभास्थियों की संधि । ८ = त्रिकोण कारटिलेज । ९ = अंतः मणिकबंध । १० = बाह्य मणिकबंध ।

देखिये चित्र के भीतर :—

३ = नौकाकृति; २ = चन्द्राकार; १ = त्रिकोण

८ = बृहत् बहुकोण; ७ = क्षुद्र बहुकोण; ६ = शिरोधारी;

७ = वक्रास्थि; ९ = पहली करभास्थि का गात्र;

१० = ११,१२, १३, = दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं करभास्थियाँ; १४, १५ = अंगुष्ठ की अंगुल्यस्थियाँ; १६ = अंगुष्ठसंकोचनी दीर्घपेशी की कंडरा ।

कि ऊर्वस्थि का शिर और ऊपर के दोनों उभार गात्र से जुड़ गये हैं परन्तु नीचे का सिरा अभी अलग है तो यह परिणाम निकालना अनुचित न होगा कि उस मनुष्य की आयु १८ और २० वर्ष के बीच में है; २० से अधिक नहीं क्योंकि इस वर्ष के पश्चात् नीचे का सिरा गात्र से जुड़ जाता है, १८ वर्ष से कम नहीं क्योंकि इस वर्ष से पूर्व ऊपर का सिरा गात्र से नहीं जुड़ता।

अस्थियों के सिरों और गात्रों का संयोग अधिकतर १८ वें और २० वें वर्षों के बीच में होता है। किसी किसी अस्थि का सिरा २५ वर्ष से पहले गात्र से नहीं जुड़ता (जैसे अक्षक)। अस्थियों को २५ वर्ष की आयु से पहले परिपक्व न समझना चाहिये। स्त्रियों की अस्थियाँ प्राय: पुरुषों की अस्थियों से कुछ वर्षों पहले परिपक्व होती हैं।*

सब अस्थियाँ कारटिलेज से नहीं बनतीं। कुछ अस्थियों के स्थान में पहले एक झिल्ली बनती है; धीरे धीरे इस झिल्ली की रचना में परिवर्तन होता है अस्थिविकास केन्द्र उदय होते हैं और अस्थि बन जाती है। कर्पर की कई अस्थियाँ झिल्ली से बनती हैं

* एक्स-रे द्वारा जाँच पड़ताल से यह मालूम हुआ है कि अस्थियों के सिरे गात्रों से स्त्रियों में पुरूषों की अपेक्षा लगभग ४ वर्ष पहले जुड़ जाते हैं। पुरुषों और स्त्रियों में बढ़ौत की माप की जावे तो भिन्न भिन्न कालों में अलग अलग मिलती है। जितनी तेज़ी से बढ़ौत पुरूषों में १७-१८ वर्षों में होती है उतनी ही तेज़ी से स्त्रियों में १४-१६ वर्षों में होती है। स्त्रियों में अधिक बढ़ौत १८ वर्ष तक होती है; पुरूषों में २४ वर्ष तक जारी रहती है [Woolard's Recent Advances in Anatomy 1927]

चित्र १०७ ऊर्ध्व शाखा की तीन अस्थियों के

अस्थि विकाश केन्द्रों के उदय काल

वहिः प्रकोष्ठास्थि | अंतः प्रकोष्ठास्थि
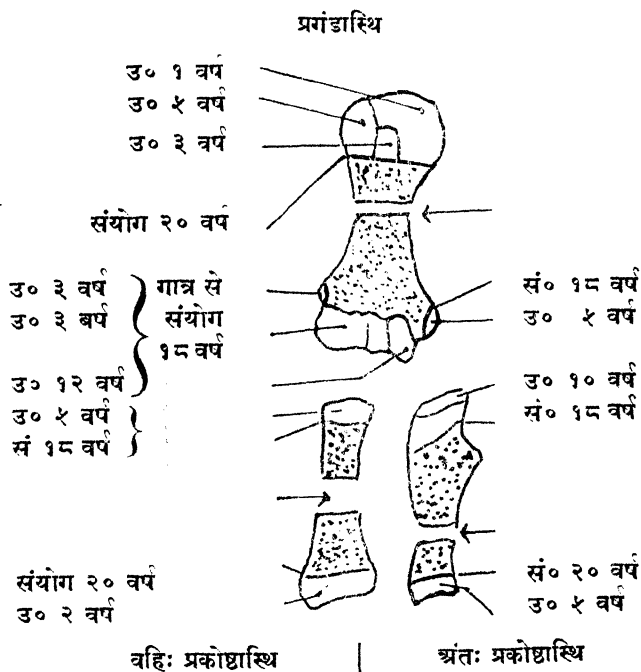
अस्थिविकाश सम्बन्धी परिभाषा

अस्थि विकाश = अस्थि बनना आरंभ होना

अस्थि विकाश केन्द्र = वह स्थान जहाँ अस्थि बनना आरंभ होता है

उदय = केन्द्र का बनने लगना; संकेत = उ

चित्र १०८ अधर शाखा की तीन अस्थियों के
अस्थि विकाश केन्द्रों के उदय काल
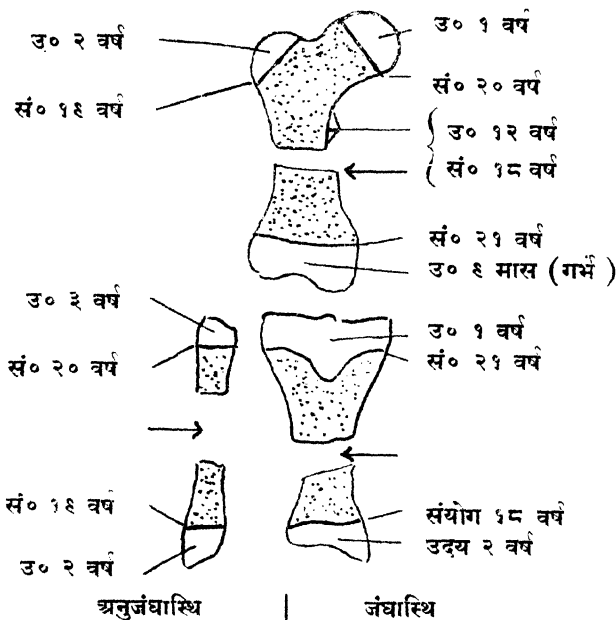
संयोग = सिरे का गात्र से जुड़ना : संकेत = सं०

अस्थि मध्य = लम्बी अस्थि का बीच का भाग जो गात्र कहलाता है (Diaphysis)

अस्थि अंत = अस्थि का सिरा जिसमें अलग केन्द्र उदय होता है

समीप अस्थि अंत = अस्थि का ऊपर का सिरा Proximal Epiphysis

दूर अस्थि अंत = अस्थि का नीचे का सिरा (Distal Epiphysis)

अस्थियों की संख्या के विषय में प्राचीन [आयुर्वेद] और अर्वाचीन व्यवच्छेदकों में मतभेद है।

हमने प्रौढ़ मनुष्य के शरीर में छोटी बड़ी कुल २०६* अस्थियाँ गिनाई हैं। अब देखिये प्राचीन ग्रन्थों में क्या लिखा है।

त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते। शल्यतन्त्रे तु त्रीण्येव शतानि तेषां सविंशमस्थिशतं शाखासु सप्तदशोत्तर शतं श्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरःसु ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं त्रिषष्टिः एवमस्थ्नां त्रीणि शतानि पूर्यन्ते॥

सुश्रुत शारीरस्थान अ० ५—॥ १७॥

चरक और वाग्भट में ३६०, सुश्रुत और भाव प्रकाश में ३०० अस्थियाँ लिखी हैं। २०६ और ३६० या ३०० में बड़ा भेद है।

मतभेद के कारण

(१) ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन विद्वानों ने जितनी कठिन चीजें शरीर में होती हैं उन सब को अस्थि मान लिया है; उन्होंने कारटिलेज और अस्थि में कोई भेद नहीं माना; दाँतों ‡ को अस्थियों में गिना है, नख को भी अस्थि कहा है।

*हाथ और पैर की कंडराओं में पाई जाने वाली छोटी अस्थियों को छोड़कर।

‡ ४०, ५० वर्ष पूर्व के पाश्चात्य विद्वान् भी दाँतों को अस्थियों में गिना करते थे।

कारटिलेज, दाँत और नख की स्थूल और सूक्ष्म रचना अस्थि की रचना से इतनी भिन्न है कि इन सब चीजों के लिये एक ही शब्द का प्रयोग उचित मालूम नहीं होता।

(२) प्राचीन विद्वानों ने किसी किसी अंग में इतनी अस्थियाँ गिनाई हैं जितनी वास्तव में नहीं होतीं—"पार्श्वयोः षट्त्रिंशत् षट्त्रिंशत्" * (भावप्रकाश), दोनों पसलियों में छत्तीस छत्तीस अस्थियाँ है, दोनों ओर ७२। आजकल हर एक ओर १२ पसलियाँ होती हैं, किसी मनुष्य में १३ भी होती हैं; दोनों ओर २४ या २६ से अधिक नहीं होतीं। २४ या २६ और ७२ में बड़ा भेद है।

डाक्टर हार्नले साहब ‡ लिखते हैं कि चरक ने ७२ का हिसाब यों बतलाया है—२४ पर्शुका हैं, २४ स्थालक और २४ अर्बुद। एक पर्शुका + एक स्थालक + एक अर्बुद = एक पसली।

पर्शुका = पसली का लम्बा भाग या गात्र।

अर्बुद = पसली के पिछले सिरे पर का उभार जो कशेरुका के पार्श्विक प्रवर्द्धन से लगा और बँधा रहता है।

पार्श्वयोश्चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशति पञ्जरास्थीनि च पार्श्वकानि।
तावान्ति चेषां स्थालिकान्यर्बुदाकाराणि तानि द्वसप्तति॥

(चरक शारीरस्थान)

पार्श्वे षट्त्रिंशदेवमेकास्मिन् द्वितीयेप्येवम्।

(सुश्रुत शारीरस्थान)

‡ Medicine of Ancient India Part I Osteology by Dr. A. F. Rudolf Hoernle C. I. E.

स्थालक = पीठ के कशेरुका के पार्श्व प्रवर्द्धन पर जो गढ़ा होता है उसको स्थालक कहते हैं। स्थालक के कारण कुल प्रवर्द्धन को स्थालक कहा है।

चरक ने पीठ के १२ कशेरुका के प्रवर्द्धनों को पसलियों में गिना है :—

पर्शुका	१२ × २	=	२४
अर्बुद	१२ × २	=	२४
स्थालक	१२ × २	=	२४
पसली देश की अस्थियाँ		=	७२

चरक के इस हिसाब पर निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं :—

१. पसली के उभार (अर्बुद) को शेष पसली (गात्र) से अलग गिनने की क्या आवश्यकता थी ?

२. स्थालक (पार्श्व प्रवर्द्धन) कशेरुका का भाग है न कि पसली का। इन प्रवर्द्धनों को पसलियों में गिनना उचित नहीं मालूम होता।

३. केवल ऊपर के दस कशेरुका के पार्श्व प्रवर्द्धनों को स्थालक कह सकते हैं, नीचे के दो कशेरुका (११ वें, १२ वें) के पार्श्व प्रवर्द्धनों को स्थालक न कहना चाहिये क्योंकि उनमें स्थालक (गढ़े) नहीं होते हैं। इस प्रकार दोनों ओर १० × २ = २० स्थालक होंगे न कि २४।

४. अर्बुद (उभार) भी केवल ऊपर की दस पसलियों पर होते हैं नीचे की दो पर नहीं होते। इस प्रकार अर्बुद भी २० हुए न कि २४। चरक के पर्शुका, अर्बुद और स्थालकों

को गिन कर भी हमारे हिसाब से इन अस्थियों की संख्या ६४ होती है न कि ७२ :—

पर्शुका	=	२४
अर्बुद	=	२०
स्थालक	=	२०
		—
		६४

पसलियों की संख्या ७२ हमारी राय में किसी तरह भी सिद्ध नहीं होती। २४ पसलियाँ ही मानना ठीक है।

"एकैकस्यां तु पादांगुल्यांत्रीणित्रीणि तानि पञ्चदश"

(सुश्रुत), एक एक अंगुली में तीन तीन इस प्रकार पाँचों अंगुलियों में पंद्रह।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश—सबने अंगुलियों में पंद्रह ही अस्थियाँ मानी हैं। सत्य तो यह है कि अंगूठे में केवल दो अस्थियाँ होती हैं, तीन नहीं; पाँचों अंगुलियों में १४ होती हैं न कि पंद्रह। हाथों पैरों की अंगुलियों में ५६ होती हैं न कि ६०।

(३) पुराने पंडितों ने किसी किसी स्थान में उतनी अस्थियाँ नहीं मानी जितनी वास्तव में होती हैं। कलाई और टखने और एड़ी के देशों में सुश्रुत ने १० और चरक ने १४ अस्थियाँ मानी हैं :—

सुश्रुत—कूर्च ४ मणिबन्ध २ पार्ष्णि २ गुल्फ २

चरक—अधिष्ठान ४, मणिक, ४ पार्ष्णि २, गुल्फ ४

वास्तव में कूर्च (अधिष्ठान) और मणिबन्ध (मणिक) में अर्थात् कलाई में आठ अस्थियाँ होती हैं। पार्ष्णि और गुल्फ देशों (टाँग और प्रपाद के बीच के भाग) में सात अस्थियाँ होती हैं।

(४) पुराने व्यवच्छेदकों ने कई अस्थियों के उभारों को पृथक् पृथक् अस्थि माना है। कोहनी में अन्तःप्रकोष्ठास्थि का जो ऊपर का सिरा होता है उसको "कूर्पर" या "कपालिका" अस्थि कहा है। पृष्ठवंश के मोहरों के पार्श्वस्थ प्रवर्द्धनों को अलग अलग अस्थियाँ गिना है।

पीठ और कमर में सुश्रुत ने ३० और चरक ने ४५ अस्थियाँ गिनाई हैं।

सुश्रुत ने कशेरुका के तीन भाग माने हैं:—एक गात्र और दो पार्श्वस्थ प्रवर्द्धन। पार्श्वस्थ प्रवर्द्धनों को पसलियों में गिन लिया। त्रिक के पहले मोहरे को कमर के मोहरों में गिन कर उनके हिसाब से तीस अस्थियाँ यों हुईं:—

पीठ के मोहरे =	१२
कमर के मोहरे ६; हर एक के तीन भाग इसलिए ६ × ३ =	१८
	३०

चरक ने हर एक मोहरे के चार भाग माने हैं:—

गात्र, पाश्चात्य प्रवर्द्धन और दो पार्श्व प्रवर्द्धन। कमर में उन्होंने पाँच ही मोहरे माने हैं। उनके हिसाब से ४५ अस्थियाँ यों होती हैं:—

पीठ के मोहरे १२; १२ × ४ = ४८ इनमें से २४ पार्श्व प्रवर्द्धन पसलियों में गिन लिये, शेष बचे २४	=	२४
कमर के पाँच मोहरे, ५ × ४	=	२०
त्रिक और गुदास्थि (दोनों को एक माना है)	=	१
		४५

सुश्रुत ने त्रिक और गुदास्थि को अलग रक्खा है।

(५) कपाल में आठ अस्थियों की जगह उन्होंने ६ अस्थियाँ गिनी हैं; कपाल की तली की बहुछिद्रास्थि और जतूकास्थि को उन्होंने नहीं गिना। ऐसे ही चेहरे की कई छोटी छोटी अस्थियों को उन्होंने छोड़ दिया है (जैसे सीपाकृत, नासा फलक, अश्रवस्थि आदि)।

(६) मतभेद का एक कारण यह भी हो सकता है कि २५ वर्ष की आयु से पहले सब अवस्थाओं में अस्थियों की संख्या एक नहीं होती। बचपन में बहुत सी अस्थियों के कई कई टुकड़े होते हैं (चित्र १०५); ये टुकड़े उबालने से या छुरी की सहायता से अलग हो जाते हैं। नवजात बालक के शरीर में हर एक कशेरुका के तीन तीन टुकड़े होते हैं ललाटास्थि के दो भाग होते हैं (चित्र ७३); शाखाओं की अस्थियों के भी कई कई भाग होते हैं। यदि एक या दो वर्ष के बालक की अस्थियों के सब टुकड़े गिने जायँ तो उनकी संख्या तीन सौ या उससे भी अधिक हो जावेगी। ११, १२ वर्ष के बालक के हाथ में ३८ अस्थियाँ होती हैं। (देखो चित्र १०५); इस चित्र का चित्र ३१ से मुक़ाबला करो।)

प्राचीन और अर्वाचीन व्यवच्छेदकों के मतानुसार अस्थियों की संख्या (डाक्टर हार्नले ❀ की पुस्तक के आधार पर) :—

नवीन व्यवच्छेदक	चरक		सुश्रुत	
	(क) शाखाएँ			
१. हस्त और पाद की अंगुलियों में ५६	पाणि पाद अंगुली	६०	पाणि पाद अंगुली	६०
२. करभास्थियाँ वा प्रपादास्थियाँ २०	शलाका	२०	तल	२०
३. कलाई, टखना, एड़ी की अस्थियाँ ३०	अधिष्ठान	४	कूर्च	४
	पार्ष्णि	२	पार्ष्णि	२
४. प्रकोष्ठ की अस्थियाँ ४	अरत्नि	४	अरत्नि	४
प्रकोष्ठास्थियों के अंतर्मणिक व बहिर्मणिक नामक उभार	❀मणिक	४	मणिबन्ध	२
कूर्परकूट	❀ कपालिका	२	कूर्पर	२

❀ Dr. A.F. Rudolf Hoernle's Studies in the Medicine of Ancient India—Osteology.

नवीन व्यवच्छेदक		चरक		सुश्रुत	
५. जंघा की अस्थियाँ	४	जंघा	४	जंघा	४
जंघा की अस्थियों के नीचे के सिरे जिनसे गट्टे बनते हैं।		† गुल्फ	४	गुल्फ	२
६. जान्वस्थि	२	जानु	२	जानु	२
७. प्रगंडास्थि	२	बाहु नलक	२	बाहु	२
८. ऊर्वस्थि	२	ऊरु नलक	२	ऊरु	२
	१२०		११०		१०६

(ख) धड़

नवीन व्यवच्छेदक		चरक		सुश्रुत	
९. अक्षक	२	अक्षक	२	अक्षक	२
१०. स्कन्धास्थि	२	अंसफलक	२	अंसज	२
११. पसलियाँ	२४	पर्शुका	७२	पर्शुका	७२
१२. वक्षास्थि	१	उरस्	१४	उरस्	१७
१३. पीठ और कमर के कशेरुका	१७	...		पृष्ठ	३०
१४. त्रिक	१	पृष्ठ	४५	त्रिक	१
१५. चंचु	१			गुदा	१

नवीन व्यवच्छेदक	चरक	सुश्रुत
१६. नितंबास्थि २	श्रोणि फलक २ भगास्थि १	नितंब २ भग १
५०	१३८	१२८

(ग) शिर, ग्रीवा

नवीन व्यवच्छेदक	चरक	सुश्रुत
१७. ग्रीवा के कशेरुका ७	ग्रीवा १५	ग्रीवा ९
टेंटुवा, स्वर यंत्र * वायु प्रनालियाँ	जत्रु १	कंठनाड़ि ४
१८. कपाल की अस्थियाँ		
ललाटास्थि १ पश्चादस्थि १ पार्श्विकास्थियाँ २ जतूकास्थि १ बहुछिद्रास्थि १	शिर कपाल ४	शिर कपाल ६
शंखास्थियाँ २	शंखक २	शंखक २
१९. चेहरे की अस्थियाँ		
ऊर्ध्वहन्वस्थि २ अधोहन्वस्थि १	हनु, हनुमूल ३	हनु २

नवीन व्यवच्छेदक		चरक		सुश्रुत	
कपोलास्थि	२	ललाट, गंडकूट, नासिका	१	गंड	२
नासास्थि	२			नासा	३
ताल्वस्थि	२	तालुषक	२	तालु	२
अश्रूवस्थि	२	×			
सीपाकृति	२	×			
नासाफलक	१	×			
कंठिकास्थि	१	×			
दंत	❀	दंत	३२	दंत	३२
दंत उलूखल	†	उलूखल	३२		
नख	❀	नख	२०		
अक्षिगोलक	❀			अक्षिकोष	२
कर्ण	❀			कर्ण	२
शंखास्थि के भीतर की छोटी अस्थियाँ	६				
	३६		११२		६६
कुल जोड़	२०६		३६०		३००

† ये अलग अलग अस्थियाँ नहीं मानी जातीं। ❀ इनकी रचना अस्थि की रचना से भिन्न होने के कारण इनकी गिनती अस्थियों में नहीं है।

अध्याय ६

संधियाँ

जब दो या दो से अधिक अस्थियों या कारटिलेजों के सिरे या किनारे आपस में मिलते हैं तो इस मेल को जोड़ या **सन्धि** कहते हैं। उदाहरण:—प्रगंडास्थि के शिर और स्कन्धास्थि के मेल से एक संधि बन जाती है जिसको **स्कन्धसन्धि** या कन्धे का जोड़ कहते हैं; प्रकोष्ठ की दोनों अस्थियों के ऊपर के सिरों और प्रगंडास्थि के नीचे के सिरे के मेल से कोहनी का जोड़ या **कफोणि** सन्धि बनती है; ललाटास्थि के ऊर्ध्व भाग के किनारे और पार्श्विकास्थियों के अगले किनारों के आपस के मेल से भी संधि बनती है; स्वर यंत्र के नौ कारटिलेज एक दूसरे से मिले और बँधे रहते हैं; इनके बीच में सन्धियाँ होती हैं।

दो अस्थियों या कारटिलेजों के बीच में जो गति होती है वह केवल सन्धि के स्थान में होती है। सब संधियों में गतियाँ नहीं होतीं। इस विचार से कि गति होती है या नहीं सन्धियाँ दो प्रकार की कही जाती हैं:—

१. **चल** या **चेष्टावन्त** सन्धियाँ जहाँ गति हो सकती है जैसे स्कन्ध सन्धि; कफोणि सन्धि; जानु; कूल्हा आदि।

२. **अचल** या **स्थिर** सन्धियाँ जिनमें गति असम्भव है जैसे दोनों पार्श्विकास्थियों के बीच की संधि। अधोहन्वस्थि

और शंखास्थि की सन्धि को छोड़कर कर्पर की शेष सन्धियाँ स्थिर ही हैं।

अचल या स्थिर या अचेष्ट संधियाँ

इस प्रकार की संधियाँ खोपड़ी में मिलती हैं। अस्थियाँ एक दूसरे से बिलकुल जुड़ी रहती हैं। या तो एक अस्थि का किनारा दूसरी अस्थि के किनारे के ऊपर चढ़ा रहता है या पास पास की दोनों अस्थियों के किनारों में दांते रहते हैं और ये दाँते एक दूसरे में फँस जाते हैं। खोपड़ी में जहां दोनों पार्श्विकास्थियाँ एक दूसरे से मिलती हैं और ललाट और पश्चात अस्थियाँ पार्श्विकास्थियों से जुड़ती हैं वहाँ टेढ़ी रेखाएँ दिखाई देती हैं। ये रेखाएँ अस्थियों के दाँतों के एक दूसरे में फंसने से बनती हैं। (देखो चित्र ७६)

जो लोग इस बात को नहीं समझते वे इन रेखाओं को कर्म का लेख मानते हैं; यह उनकी अज्ञानता है।

चल या चेष्टावन्त संधियाँ

कन्धे, कोहनी, कलाई और अंगुलियों की संधियाँ, कूल्हे, जानु, गुल्फ और पैर की अंगुलियों की संधियाँ; रीढ़ के मोहरों की संधियाँ; निम्नहनु और शंखास्थि की संधि चल संधियाँ हैं। इनके अतिरिक्त चल संधियाँ और भी हैं।

बहुत सी चल संधियों में गति भली प्रकार होती है*। कुछ चल संधियों में थोड़ी ही गति संभव है‡। कशेरुकाओं के गात्रों

---

* ये बहुचेष्टावन्त संधियाँ हैं।

‡ ये अल्प चेष्टावन्त संधियाँ हैं।

गहराव या गढ़ा होता है जैसे ऊर्वस्थि के शिर के लिये नितंबास्थि में एक गहरा गढ़ा होता है। प्रगंडास्थि के नीचे के सिरे पर प्रकोष्ठ की अस्थियों के ऊपर के सिरों के लिये खाँचे और उभार होते हैं।

बंधन (संधि बंध या बंधनी) चित्र १०९, ११०, ११२

चल संधियों में अस्थियों के सिरे एक दूसरे से सौत्रिक तंतु द्वारा बँधे रहते हैं। इस बाँधने वाली वस्तु को बंधन या संधिबंध कहते हैं। बहुत से स्थानों में बंधन एक थैली की शकल का होता है जिसके भीतर दोनों अस्थियों के सिरे रहते हैं; यह थैली ऊपर ऊपर की अस्थि से और नीचे नीचे की अस्थि से जुड़ी रहती है। इस थैली को सन्धिकोष या बंधनकोष कहते हैं (चित्र १०९)। संधिकोष कहीं से मोटा होता है और कहीं से पतला। कहीं कहीं अस्थियों के सिरे चारों ओर से बंधन से ढके हुए नहीं होते; बंधन डोरी या पट्टी जैसे होते हैं; ये पट्टियाँ या डोरियाँ ऊपर ऊपर की अस्थि से और नीचे नीचे की अस्थि से जुड़ी रहती हैं। बंधन अस्थियों के सिरों को अपने अपने स्थानों से सरकने नहीं देते। संधिकोष के भीतरी पृष्ठ पर एक पतली चमकदार झिल्ली (**स्नैहिक कला**) लगी रहती है; झिल्ली की सेलें एक चिकनाईदार तरल (**स्नेह**) बनाती हैं। इस तरल से झिल्ली और अस्थियों के सिरों पर लगे हुए कारटिलेज के पृष्ठ सदा तर रहते हैं। यह तरल वही काम देता है जो मशीन में तेल। मशीन में तेल लगने से रगड़ नहीं होती और बिना

किसी प्रकार का शोर किये अच्छी तरह चलती है; तेल की

चित्र ११२ वंक्षण संधि
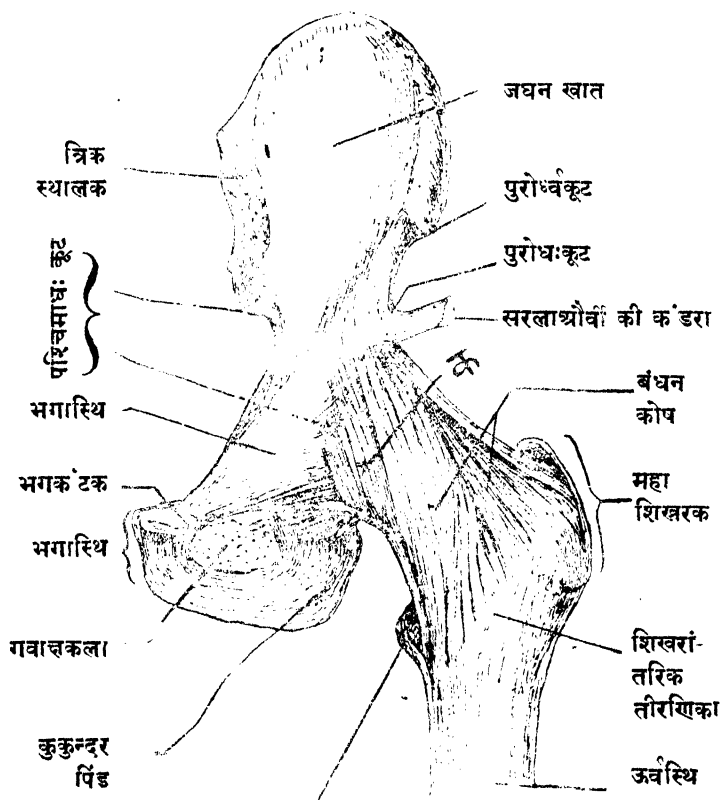
क = वंक्षण संधि के बंधनकोष का कमज़ोर भाग।

चित्र ११३ जानु संधि (सामने से)
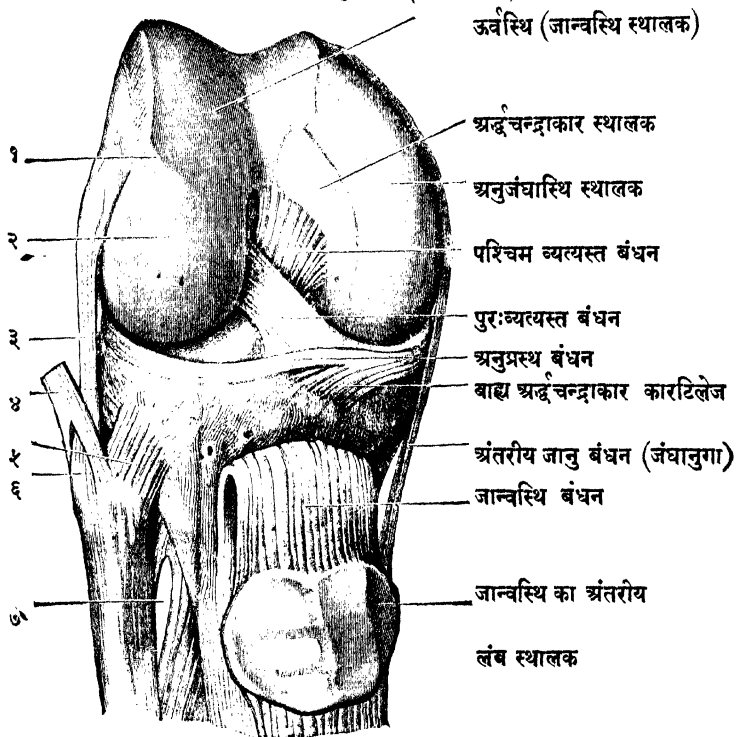
(From Cunningham's Practical Anatomy by permission)

१ = बाह्य अर्द्धचन्द्रकार कारटिलेज का निशान, २ = ऊर्वस्थि का जंघास्थि स्थालक, ३ = बाह्यजानु बंधन (अनु जंघानुगा बंधन) ४ = द्विशिरस्का ओर्वी की कंडरा ५ = पुरः जंघा अनुजंघास्थि बंधन ६ = बाह्य जानु बंधन ७ = अस्थ्यातंरिका कला में जंघापुरोगा रक्त वाहिनियों के जाने के लिये छिद्र

चित्र ११४ जानु संधि, जानु कोष पीछे से हटा दिया गया है जानु की अंदर की बनावट दिखाई देती है ।
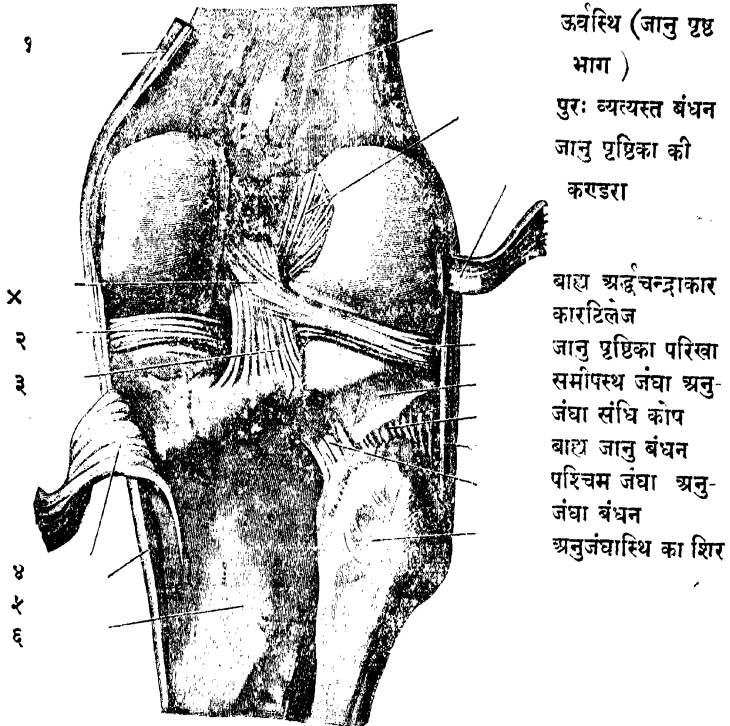
From Cunningham's Practical Anatomy by permission

१ = ऊरु अंतर नायनी गरिष्ठा की कण्डरा २ = अंतः अर्द्ध चन्द्राकार कारटिलेज ३ = पश्चिम व्यत्यस्त बंधन ४ = कला कल्पा की कण्डरा ५ = अंतरीय जानु बंधन ६ = जंघास्थि का जानु पृष्ठ भाग

वजह मशीन के पुरज़े शीघ्र नहीं घिसते। वैसे ही इस चिकने तरल के कारण संधियों में रगड़ नहीं होती और गतियाँ बहुत अच्छी तरह बिना किसी प्रकार की आहट के होती हैं। कभी कभी इस कला का प्रदाह (वरम, सूजन) हो जाता है और कोष के भीतर तरल या पीप (राद) भर जाती है; संधियाँ सूजी हुई दिखाई देती हैं; उनमें पीड़ा होती है और गतियों में रुकावट हो जाती है।

जब तक बंधन ठीक हैं उस समय तक अस्थियाँ अपने अपने स्थानों से नहीं हट सकतीं। बहुत ज़ोर पड़ने पर या चोट लगने से कभी कभी बंधन टूट जाते हैं और कोषों में छिद्र हो जाते हैं। बंधनों के टूटने से अस्थियाँ अपना अपना स्थान छोड़कर एक दूसरे से अलग हो जाती हैं या उनके सिरे कोष के छिद्र में से बाहर निकल आते हैं। इसको **विसंधान** या **संधिभङ्ग** या **संधिच्युति** कहते हैं।

कभी कभी बंधन ज़ोर से खिंच जाते हैं और उनके कुछ सूत्र भी टूट जाते हैं; अस्थियाँ अपनी अपनी जगह पर रहती हैं परन्तु अधिक खिंचने से संधि में थोड़ा या बहुत दर्द होता है और गतियों में कुछ फ़र्क़ आ जाता है। इसको **मोच आना** या "**बंधन वितान**" कहते हैं। मोच आने में संधि के आस पास की मांस पेशियाँ या उनकी कंडराएँ भी खिंच जाती हैं और कभी कभी मांस पेशी की कुछ सेलें या कंडरा के कुछ सूत्र टूट भी जाते हैं, संधि के आस पास कुछ सूजन आ जाती है। कंडरा के खिंच जाने को "**कण्डरा वितान**" कहते हैं।

चित्र ११५ की व्याख्या (जानु संधि)

नौ दस वर्ष के बालक का जानु बीच में से लम्बाई के रुख दो समान भागों में काटा गया है। ऊर्वस्थि का नीचे का सिरा (दूरांत) और जंघास्थि का ऊपर का सिरा (समीपांत) अभी गात्र से नहीं जुड़ा। गात्र और सिरे के बीच में अभी कारटिलेज का पत्र मौजूद है।

१ = जानुपश्चात् धमनी (और्वी धमनी ही नीचे जाकर जानु पश्चात् धमनी बन जाती है)

२ = जानुपश्चात् शिरा (यह शिरा ऊपर जाकर और्वी शिरा कहलाती है)

३ = ऊर्वस्थि का पिछला भाग यहाँ पर वसा रहती है। ४ = जानु-संधि का पाश्चात्य बंधन ; ५ = पिंडिका पेशी ; ६ = बंधन ७ = पृष्ठिका पेशी ; ८, ९, १२ = श्लेष्म कोष ; १० = जान्वस्थि बंधन ; ११ = वसा पिण्ड ; १३ = वसापिण्ड ; १४ = वसा ; १५ = श्लेष्मकोष; १६ = वसा ; १७ = पेशी ; १८, १९ = अंतर जिसमें स्नेह रहता है ; २० = अर्धचन्द्राकार कारटिलेज।

चित्र ११५ जानु

पृष्ठ १८० के सम्मुख

चित्र ११६

पृष्ठ १८१ के सम्मुख
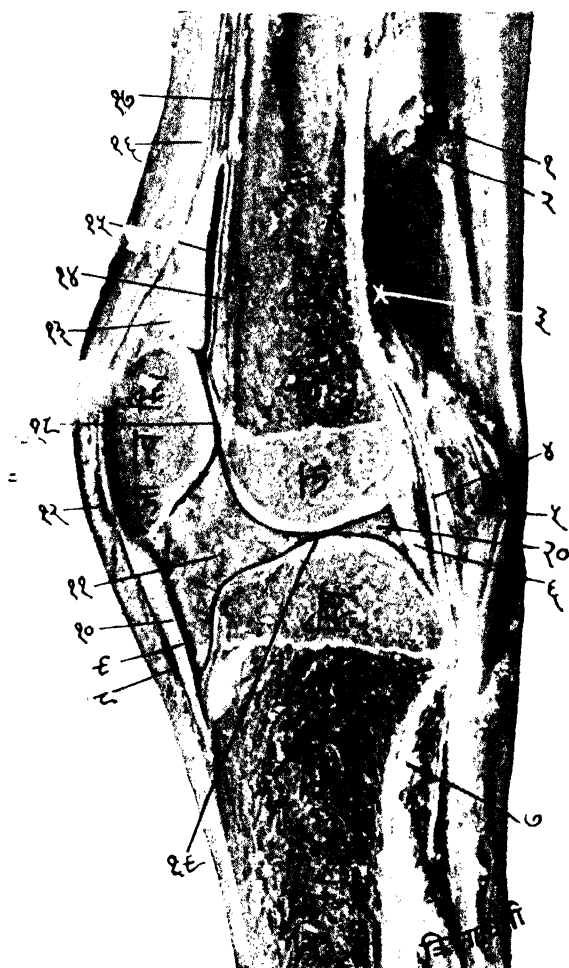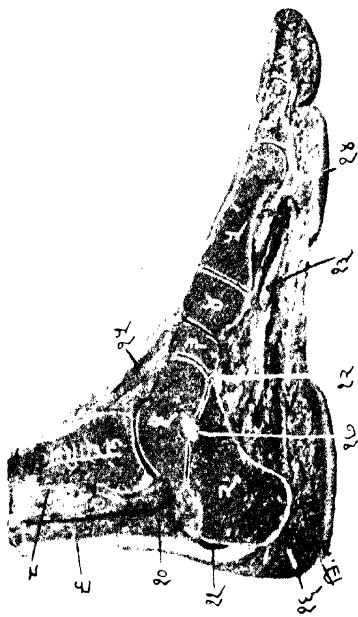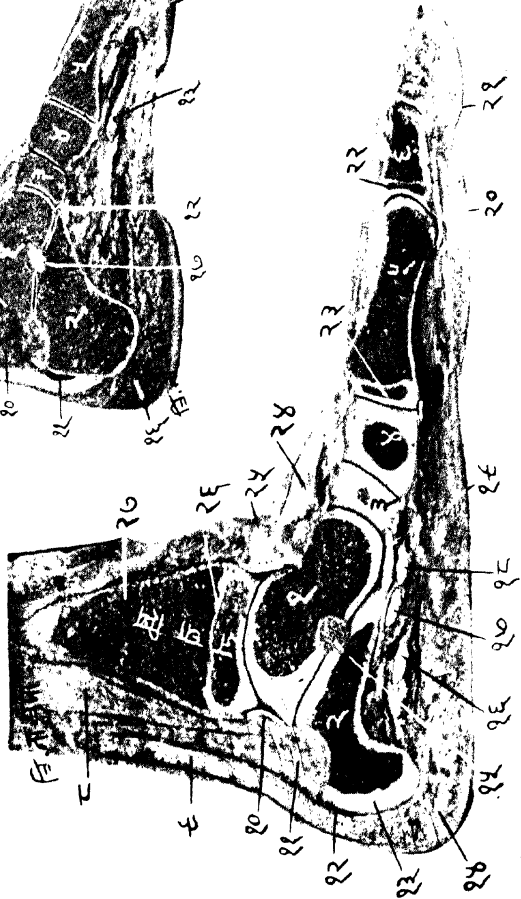
चित्र ११६ की व्याख्या (पैर की संधियां)

नौ दस वर्ष के बालक का पैर इस प्रकार काटा गया है कि छुरी और आरी अंगुष्ठ, पहली प्रपादास्थि, पहली त्रिपार्श्विक, नौकाकृति, गुल्फास्थि, पार्ष्णि और जंघास्थि में से होकर गुज़री ।

१ = गुल्फास्थि; २ = पार्ष्णि; ३ = नौकाकृति; ४ = पहली त्रिपार्श्विक; ५ = पहली प्रपादास्थि का गात्र; ६ = पहली अंगुल्यस्थि का गात्र; ७ = दूसरी अंगुल्यस्थि का गात्र; ८ = पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा; ९ = पिचिंडिका पेशी की कंडरा; १० = गुल्फ संधि का पाश्चात्य बंधन; ११ = वसा; १२ = श्लेष्म-कोष; १३ = पार्ष्णि का कारटिलेज कृत भाग; १४ = वसा; १५ = गुल्फ पार्ष्णिबंधन; १६ = पादांगुली संकोचनी दीर्घा; १७ = पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा की कंडरा; १९ = गुल्फ नौकाबंधन; २० = बंधन; २१ = बंधन; २२ = अंगुल्यस्थि का सिरा जो अभी गात्र से नहीं जुड़ा है; २३ = प्रपादास्थि का शिर जो अभी अलग है; २४ = जंघा पुरोगा पेशी । २५ = गुल्फ संधि का अगला बंधन; २६ = कारटिलेज; २७ = अस्थि ।

चित्र ११७ की व्याख्या (पैर की संधियां)

प्रौढ़ स्त्री का पैर; चित्र ११६ से मुक़ाबला करो ।

१, २, ३, ४, ५, ६, ७ = वही व्याख्या जो चित्र ११६ में; ८ = जंघास्थि, इसका नीचे का सिरा गात्र से जुड़ गया है; ९ = पिचिंडिका पेशी की कंडरा; १० = वसा; ११ = श्लेष्मकोष; १२ = बंधन; १३ = कंडराएं; १४ = कंडरा चणकास्थि; १५ = कंडरा; १६ = वसा; प्रपादास्थियाँ और अंगुल्यस्थियाँ पक्की हो गई हैं; उनके सिरे अलग नहीं हैं ।

चित्र ११८ की व्याख्या (पैर की संधियाँ)

दस ग्यारह वर्ष के बालक का पैर इस प्रकार काटा गया है कि आरी दूसरी अंगुली, दूसरी प्रपादास्थि, दूसरी त्रिपार्श्विकास्थि, नौकाकृति, गुल्फास्थि और जंघास्थि में से होकर गुज़री। इस चित्र का चित्र ११७ से मुक़ाबला करो और देखो :—

१. पार्ष्णि का पिछला भाग नौ दस वर्ष की आयु तक कारटिलेज का ही रहता है (चित्र ६४ में १३), दस वर्ष की आयु में इसमें अस्थि विकाशकेन्द्र उदय होता है और अस्थि बननी आरंभ होती है। १५-१६ वर्ष की आयु में ये दोनों भाग जुड़ जाते हैं और एक अस्थि हो जाती है (चित्र ११७)।

२. १७-१८ वर्ष से पहले प्रत्येक प्रपादास्थि के दो भाग होते हैं। अंगुष्ठ की प्रपादास्थि का पिछला भाग गात्र से अलग रहता है (चित्र ११६ में २२)। शेष अंगुलियों के शिर गात्र से अलग रहते हैं। (चित्र ११८ में २८); १८ वर्ष के लगभग दोनों भाग जुड़ जाते हैं (चित्र ११८ में ५)।

१ = गुल्फास्थि; २ = पार्ष्णि; ३ = नौकाकृति; ४ = दूसरी त्रिपार्श्विक; ५, २८, २५ = दूसरी प्रपादास्थि; ६, ७, ८ = अंगुल्यस्थियाँ; ९ = जंघास्थि का गात्र; १० जंघास्थि का नीचे का सिरा जो अभी गात्र से नहीं जुड़ा है और जिसके और गात्र के बीच में (जं और घा के बीच में श्वेत भाग) अभी कारटिलेज का पत्र है। ११ = गुल्फ संधि का पिछला बंधन; १२ = वसा; १३ = पिंचिंडिका पेशी की कंडरा; १४ = त्वचा; १५ = वसा; १६ = पार्ष्णि का पिछला भाग जो अभी गात्र से अलग है। १७ = कला; १८ = अस्थ्यांतरिक बंधन; १९ = पेशी; २० = नौकापार्ष्णि बंधन; २१ = पादांगुलीसंकोचनी लध्वी; २२ = पादांगुलीसंकोचनी दीर्घा; २३ = गुल्फ संधि का अगला बंधन; २४ = जंघा पुरोगा पेशी. २५ = दूसरी प्रपादास्थि का पिछला भाग, २६ = कंडरा, २७ = अस्थ्यांतरिका पेशी, २८ = प्रपादास्थि का शिर।
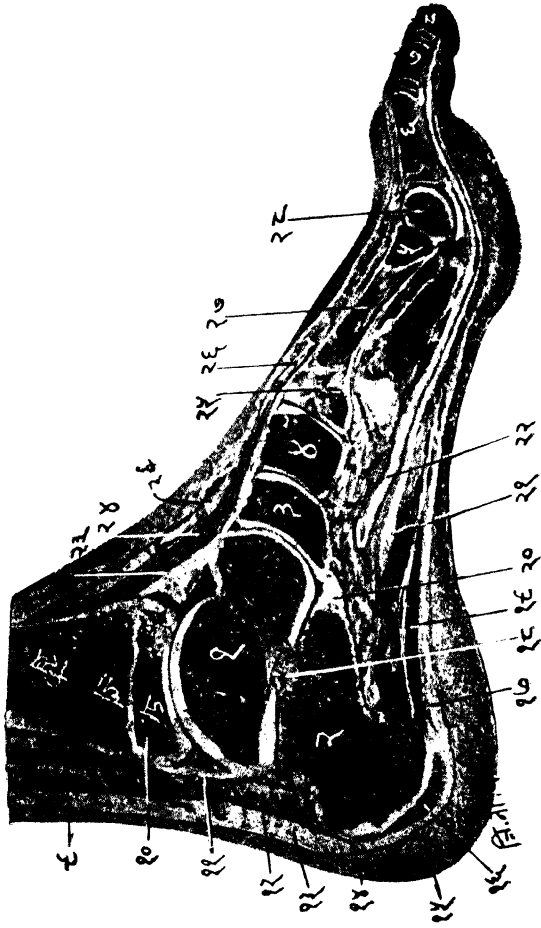
पृष्ठ १८२ के सम्मुख
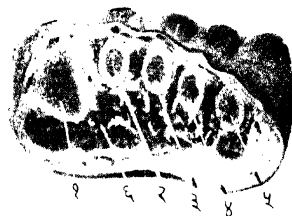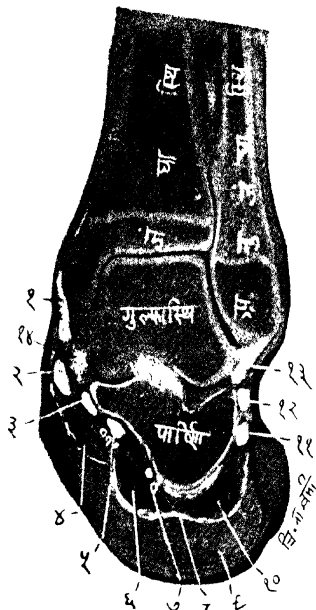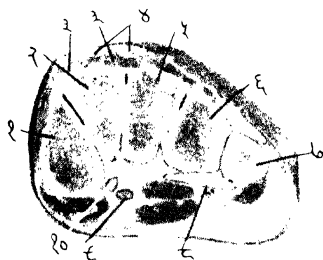
चित्र ११९
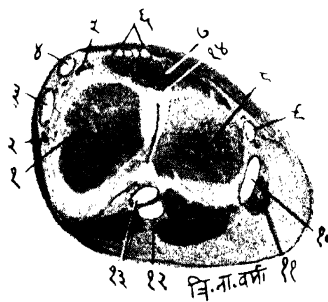
चित्र १२०

चित्र १२१

चित्र १२२

पृष्ठ १८३ के सम्मुख

चित्र ११९ से १२२ तक की व्याख्या (पैर की संधियाँ)

बाएं पैर के चार काट काटे गये हैं। पहले काट (चित्र ११९) में आरी जंघा को दोनों अस्थियों और गुल्फास्थि और पार्ष्णि में से होकर गुज़री; दूसरे काट (चित्र १२०) में आरी ने नौकाकृति और घनास्थि को काटा, तीसरे काट (चित्र १२१) में तीनों त्रिपार्श्विक, घन और पाँचवीं प्रपादास्थि का पिछला भाग कटा; चौथे काट (चित्र १२२) में प्रपादास्थियाँ कटी हैं। इन चित्रों में काटों के पिछले पृष्ठ दिखाए गए हैं। यदि १२२ के पीछे १२१ और १२१ के पीछे और १२० के पीछे ११९ रख दिये जावें तो पूरा पैर बन जावेगा। जो काट ११९ के पीछे था वह नहीं दिखाया गया।

चित्र ११९ :—

१, १३ = गुल्फसंधि के पार्श्विक बंधन; २ = जंघा पश्चिमगा पेशी; ४ = अंगुष्ठ बहिर्नायनी पेशी; ५ = पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा; ६ = पादांगुली संकोचनी लध्वी; ७ = धमनी और नाड़ी; ८ = कला ९ = वसा; १० = कनिष्ठा बहिर्नायनी पेशी; ११ = पादाविवर्तनी दीर्घा; १२ = पादविवर्तनी लध्वी।

चित्र १२० :—

१ = नौकाकृति; २ = धमनी; ३ = जंघापुरोगा पेशी; ४ = पादांगुष्ठ-प्रसारणी दीर्घा; ५ = धमनी; ६ = पादांगुलीप्रसारणी दीर्घा; ७ = पादांगुलीप्रसारणी लध्वी; ८ = घनास्थि; ९ = पादविवर्तनी लध्वी; १० = पाद-विवर्तनी दीर्घा; १२ = पादांगुलीसंकोचनी दीर्घा। १३ = पादांगुष्ठसंकोचनी दीर्घा।

चित्र १२१ :—

१ = पहली त्रिपार्श्विक; २ = दूसरी त्रिपार्श्विक; ३ = पादांगुली-प्रसारणी दीर्घा; ४ = पादांगुलीप्रसारणी लध्वी; ५ = तीसरी त्रिपार्श्विक; ६ = घनास्थि; ७ = पाँचवीं प्रपादास्थि; ८ = बंधन; ९ = पादांगुष्ठ-संकोचनी दीर्घा; १० = जंघा पश्चिमगा।

चित्र १२२ :—

१, २, ३, ४, ५ = पाँचों प्रपादास्थियाँ।

संधियों की संख्या

चल संधियों की संख्या (स्वर यंत्र के कारटिलेजों की संधियों को छोड़कर) तीन सौ के लगभग है :—

१. कशेरुका के गात्रों और संधि प्रवर्द्धनों की संधियाँ	११७
२. निम्नहन्वस्थि और शंखास्थि की संधियाँ	२
३. (क) पसलियों और कशेरुका की संधियाँ	२४
(ख) पसलियों और कशेरुका के पार्श्व प्रवर्द्धनों की संधियाँ	२०
(ग) पसलियों के कारटिलेजों और वक्षोऽस्थि की संधियाँ	१४
४. वक्षोऽस्थि के ऊपर के दो भागों की संधि	१
५. (क) नितंबास्थि और त्रिक की संधियाँ	२
(ख) भगास्थियों की संधि (विटप संधि)	१
६. ऊर्ध्वशाखाओं की संधियाँ ...	६२
७. निम्न शाखाओं की संधियाँ ...	५६
	२९९

संख्यातस्तु दशोत्तरे द्वे शते तेषां शाखास्वष्टषष्टिरेकोनषष्टिः कोष्ठे ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध त्र्याशीतिः ।

सुश्रुत शारीरस्थान अ० ५ ॥ २५ ॥

सुश्रुत और भावप्रकाश में २१० संधियाँ लिखी हैं। हमारे हिसाब से २९९ तो केवल चेष्टावन्त संधियाँ हैं; स्थिर संधियाँ जोड़कर संख्या और भी अधिक हो जायगी।

अध्याय ७

मांस संस्थान

हम पीछे बतला चुके हैं कि जब बाहु यथाविधि चीरी जाती है तो त्वचा और वसा के कटने पर मांस मिलता है; बाहु के काट (चित्र १३) से विदित है कि प्रगंडास्थि चारों ओर मांस से ढकी हुई है। बाहु की भाँति मांस और स्थानों में भी रहता है; जैसे वक्ष में, पसलियों के बीच में और उनके ऊपर, पीठ और कमर में पसलियों से और रीढ़ के मोहरों से लगा हुआ, चेहरे और ग्रीवा में, उदर की अगली दीवार में, टाँगों में। मांस केवल कंकाल से ही नहीं लगा रहता प्रत्युत वह शरीर के कोमल अंगों में भी रहता है—थैलियों (आशयों) मार्गों और नलियों की दीवारें अधिकांश मांस से ही निर्मित हैं।

मांस शरीर में हर जगह रहता है कहीं थोड़ा कहीं बहुत। शरीर के भार के प्रति १०० भागों में ४२—४३ भाग मांस के होते हैं।

जितनी गतियाँ शरीर में होती हैं वे सब मांस द्वारा ही होती हैं। चलना, फिरना, हाथ उठाना, मुँह खोलना, बोलना, पलक झपकाना, मैथुन करना ये सब काम मांस से ही होते हैं। ऐसे ही हृदय का धड़कना, आँखों की पुतली का बड़ा और छोटा होना, श्वास लेना, अन्न मार्ग में भोजन का धीरे धीरे नीचे को सरकना, भयभीत होकर या अधिक शीत के प्रभाव से बालों का खड़ा हो जाना ये सब क्रियाएँ मांस से ही होती हैं।

कंकाल से लगा हुआ मांस बहुत से छोटे छोटे गट्ठों से बना हुआ है। बाहु में मांस के कई टुकड़े रहते हैं। इन पृथक् पृथक् गट्ठों या टुकड़ों को **पेशियाँ** कहते हैं। पेशियाँ आपस में सौत्रिक तंतु द्वारा जुड़ी रहती हैं। यदि यह तंतु अँगुली से हटा दिया जाय तो पेशियाँ एक दूसरे से अलग की जा सकती हैं। पेशियों के बीच में और उनके भीतर जाते हुए रक्त की नलियाँ और वातसूत्र दिखाई देते हैं। कंकाल से लगा हुआ मांस तो पेशियों में विभक्त है परन्तु जो मांस आशयों, नलियों, मार्गों और हृदय आदि अंगों में है वह पृथक् पृथक् पेशियों में विभक्त नहीं है। इन अंगों में माँस की मोटी और पतली तहें रहती हैं, जैसे अन्न मार्ग की दीवारें माँस से निर्मित हैं परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यहाँ एक पेशी का अंत हुआ और दूसरी का आरम्भ, या यह कि उसमें इतनी पेशियाँ हैं।

हम पहले कंकाल के मांस का वर्णन करेंगे:—

मांस पेशी (चित्र १२४)

पेशियों का आकार और परिमाण जुदा जुदा होता है। कोई लम्बी होती है और कोई चौड़ी; कोई मोटी होती है और कोई पतली। कुछ पेशियाँ बीच में से मोटी होती हैं और सिरों पर पतली। ऐसे ही चौकोर, तिकोनी पेशियाँ भी होती हैं।

यदि आप पेशी को अच्छी तरह देखें तो ज्ञात होगा कि वह सब जगह से एक ही रंग की नहीं है। कहीं कहीं उसका कुछ भाग श्वेत रंग का है। बहुत सी पेशियों के सिरे श्वेत रंग के होते हैं (चित्र १२४ में ३, ४, ६) यदि आप लाल और श्वेत

भागों को चिमटी से नोच कर देखें तो मालूम होगा कि श्वेत भाग लाल से अधिक मज़बूत है, नोचने से उसमें पतले पतले तार निकल आते हैं। श्वेत भाग सौत्रिक तन्तु से निर्मित है और लाल भाग मांस तन्तु से। पेशी के इस सौत्रिक तन्तु से निर्मित भाग को **कण्डरा** कहते हैं (चित्र १२४ में ६)

सब पेशियों की कण्डराएँ एक जैसी नहीं होतीं। चौड़ी पेशियों की कण्डराएँ श्वेत रङ्ग की पतली परन्तु मज़बूत चादर के समान होती हैं (चित्र १२४ में ११) बहुत सी कण्डराएँ डोरियों के समान होती हैं (चित्र १३१ में २८) कुछ कण्डराएँ मोटी, छोटी और चपटी होती हैं। हाथों और पैरों की अँगुलियों की पेशियों की कण्डराएँ बहुत लम्बी होती हैं। कलाई में और पैर में स्पर्श करने से पतली पतली लकड़ियों के समान जो चीजें मालूम होती हैं वे सब कण्डराएँ हैं (चित्र १२४ में ६, १५, २४) कण्डराएँ अस्थियों या कारटिलेजों से लगी रहती हैं। कहीं कहीं वे मोटी झिल्लियों या त्वचा से भी लगी रहती हैं।

मांस पेशियाँ एक स्थान से आरम्भ होकर एक या एक से अधिक सन्धियों के ऊपर होती हुई दूसरी अस्थि या कारटिलेज से जा लगती हैं। कोहनी विशेषकर दो पेशियों की सहायता से मुड़ती है, इनमें से एक पेशी (चित्र १२४ में ३) स्कन्धास्थि से आरम्भ होती है और नीचे जाकर बहिः प्रकोष्ठास्थि से जुड़ जाती है आरम्भ होने और अन्त होने के स्थानों के बीच में दो सन्धियाँ पड़ती हैं (स्कन्ध सन्धि और कफोणि सन्धि) दूसरी पेशी प्रगंडास्थि के गात्र से आरम्भ होती है (चित्र १२४ में २६, यह पहली पेशी के नीचे रहती है) और

चित्र १२४ की व्याख्या

१. उरः कर्णमूलिका पेशी । २. द्विशिरस्का ।

३. द्विशिरस्का के दो शिर । ४. द्विशिरस्का की कण्डरा ।

५. त्रिशिरस्का । ६. कण्डराएँ ।

७. अंगुष्ठ की पेशियाँ । ८. उरश्छादनी बृहती ।

९. उरश्छादिनी (उरस्या) लघ्वी । १०. उदरच्छदा (उरस्या) बहिःस्था ।

११. न० १० पेशी की कण्डरा । १२. उदरच्छदा मध्यस्था ।

१३. सरल उदरच्छदा ।

१४. छिद्र ; शुक्र प्रणाली इसी में से होकर उदर के भीतर जाती है ; इसी छिद्र में से होकर कभी कभी अंत्र का कुछ भाग निकल कर अण्ड कोष में चला आता है । १५. कण्डरा ।

१६. उरु की एक पेशी जिसके संकोच से एक जाँघ दूसरी जाँघ पर रक्खी जा सकती है । १७. सरला और्वी ।

१८. उरु प्रसारिणी बहिःस्था १९. उरु प्रसारिणी अन्तःस्था ।

२०. ऊर्वन्तः पार्श्विका । २१. ऊरु अन्तरनायनी ।

२२. पिचिंडिका महती । २३. जंघा पुरोगा ।

२४. कण्डरा । २५. अंसाच्छादनी ।

२६. कूर्पर संकोचनी । २७. शिरच्छदा पेशी ।

हमारे शरीर की रचना—भाग १, पाँचवी आवृत्ति—प्लेट २३

चित्र १२४
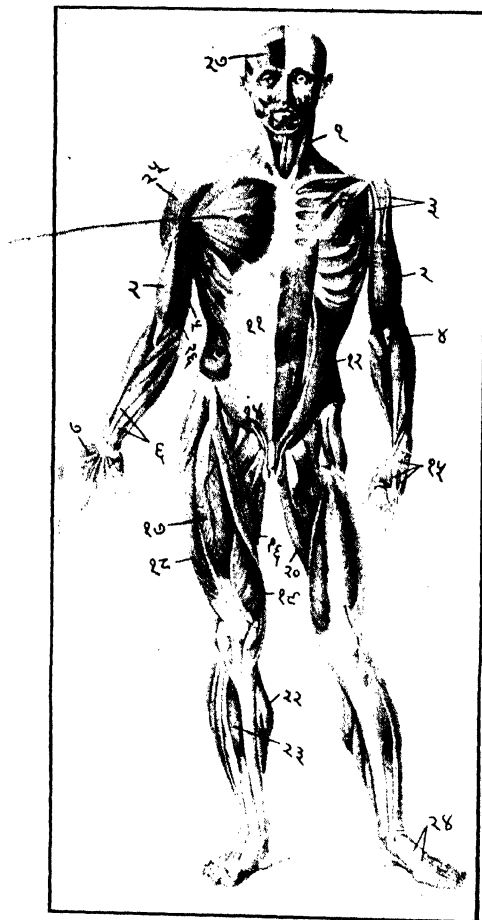
(From Quain's Atlas.)

पृष्ठ १८८ के सम्मुख

हमारे शरीर की रचना— भाग १, पाँचवी आवृत्ति — प्लेट २३ चित्र १२५
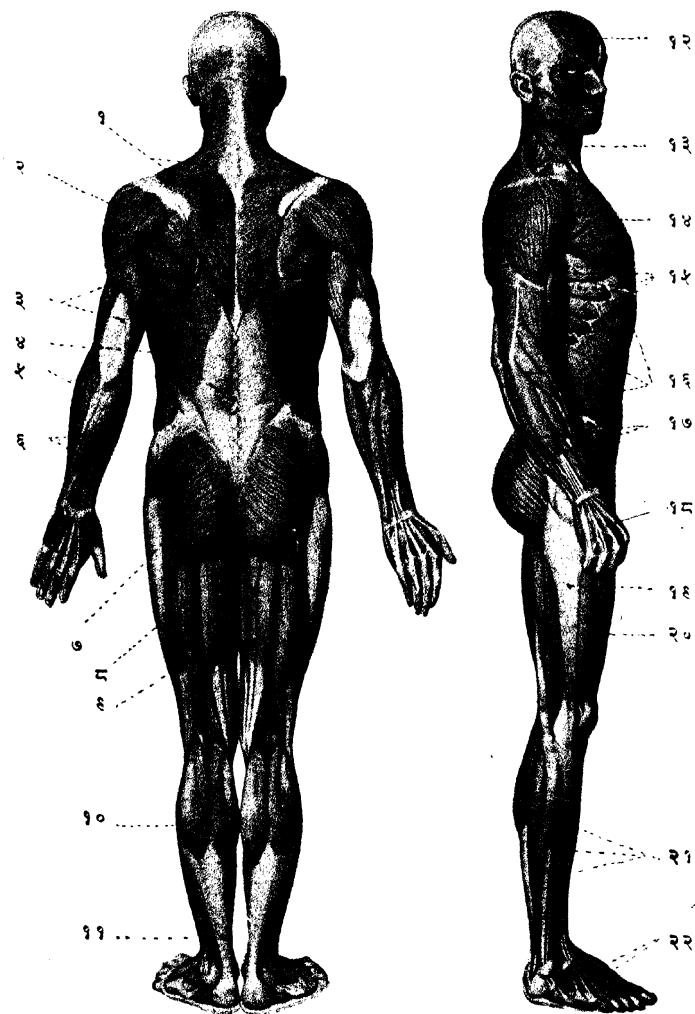
From Tandler's Systematischen Anatomie

अन्तः प्रकोष्ठास्थि से लगी रहती है; यह पेशी केवल एक ही संधि (कोहनी) के ऊपर होकर जाती है । संधियों के ऊपर होकर जाने ही से गतियाँ संभव हैं ।

मांस का विशेष गुण

जब आप कोहनी मोड़ते हैं तो बाहु का सामने का भाग पहले की अपेक्षा अधिक मोटा और सख्त हो जाता है शिर को इधर उधर फिराने से उरःकर्णमूलिका पेशियाँ (चित्र १२४ में १) गरदन में साफ़ दिखाई देने लगती हैं (चित्र १२३) कारण यह है कि वे पहले से अधिक मोटी और कड़ी हो जाती हैं । अंगुलियों को मोड़ने से प्रकोष्ठ की पेशियाँ हिलती हुई दिखाई देती हैं । व्यायाम करते समय शरीर के विविध भागों की पेशियाँ पहले की अपेक्षा मोटी होती हुई और फिर पूर्व दशा को प्राप्त होती हुई देख पड़ती हैं ।

मांस का यह एक विशेष गुण है कि वह सिकुड़ कर मोटा और छोटा हो सकता है और फिर अपनी पूर्व दशा को प्राप्त कर लेता है । उसमें स्थितिस्थापकता भी होती है ।

पेशियों के सिरे अस्थियों, कारटिलेजों, त्वचा वा झिल्लियों से जुड़े रहते हैं । इस कारण जब कोई पेशी सिकुड़ कर छोटी होती है तो वह उस चीज़ को जिससे वह लगी हुई है अपने साथ उठाती है । अस्थियों के बीच में संधियाँ रहने के कारण पेशियों के सिकुड़ने से उनके सिरे एक दूसरे के समीप आ जाते हैं । माथे और चेहरे में पेशियों के सिकुड़ने से त्वचा में झोल पड़ जाते हैं ।

मांस के सिकुड़ने को **संकोच** और फिर फैल कर पूर्व दशा को प्राप्त करने को **प्रसार** कहते हैं ।

मांस पेशियों की संख्या

शरीर में लगभग ५१९ पेशियाँ हैं इनमें से ४५१ के लगभग अस्थियों की गतियों के काम में आती हैं; ये अस्थियों तथा उनके बन्धनों से लगी रहती हैं। शेष ६८ पेशियाँ आँख, स्वरयंत्र, जिह्वा, कण्ठ, तालु, कर्ण में लगी रहती हैं। अधिकतर पेशियाँ युग्म होती हैं—दाहिनी और बाईं:—

प्रत्येक ऊर्ध्व शाखा के सम्बन्ध में	५९
प्रत्येक निम्न " " " "	५९
धड़ " " "	६७
शिर, ग्रीवा " " "	४०
	२२५
दोनों ओर	२२५ × २ = ४५०
वक्षउदरमध्यस्थ पेशी	१
	४५१

तालु	५		
जिह्वा (की विशेष पेशियाँ)	४		
गले " "	५		
स्वरयंत्र " "	५		
बाह्य कर्ण " "	६		
मध्य कर्ण " "	२		
अक्षिगोलक और ऊर्ध्व पलक	७		
	३४		
दोनों ओर	३४ × २ =		६८
जोड़................................			५१९

पंच पेशीशतानि भवन्ति तासां चत्वारि शतानि शाखासु कोष्ठे षट्षष्टिः ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध्वं चतुस्त्रिंशत्
सुश्रुत शारीरस्थान अ० ५ ॥ ४० ॥

सुश्रुत में ५०० पेशियाँ लिखी हैं। पेशियों की संख्या के विषय में अधिक मतभेद नहीं है।

पेशियों की नामकरण विधि

अस्थियों की तरह पेशियों के भी जुदा जुदा नाम होते हैं:—

(१) कुछ पेशियाँ विशिष्ट आकार की होती हैं; आकार के अनुसार उनके नाम रक्खे जाते हैं उदाहरण:—

त्रिकोण पेशी, चतुर्भुज या चतुरस्त्रा पेशी, कृमिवत् पेशी, (केंचुवे या कीड़े की भाँति गोल और लम्बी); जब कई पेशियाँ एक ही आकार की होती हैं (जैसे शरीर में छः चतुरस्त्रा पेशियाँ हैं) तो पेशी का स्थान भी बतलाया जाता है; यदि उस पेशी में कोई और विशेषता हो तो वह भी बतला दी जाती है। जैसे **पाद चतुरस्त्रा पेशी, ऊर्ध्वौष्ठगत चतुरस्त्रा पेशी, कटी चतुरस्त्रा पेशी; ऊरू चतुरस्त्रा।**

(२) कभी कभी पेशी के एक से अधिक भाग होते हैं जो कुछ दूर जा कर आपस में मिल जाते हैं उदाहरण:—**द्विशिरस्का पेशी; त्रिशिरस्का पेशी**। शरीर में दो **द्विशिरस्का** पेशियाँ हैं एक बाहु में दूसरी ऊरु (जाँघ) में इस कारण उनका वर्णन करते समय बाहु या ऊरु शब्द का भी प्रयोग होता है।

(३) देशानुसार भी नाम रक्खे जाते हैं जैसे **अंसाच्छादनी पेशी** (अंश या कन्धे को ढाँकनेवाली पेशी); **उरश्छादनी पेशी** (छाती को ढाँकने वाली पेशी) । उरश्छादनी पेशियाँ हर एक ओर दो दो होती हैं एक बड़ी (**वृहती**) दूसरी छोटी (**लघ्वी**)

उदर की अगली दीवार में मध्यरेखा के दोनों ओर पाँच पाँच पेशियाँ रहती हैं; इनमें से दो तो लम्बाई के रुख लगी हैं और तीन चौड़ाई के रुख। चौड़ाई के रुखवाली पेशियों में से दो कुछ तिर्छी हैं और एक व्यत्यस्त। एक तिर्छी पेशी सबसे बाहर है, दूसरी उसके पीछे। व्यत्यस्त पेशी तिर्छी पेशियों के पीछे है। इन तीनों पेशियों के नाम ये हैं:—

उदरच्छदा बहिःस्था ; उदरच्छदा मध्यस्था ; और **उदरच्छदा अंतःस्था**। लम्बाई के रुख वाली पेशियों में से एक सीधी है; वह ऊपर वक्षोऽस्थि और पसलियों के कारटेलेजों से आरम्भ होती है, और नीचे भगास्थियों से लगी रहती है; इसको **सरल उदरच्छदा** या केवल **सरला** कहते हैं। दूसरी पेशी छोटी है और **सूच्याकार उदरच्छदा** कहलाती है।

(४) जब एक ही आकार की कई पेशियाँ एक जगह हों तो उनके नाम दिशानुसार रक्खे जाते हैं।

आँख के गोले को इधर उधर घुमाने के लिये छः पेशियाँ होती हैं। इनमें से चार पेशियाँ सीधी लगी हैं और दो तिर्छी। सीधी पेशियों को **सरल** और तिर्छी को **वक्र** कहते हैं। **सरल**

रंगीन चित्र १२५ की व्याख्या

१. कशेरु अंस अक्षका पे०

२. अंसाच्छादनी पे०

३. त्रिशिरस्का पे०

४. कटि प्रगण्डिका पे०

५. प्रसारणी पेशियाँ

६. नमनी पेशियाँ

७. नैतम्बिका महती पे०

८. द्विशिरस्का और्वी पे०

९. कण्डरा कल्पा पे०

१०. पिचिण्डिका महती पे०

११. १० की कण्डरा

१२. शिरच्छदा पे०

१३. उरः कर्णमूलिका पे०

१४. उरश्छादनी बृहती पे०

१५. अंस पर्शुका पे०

१६. उदरच्छदा बहिःस्था पे०

१७. प्रसारणी पेशियाँ

१८. कण्डराएँ

१९. जघन जंघा कला

२०. ऊरु प्रसारणी बहिःस्था पे०

२१. टाँग की पेशियाँ

२२. कण्डराएँ

पृष्ठ १९२

हमारे शरीर की रचना—भाग १, प्लेट २४ चित्र १२६
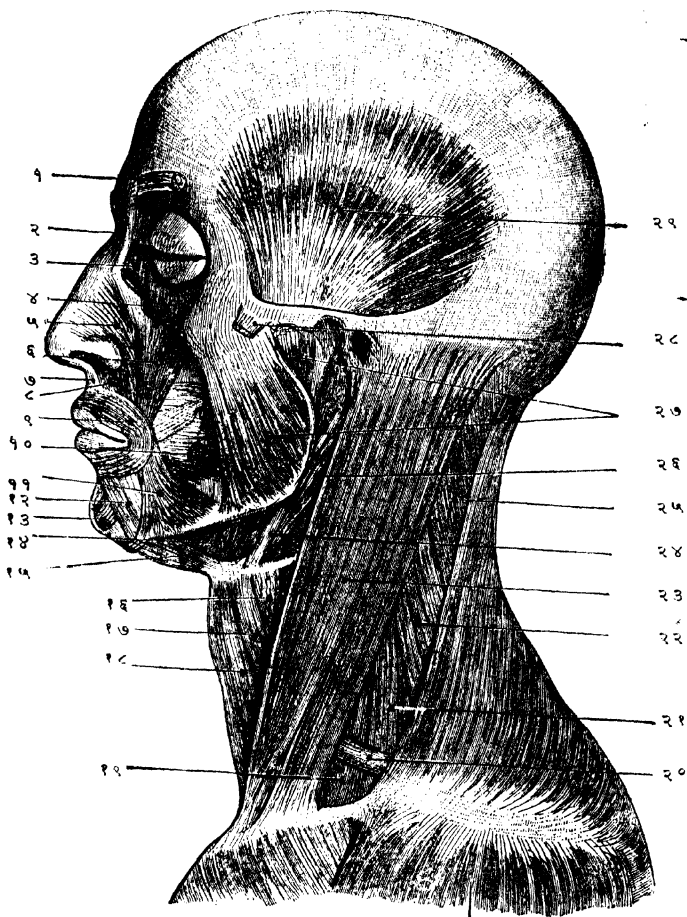
From Morris's Treatise on Anatomy by kind permission

पृष्ठ ११३ के सम्मुख

चित्र १२६ शिर और ग्रीवा की पेशियाँ

१ = भ्रूसंकोचनी पेशी
३,४ = ऊर्ध्वोष्ठगत चतुरस्रा के दो भाग
५,८ = नस्या पेशी के दो भाग
६ = भेदका पेशी
९ = मुखसंकोचनी पेशी
१० = कपोलिका पेशी
११ = सृक्कणी नमनी
१२ = निम्नोष्ठगत चतुरस्रा
१३ = चिबुका पेशी
१४ = हनु कंठिका पेशी
१५,२६ = द्विगुम्फिका के दो भाग
१६ = चुल्लिकंठिका पेशी
१७ = अंसकंठिका पेशी
१८ = उरःकंठिका पेशी
२० = अंसकंठिका पेशी
२२ = अंसोत्कर्षनी पेशी
२३ = उरःकर्णमूलिका पेशी
२४ = शिफाकंठिका पेशी
२६ = द्विगुम्फिका का पिछला भाग
२७ = चर्बणी पेशी
२८ = सृक्कणी उत्कर्षणी
२९ = शङ्खच्छदा पेशी

पेशियों में से एक गोले के ऊपर के भाग में और एक नीचे के भाग में लगी रहती है। शेष दो पेशियों में से एक अन्दर के कोये की ओर और दूसरी बाहर के कोये की ओर है इन सब पेशियों के नाम ये हैं :—**सरलोर्ध्वनेत्रचालनी; सरलाधोनेत्रचालनी; सरलांतर्नेत्रचालनी; सरल बहिर्नेत्रचालनी; वक्रोर्ध्वनेत्रचालनी; वक्राधोनेत्रचालनी।**

(५) बहुत सी पेशियों के नाम उनके कार्य के अनुसार रक्खे जाते हैं। अंग को मोड़ने या झुकाने वाली पेशी **नमनी** पेशी कहलाती है; उसको सीधा करने और फैलाने वाली को **प्रसारणी** पेशी कहते हैं। किसी अंग को मध्य रेखा की ओर ले जानेवाली पेशी को (जैसे बाहु को वक्ष की ओर और एक जाँघ को दूसरे जाँघ की ओर ले जाने वाली को) **अंतरनायनी** या **अंतरवाहिनी;** मध्य रेखा से दूर ले जाने वाली को **बहिर्नायनी** या **बहिर्वाहिनी** कहते हैं। छिद्र को छोटा करने वाली या किसी अंग को सिकोड़ने वाली पेशी को सङ्कोचनी पेशी कहते हैं। जैसे:—ऊरु **प्रसारणी ;** ऊरु **अन्तरनायनी ;** ऊरु **बहिर्नायनी ; मलद्वार सङ्कोचनी ; भ्रू सङ्कोचनी; योनि सङ्कोचनी ; अङ्गुली सङ्कोचनी (मध्यपर्व्विका ; वा अग्र पर्व्विका); कूर्पर नमनी।** इसी प्रकार हथेली को ऊपर करने वाली पेशी **करोत्तानिनी** कहलाती है।

(६) और कारणों से भी नाम पड़ जाते हैं जैसे उरः कर्ण-

मूलिका ; शिफारसनिका । शिफा कंठिका , पेशी के नाम से यह ज्ञात हो जाता है कि वह किन किन अस्थियों और अंगों के बीच में रहती है अर्थात् वह कहाँ से आरम्भ होती है और कहाँ जा कर अन्त होती है ।

पेशी का वर्णन

जब किसी पेशी का वर्णन किया जाता है तो ये बातें बतलाई जाती हैं :—

१=वह पेशी कहाँ से आरम्भ होती है

२=पेशी का अंत कहाँ होता है ।

३=पेशी का क्या कार्य है

४=उस पेशी से कौन नाड़ी सम्बन्ध रखती है । नाड़ी द्वारा ही मस्तिष्क पेशी को गति करने की आज्ञा देता है ।

५=पेशी का आस पास की पेशियों तथा अन्य अंगों से क्या सम्बन्ध है अर्थात् कौन चीज़ पेशी के ऊपर है; कौन उसके नीचे है इत्यादि

उदाहरण:—द्विशिरस्का पेशी (प्रगंड की)

आरम्भ:—लम्बा शिर अंस पीठ के ऊपर के अर्बुद से; छोटा शिर अंस तुण्ड से

अंत:—बहिप्रकोष्ठिकास्थि के अर्बुद पर

कार्यः—कोहिनी मोड़ना तथा हाथ को उत्तान करना

नाड़ी:—ग्रैव पांचवीं वा छठी नाड़ियों के तार

परिस्थिति:—यह एक तर्काकार पेशी है; बीच का भाग मोटा और चपटा होता है । ऊपर का भाग पतला होता

है यहाँ दो शिर होते हैं; नीचे एक शिर होता है; पेशी प्रगंड के अगले भाग में रहती है। ऊपर का भाग उरश्छादनी बृहती तथा अंशाच्छादनी पेशियों से ढका रहता है, नीचे का भाग वसा व त्वचा से ढका रहता है। पेशी का भाग स्कन्ध संधि और प्रगंडास्थि के ऊपर के भाग को ढकता है, नीचे पेशी के पीछे कूर्पर नमनी पेशी, एक नाड़ी वा करोत्तानिनी पेशी रहती है।

इस लघु पुस्तक में हम केवल ऊर्ध्व और अधो शाखाओं की पेशियों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

गतियाँ

हमारे शरीर में दो प्रकार की गतियाँ होती हैं:—

१. वे जो हमारी इच्छानुसार होती हैं और हो सकती हैं जैसे चलना, फिरना, बोलना, हाथ उठाना, भोजन चबाना। ये इच्छाधीन गतियाँ कहलाती हैं।

२. वे जो हमारे बस में नहीं हैं। हम उनको अपनी इच्छा से रोक नहीं सकते और जब वे न होती हों या होनी बन्द हो जायँ तो हम अपनी इच्छा से उनको कर नहीं सकते। हृदय धड़कता रहता है। हम उसको बन्द करना चाहें तो नहीं कर सकते; आँतों में गति होती रहती है जिसके कारण भोजन ऊपर से नीचे को सरकता रहता है, हम अपनी इच्छा से इस गति को नहीं रोक सकते। प्रकाश के प्रभाव से हमारी आँख की पुतली सिकुड़ कर छोटी हो जाती है; अन्धकार के प्रभाव से वह फैल

कर चौड़ी हो जाती है; हम उसको अपनी इच्छा से कदापि छोटा बड़ा नहीं कर सकते।

ये और ऐसी ऐसी और गतियाँ इच्छा के आधीन न होने के कारण **स्वाधीन** या **अनैच्छिक** कही जाती हैं।

दो प्रकार का मांस तंतु

जैसे गतियाँ दो प्रकार की हैं वैसे ही मांस तंतु भी दो प्रकार का कहा जाता है:—

१. अनैच्छिक या स्वाधीन मांस।
२. ऐच्छिक या इच्छाधीन।

अनैच्छिक मांस से हृदय, नलियों, मार्गों और आशयों की दीवारें बनी हुई हैं। ऐच्छिक मांस कंकाल से लगा हुआ है और वह पेशियों में विभक्त है। दोनों प्रकार के मांस में छोटी छोटी सेलें होती हैं। इन सेलों की रचना भिन्न भिन्न प्रकार की होती है।

अनैच्छिक मांस सेलें (चित्र ६ में १३)

ये सेलें लम्बी होती हैं; बीच में से मोटी होती हैं और सिरों पर पतली और नोकीली। उनकी लम्बाई १/४८० से १/५०० इंच तक और मोटाई १/८००० से १/३००० इंच तक होती है। प्रत्येक सेल में अंडाकार या शलाकाकार मींगी होती है। सेलें एक दूसरे से सूक्ष्म सौत्रिक तंतु द्वारा जुड़ी रहती हैं। सेलों से पास पास रहने से मांस की तहें बन जाती हैं। हर एक सेल से वातमंडल

का एक सूक्ष्म तार लगा रहता है; इस तार के द्वारा वातमण्डल (मस्तिष्क) उसको आज्ञा देता रहता है।

सेलों के संकोच और प्रसार से मार्गों और नलियों के छिद्र छोटे बड़े हो सकते हैं। त्वचा में बालों की जड़ों में अनैच्छिक मांस रहता है; इसके संकोच से बाल सीधे खड़े हो जाते हैं। अंत्र की दीवार में अनैच्छिक मांस की दो तहें होती हैं; एक तह में सेलें इस प्रकार रक्खी रहती हैं कि उनकी लम्बाई अंत्र की लम्बाई के रुख रहती है, दूसरी तह सेलों की लम्बाई अंत्र की चौड़ाई के रुख रहती है। पहली तह की सेलों के संकोच से अंत्र की लम्बाई कम हो जाती है, दूसरी तह की सेलों के संकोच से चौड़ाई कम हो जाती है। दोनों तहों की सेलें साथ साथ संकोच करती रहती हैं जिससे यह होता है कि कभी लम्बाई कम होती है और कभी चौड़ाई। अंत्र की गति केंचुवे जैसे कीड़ों की गति के सदृश होने के कारण **कृमिवत् आकुंचन** कहलाती है। इस गति से भोजन धीरे धीरे नीचे को सरकता रहता है और उस पर अंत्र की दीवारों का दबाव पड़ने से पाचक रस भी उसमें भली प्रकार मिल जाते हैं।

अनैच्छिक मांस कहाँ कहाँ पाया जाता है

१. अन्नमार्ग की दीवार में अन्नप्रणाली के नीचे के भाग से ले कर मलद्वार तक (आमाशय और अंत्र में)।

२. टेंटुवे और उसकी शाखाओं की दीवारों में।

३. मूत्रप्रणाली, मूत्राशय और मूत्रमार्गों की दीवारों में।

४. शुक्रप्रणाली, शुक्राशय और प्रोस्टेट ग्रन्थि में।

५. स्त्रियों के विशेष अंगों में (योनि, गर्भाशय, डिम्ब प्रणाली)।

६. रक्त और लसीकावाहिनी नलियों में; हृदय में।
७. पाचक रसों की नलियों में।
८. प्लीहा में।
९. आँख के उपतारा नामक भाग में।
१०. बालों की जड़ों में; पसीने की ग्रन्थियों में; अंडकोष में; और कई ग्रन्थियों में।

ऐच्छिक मांस सेलें (चित्र ६ में १५)

ये सेलें अनैच्छिक सेलों की अपेक्षा अधिक लम्बी होती हैं। वे बेलनाकार होती हैं परन्तु उनके सिरे बीच के भाग से कुछ पतले होते हैं। सेलों की चौड़ाई और मोटाई $\frac{१}{२३००}$ से $\frac{१}{२८०}$ इंच तक (सामान्यतः $\frac{१}{५००}$ इंच) होती है। लम्बाई एक से डेढ़ इंच तक होती है। अणुवीक्षण से देखने पर इन सेलों में मोटाई के रुख धारियाँ दिखाई देती हैं। ये धारियाँ दो प्रकार की होती हैं—श्वेत और काली। श्वेत के पास काली और काली के पास श्वेत धारियाँ रहती हैं। जहाँ श्वेत धारियाँ होती हैं सेल का वह भाग स्वच्छ होता है जहाँ काली धारियाँ हैं वह भाग अस्वच्छ होता है। ऐच्छिक मांस सेलें धारीदार सेलें कहलाती हैं; अनैच्छिक सेलें धारीविहीन। प्रत्येक ऐच्छिक मांस सेल में एक से अधिक मींगियाँ होती हैं।

हृदय का मांस (चित्र ६ में १४)

हृदय का मांस अनैच्छिक है परन्तु उसकी सेलें और सब अंगों की अनैच्छिक सेलों से कुछ भिन्न प्रकार की होती हैं। ये सेलें ऐच्छिक मांस सेलों से इस बात में मिलती हैं कि इनमें धारियाँ होती हैं परन्तु ये धारियाँ बहुत हलकी हलकी होती हैं। ये सेलें लम्बी कम होती हैं और इनमें कहीं कहीं शाखाएँ भी होती हैं जो पास की सेलों की शाखाओं से जुड़ी रहती हैं।

चित्र १२७ की व्याख्या

१ = उर:कर्णमूलिका पेशी; २ = कशेरु अंसग्रसका पेशी

३ = अंसाच्छादनी; ४ = बेलानाकारा बृहती

५ = अंसकशेरुका बृहती ६ = उरश्छादनी बृहती

७ = अंसपर्शुका पेशी ८ = कटिप्रगंडिका(कटिपार्श्व प्रच्छदा)

९ = उदरच्छदा बहि:स्था १० = नैतंबिका मध्यस्था

११ = नैतंबिका महती

चित्र १२८ की व्याख्या

१ = द्विशिरस्का
२ = कूर्परसंकोचनी
३ = प्रगंड बहि: प्रकोष्ठिका
४ = मणिबंध प्रसारणी दीर्घाबहि:स्था
५ = अंगुली प्रसारणी
६ = मणिबंध प्रसारणीह्रस्वाबहि:स्था
७ = अंगुष्ठ बहिर्नायनी दीर्घा
८ = अंगुष्ठ प्रसारणी लघ्वी
९ = करप्रसारणी दीर्घा
१० = करप्रसारणी ह्रस्वा
११ = अंगुष्ठप्रसारणी दीर्घा
१२ = करपृष्ठ करभांतरिका (पहली)
१३ = अंगुली प्रसारणी
१४ = बंधन
१५ = अंत: प्रकोष्ठास्थि
१६ = कनिष्ठाप्रसारणी
१७ = मणिबंधप्रसारणी अंत:स्था
१८ = करसंकोचनीअंत:स्था
१९ = कूर्परप्रसारणी
२० = त्रिशिरस्का

चित्र १२९ की व्याख्या

१ = जान्वस्थि बंधन
२ = पिचिंडिका महती
३ = जंघास्थि
४ = पिचिंडिका लघ्वी
५ = पादांगुष्ठप्रसारणी दीर्घा
६ = बंधन
७ = अस्थ्यांतरिका पेशियाँ
८ = पादांगुलीप्रसारणीलघ्वी
९ = बंधन
१०, १२ = पादविवर्त्तनी
११ = पादांगुलीप्रसारणी दीर्घा
१३ = जंघापुरोगा पेशी
१४ = पादविवर्त्तनी दीर्घा
१५ = जान्वस्थि

From Sparke's Artistic Anatomy—Messrs Baillier Tindall & Cox Lond

प्लेट २५ के सम्मुख

चित्र १२१
प्लेट २६
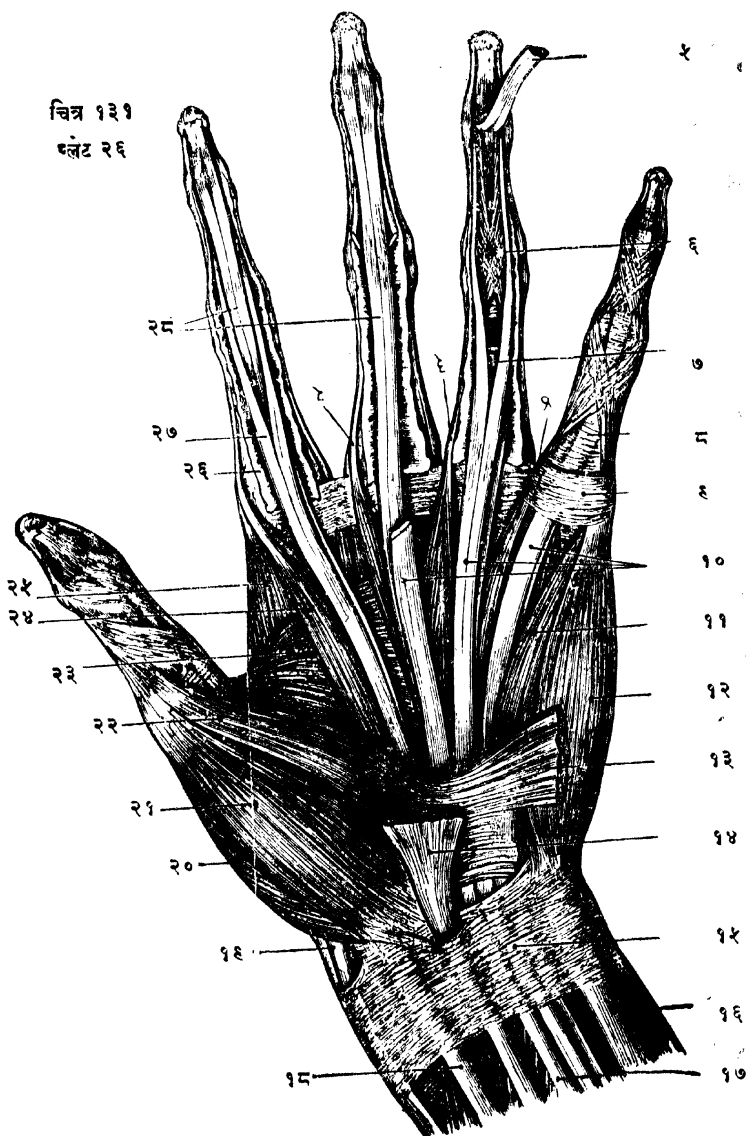
चित्र १३१, हाथ की पेशियाँ

२,३,४ (चित्र में उलटे छपे हैं ; देखो अंगुलियों के बीच में) = दूसरी, तीसरी और चौथी कृमिवत् पेशियाँ

५ = अंगुलीसंकोचनी अग्र पर्विका की कंडरा (कटी हुई)
६ = अंगुलीसंकोचनी मध्य पर्विका की कण्डरा
७ = अंगुलीसंकोचनी अग्र पर्विका की कंडरा (कटी हुई)
८ = कंडरापिधान जिसमें से कंडरा चमक रही है
९ = कंडरा पिधान (मोटा भाग)
१० = अंगुलीसंकोचनी मध्य पर्विका (कंडराएँ)
११ = कनिष्ठासंकोचनी (लघ्वी) पेशी
१२ = कनिष्ठा बहिर्नायनी पेशी
१३ = कारतलिकी पेशी
१४ = करतलसंकोचनी पेशी
१५ = बंधन ; १६ = करसंकोचनी अन्तःस्थापेशी
१७ = अंगुलीसंकोचनी मध्य पर्विका की एक कंडरा
१८ = करसंकोचनी बहिःस्था पेशी
१९ = अङ्गुष्ठ बहिर्नायनी दीर्घा की कंडरा
२० = सन्मुखकारिणी अंगुष्ठगा
२१ = अंगुष्ठ बहिर्नायनी लघ्वी
२२ = अंगुष्ठसंकोचनी लघ्वी
२३ = अंगुष्ठ अंतर्नायनी
२४ = प्रथमा कृमिवत् पेशी
२५ = करपृष्ठ करभांतरिका (पहली) पेशी
२६ = कंडरा पिधान (कटा हुआ)
२७ = अंगुलीसंकोचनी मध्य पर्विका (कंडरा)
२८ = अंगुलीसंकोचनी अग्र पर्विका

ऊर्ध्व शाखा की पेशियाँ (चित्र १२४, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१)

नाम	आरम्भ	अन्त	कार्य्य	नाड़ी
(१) कशेरु अंश अक्षका Trapezius चित्र १२७ में २	१. पश्चादस्थि २. ग्रीवा का वृहत् (कृकाटिका) बन्धन ३. सप्तम ग्रीवा कशेरुका के पश्चात् प्रवर्धन ४. वक्ष के सब कशेरुकाओं के पश्चात प्रवर्धन और उनके पास के बन्धन	१ अक्षक के बाहरी तिहाई भाग का पिछला किनारा २ अंस प्राचीरक का ऊपर का किनारा ३ अंसकूट की मध्य धारा	शिर को पीछे खींचना, शिर को कन्धे की ओर लाना, यदि शिर स्थिर रहै तो पेशी का ऊपर का भाग कन्धे को ऊपर उठाता है; बीच के और नीचे के भाग से स्कन्धास्थि घूमती है	११वीं मस्तिष्क नाड़ी; वा ३,४, ग्रैवेयी नाड़ियों की शाखायें
(२) कटि प्रगण्डिका Latissimus dorsi चित्र १२७ में ८	(१) नीचे के ६ वक्ष कशेरुका वा सब कटि कशेरुका वा ऊपर के त्रिक कशे-	प्रगंडास्थि का पिंड-कांतरिका परिखा	प्रगण्ड को नीचे लाना, पीछे खींचना और मध्य रेखा की ओर घुमाना	ग्रैवेयी ६,७,८ नाड़ीकीशाखाएं

	रुका के पश्चात् प्रवर्धनों वा उप प्रवर्धन बन्धनों से; (२) जघन चूड़ा से; (३) नीचे के चार पर्शुकाओं और (४) कभी कभी स्कन्धास्थि के नीचे के कोने से			
(३) अंसकशेरुका बृहती Rhomboideus major चित्र १२७ में ५	२, ३, ४, ५ वें वक्ष कशेरुका के पश्चात् प्रवर्धन और बंधन	स्कन्धास्थि की वंशानुगा धारा	स्कन्धास्थि को पीछे खींचना और घुमाना	५वीं ग्रैवेयी नाड़ी की १ शाखा
(४) अंस कशेरुका लध्वी Rhomboideus minor	ग्रीवा का वृहत् बन्धन, ७वें ग्रैवेयी कशेरुका और प्रथम	स्कन्धास्थि की वंशानुगा धारा	,,	,,

	वक्ष कशेरुका के पश्चात् प्रवर्धन			
(५) अंसोत्कर्षणी Levator scapulæ चित्र १२६ में २२	ग्रीवा के ऊपर के ४ कशेरुका के पार्श्व प्रवर्धन	स्कन्धास्थि की वंशानुगा धारा	स्कन्धास्थि के ऊपर के कोनेको ऊपरखींचती है	३, ४, ५ ग्रैवेयी नाड़ियाँ
(६) उरस्या बृहती Pectoralis major चित्र १२३ में ८	(१) अक्षकास्थि के मध्य भाग का अगला पृष्ठ (२) उरोस्थि (३) ऊपर की ६ पर्शुकाओं के कार्टिलेज (४) उदरच्छदाबहिःस्था की कंडरा	प्रगंडास्थि की द्विशिरस्का परिखा का बाह्य ओष्ठ	प्रगंड को नीचे लाना, वक्ष की ओर नीचे लाना और वक्ष की ओर घुमाना। यदि प्रगंड स्थिर रहे तो वह पर्शुकाओं को ऊपर उठाकर वक्ष की समाई को बढ़ा सकती है	५, ६, ७, ८ ग्रैवेयी और १ वाक्षसी नाड़ी की शाखायें
(७) उरस्यालघ्वी Pectoralis minor चित्र १२३ में ९	३, ४, ५ पर्शुकाओं के कार्टिलेज	अंस तुण्ड की मध्य धारा और ऊपर का पृष्ठ	कन्धे को नीचे और आगे को लाना। यदि कन्धा स्थिर रहे	७, ८ ग्रैवेयी और १ वाक्षसी नाड़ी

			तो पर्शुकाओं को ऊपर उठा सकती है	
(८) अक्षकाधरा Subclavius	पहली पर्शुका और उसके कार्टिलेज का जोड़	अक्षकास्थि के अधोतल की परिखा	अक्षक को नीचे और सामने की ओर लाना	५, ६ ग्रैवेयी नाड़ियोंकी शाखा
(९) अंस पर्शुका Serratus anterior चित्र १२७ में ७	ऊपर की ८ पर्शुकाओं से ८ रेखाओं द्वारा	अंसस्थि का ऊर्ध्व कोण, वंशानुगा धारा और अधो कोण का उदरतल	स्कन्धास्थि को आगे को लाना (धक्का देने में या घूंसा मारने में) इत्यादि	दीर्घा उरस्या नाड़ी (५, ६, ७ ग्रैवेयी)

स्कन्ध सम्बन्धी पेशियाँ

(१०) अंसाच्छादनी Deltoideus चित्र १२७ में ३	(१) अक्षककी अगली धारा का बाहरी एक तिहाई भाग	प्रगंडास्थि का अंसाबुर्द	प्रगंड को वक्ष से बाहर की ओर खींचना, अगला भाग प्रगंड को	कक्षीया नाड़ी (५, ६ ग्रैवेयी)

	(२) अंसकूट (३) अंस प्राचरीक का नीचे का ओष्ठ		मोड़ता है और अन्दर की ओर घुमाता है; पिछला भाग पीछे की ओर खींचता है और बाहर की ओर घुमाता है	
(११) अंसाधरा Subscapularis	अंसखात्	लघुपिंडक	प्रगंड को मध्य रेखा की ओर लाता है और अन्दर को घुमाता है	ऊपर की और नीचेकी अंसाधरा नाड़ियाँ
(१२)प्राचीरकोर्ध्वगा Supraspinatus	प्राचीरकोर्ध्वखात	महा पिंडक का ऊपर का भाग और स्कन्ध कोष	प्रगंड को बाहर ले जाना	अंसोर्ध्वगा नाड़ी (ग्रैवेयी ५, ६)
(१३)प्राचीरकाधोगा Infraspinatus	प्राचीरकाधोखात	महापिंडक का बीच का भाग और स्कन्ध कोष	बाहु को सीधा करना और बाहर की ओर घुमाना	अंसोर्ध्वगा नाड़ी (ग्रैवेयी ५,६)
(१४) बेलनालध्वी Teres minor	अंसास्थि की कक्षानुगा धारा का	महापिंडक का नीचे का भाग और स्कन्ध	बाहु को बाहर की ओर घुमाना, वक्ष की	कक्षीया नाड़ी (ग्रैवेयी ५,६)

चित्र १२७ में १३	पृष्ठतल	कोष	ओर ले जाना और फैलाना	
(१५) बेलनावृहती Teres major. चित्र १२७ में ४	अंस पृष्ठ निम्न कोण के पास से	पिंडकान्तरिका परिखा का बाह्य ओष्ठ	बाहु को फैलाना और वक्ष की ओर ले जाना और अन्दर को घुमाना	अंसाधरा नाड़ी

बाहु की पेशियाँ

(१६) तुण्डप्रगंडिका Coracobrachialis.	अंस तुण्ड की नोक	प्रगंडास्थि की मध्य धारा का मध्य	बाहु को मोड़ना और उसको वक्ष की ओर ले जाना	६, ७ ग्रै०
(१७) द्विशिरस्का Biceps brachii चित्र १२४ में २,३	छोटा शिर:—अंस तुण्ड से जहाँ से तुण्ड प्रगंडिका का भी आरंभ होता है लम्बा शिर:—अंश पीठ के ऊपर एक उभार से	बहि प्रकोष्ठास्थि के अर्बुद का पिछला भाग	प्रकोष्ठ को उत्तान करना कोहनी को मोड़ना कन्धे को मोड़ना	६, ७ ग्रै०
(१८) कूर्पर संकोचनी Brachialis	प्रगंडास्थि के अगले पृष्ठ का नीचे	अन्तः प्रकोष्ठास्थि का चंचू प्रवर्धन	कोहनी का मोड़ना	५, ६ ग्रै०

चित्र १२४ में २६	का दो तिहाई भाग			
(१९) त्रिशिरस्का Triceps brachii चित्र १२७ में १२ १२४ में ५	लम्बा शिर:—अंश पीठ के नीचे का अर्बुद बाह्य शिर :—प्रगंडास्थि की बाह्य धारा नाड़ी परिखा के ऊपर अन्त: शिर:—प्रगंडास्थि का पिछला पृष्ठ नाड़ी परिखा के नीचे	कूर्पर कूट का पिछला भाग	प्रकोष्ठ को फैलाना	६, ७, ८ ग्रै० बहिः प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा

प्रकोष्ठ की पेशियाँ

(२०) अधस्तल-कारिणी Pronator teres	१ प्रगंडीयशिर :—प्रगंडास्थि का अन्तरार्बुद २ अन्त: प्रकोष्ठिका शिर:—चंचु प्रव-	बहिप्रकोष्ठिकास्थि के बहिः पृष्ठ का मध्य	प्रकोष्ठ को उन्मुख करना और मोड़ना	६ ग्रै० मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी

	धन की मध्य धारा दोनों शिरों के बीच में मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी रहती है	भाग		द्वारा
(२१) कर संकोचनी बहि:स्था Flexor carpi-radialis चित्र १३१ में १८	प्रगंडास्थि का अन्तरार्बुद	दूसरी करभास्थि के ऊपर के सिरे का अगला भाग:—कुछ भाग तीसरी करभास्थि से भी लगता है	कलाई को मोड़ना हाथ को बाहर को ले जाना	६ ग्रै० मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(२२) करतल सङ्कोचनी Palmaris longus चित्र १३१ में १४	प्रगंडास्थि का अन्तरार्बुद	कलाई का व्यत्यस्त बन्धन और हस्ततल की कंडरा कला	कलाई को मोड़ना और हस्ततल की कला को तानना	६ ग्रै० मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(२३) कर सङ्कोचनी अन्त:स्था Flexor carpi ulnaris	प्रगंडास्थि का अन्तरार्बुद:—कूर्पर कूट का मध्य भाग	मटराकारास्थि	कलाई को मोड़ना और हाथ को अन्दर को ले जाना	८ ग्रै० १ वास० अन्त: प्रकोष्ठका नाड़ी द्वारा

चित्र १३१ में १६ (२४) हस्तांगुली संकोचनी मध्य पर्विका अ. ग. Flexor digitorum sublimis चित्र १३१ में १०, २७ चित्र १३६, १३५	अन्तरार्बुद; व कूर्परकूट की मध्य धारा ; बहि: प्रकोष्ठास्थि की अगली-धारा का ऊपर का ⅓ भाग	चार कंडरायें होती हैं; कलाई के पास मध्यमा और अनामिका की कंडरायें प्रदेशनी और कनिष्ठा की कंडराओं के सामने रहती हैं। हर एक कंडरा अंगुली के सौत्रिक कोष में रहती है और पहले पोर्वे के सामने कंडरा के दो भाग हो जाते हैं जिनके बीच में हो कर हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्विका की कंडरा गुजरती है; फिर यह दोनों भाग मिल जाते हैं और आगे	बीच के और पहले पोरवे को मोड़ना:— कलाई को मोड़ना	७,८ ग्रै० १ वा० मध्य प्रकोष्ठिका द्वारा

(२५) हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्विका Flexor digitorum profundus चित्र १३१ में २८,	अन्तः प्रकोष्ठिकास्थि के अगले और मध्य पृष्ठ के $\frac{2}{3}$ भाग से वा अस्थियांतरिका कला से	चलकर दूसरे पोरवे के किनारों से लग जाते हैं ४ कंडरायें होती हैं जो अन्तिम पोरवों से लगती हैं	अन्तिम पोरवों और कलाई को मोड़ना	८ ग्रै० १ वा० अन्तः प्रकोष्ठिका द्वारा
(२६) अंगुष्ठ संकोचनी दीर्घा Flexor pollicis longus	बहिः प्रकोष्ठास्थि के अगले पृष्ठ का बीच $\frac{3}{4}$ भाग और अस्थ्यांतरिका कला; कभी कभी चंचू प्रवर्धन	अंगुष्ठ के दूसरे पोर्वे का ऊपर का सिरा	पोर्वों को और कलाई को मोड़ना	ग्रै० ७,८; वा० १ अग्र अस्थ्यान्तरिका नाड़ी द्वारा
(२७) प्रकोष्ठ चतुरस्रा Pronator quadratus	अन्तः प्रकोष्ठास्थि के अगले पृष्ठ का नीचे का $\frac{1}{4}$ भाग और मध्य धारा	बहिः प्रकोष्ठास्थि का सामने का नीचे का $\frac{1}{4}$ भाग	प्रकोष्ठ को उन्मुख करना	ग्रै ७,८; वा० १ अग्र अस्थ्यान्तरिका नाड़ी द्वारा

प्रकोष्ठ के पिछले भाग की पेशियाँ

(२८) प्रगंड बहिः प्रकोष्ठिका Brachioradialis चित्र १२८ में ३	प्रगंडास्थि के बाह्य आर्बुदिक रेखा का ऊपरी $\frac{2}{3}$ भाग और पेशियान्तरिक कला	बहिः प्रकोष्ठास्थि के नीचे के सिरे का बाह्य पृष्ठ	कोहनी को मोड़ना	५, ६ ग्रै० बहि प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(२९) मणि बन्ध प्रसारिणी बहिस्था दीर्घा Extensor carpiradialis longus चित्र १२८ में ४ चित्र १३०	प्रगंडास्थि की बाह्य आर्बुदिक रेखा के नीचे का $\frac{1}{3}$ भाग	दूसरी करभास्थि के ऊपर के सिरे से पीछे की ओर	कलाई को सीधा करना (पीछे को मोड़ना) और हाथ को बाहर लाना	६, ७ ग्रै० गम्भीर बहि प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(३०) मणि बन्ध प्रसारणी बहिस्था ह्रस्वा Extensor carpi radialis brevis चित्र १२८ में ६, चित्र १३०	प्रगंडास्थि के बाह्य अर्बुद का अगला पृष्ठ और कूर्पर का बाह्य बन्धन	तीसरी करभास्थि का अधोभाग	पहुँचे या कलाई को फैलाना (पीछे को मोड़ना)	६, ७ ग्रै० गम्भीर बहि प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा

(३१) अंगुली प्रसारणी Extensor digitorum communis चित्र १२८ में ५	प्रगंडास्थि का वाह्य अर्बुद	दूसरी और तीसरी अंगुल्यस्थि का अधोभाग	अंगुल्यस्थियों को पीछे को मोड़ना; पहुँचे को मोड़ना अंगुलियों को फैलाते समय उनको एक दूसरे से अलग अलग करना	७ ग्रै० गम्भीर बहिः प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(३२) कनिष्ठा प्रसारणी Extensor digiti quintiproprius चित्र १२८ में १६	बाह्यार्बुद	अंगुली प्रसारणी की कनिष्ठा शाखा से मिलकर ५ वीं अंगुली की पहली अंगुल्यस्थि	कनिष्ठा को पीछे की ओर मोड़ना	७ ग्रै० गम्भीर बहिः प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(३३) मणिबन्ध प्रसारिणी अन्तस्था Extensor carpi ulnaris चित्र १२८ में १७; चित्र १३०	बाह्यार्बुद	५ वीं करभास्थि का अधोभाग	पौंहचे को पीछे की तरफ़ मोड़ना हाथ को अन्दर को लाना	७ ग्रै० ,,
(३४) कूर्परप्रसारणी Anconeus चित्र १२८ में १९	बाह्यार्बुद का पीछे का भाग	कूर्परकूट और अन्तः प्रकोष्ठास्थि	कोहनी को फैलाना	७,८ ग्रै० बहिः प्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा

(३५) करोत्तानिनी Supinator	प्रगंडास्थि का बाह्यार्बुद; कूर्पर बन्ध का बाह्य बन्धन; अन्त:प्रकोष्ठास्थि के ऊपर के भाग की एक रेखा	बहिः प्रकोष्ठास्थि के ऊपरी $\frac{1}{3}$ भाग के पिछले और अगले और बाहरी पृष्ठ	बहिः प्रकोष्ठास्थि को घुमाकर हथेली को पृथ्वी की ओर अर्थात् उत्तान करना	५,६ ग्रै० गम्भीर बहिःप्रकोष्ठिका नाड़ी द्वारा
(३६) अंगुष्ठ बहिर्नायनी दीर्घा Abductor pollicis longus चित्र १२८ में ७	अन्त: प्रकोष्ठास्थि के पिछले भाग का बाहरी भाग; बहिः-प्रकोष्ठास्थि के पिछले भाग का बीच का $\frac{1}{3}$ भाग; अस्थ्यान्तरिकाकला	पहली करभास्थि के अधोभाग का पिछला भाग	अंगुष्ठ की करभास्थि को हस्ततल से परे ले जाना; हाथ को फैलाना और बाहर लेजाना	ग्रै० ६ पश्चात् अस्थ्यान्तरिका नाड़ी
(३७) अंगुष्ठ प्रसारणीह्रस्वा Extensor pollicis brevis चित्र १२८ में ८, चित्र १३०	बहिः प्रकोष्ठास्थि का पिछला नीचे का $\frac{1}{3}$ भाग	अंगुष्ठ की पहली अंगुल्यस्थि के अधोभाग का पिछला भाग	पहली अंगुल्यस्थि को फैलाता है (पीछे की ओर ले जाता है) हाथ को फैलाना और बाहर की ओर लाना	ग्रै० ६, ७, ८ पश्चात् अस्थ्यान्तरिक नाड़ी द्वारा

(३८) अंगुष्ठ प्रसारणीदीर्घा Extensor pollicis longus चित्र १२८ में १?	अन्तः प्रकोष्ठास्थि के पीछे का $\frac{1}{3}$ भाग और अस्थ्यान्तरिका कला	अंगुष्ठ की दूसरी अंगुल्यस्थि का अधोभाग	अंगुल्यस्थियों को फैलाना; हाथ को फैलाना और बाहर लाना	,,
(३९) मध्यमा प्रसारणी विशेषा Extensor indicis proprius	अन्तः प्रकोष्ठास्थि के पिछले नीचे के $\frac{1}{3}$ भाग के ऊपर	इसकी कंडरा अंगुली प्रसारणि की उस कंडरा से जो प्रदेशनी को जाती है जुड़ जाती है	प्रदेशनी को और हाथ को फैलाना (पीछे की ओर मोड़ना)	,,
हस्त की पेशियाँ				
(४०) अंगुष्ठ बहिर्नायनी ह्रस्वा Abductor pollicis brevis चित्र१३१ में २१	नौकास्थि का अर्बुद बृहत् बहुकोण की रेखा; व्यतस्तमणिबन्ध बन्धन	अंगुष्ठ की पहली अंगुल्यस्थि का अधोभाग	पहले पोर्वे को बाहर ले जाना	६,७ ग्रै० मध्य प्रकोष्ठिका द्वारा
(४१) अंगुष्ठ संको-	उपरितन भाग;	अंगुष्ठ की पहली अंगु-	पहले पोर्वे को और	६,७ ग्रै०

चनी ह्रस्वा Flexor pollicis brevis चित्र १३१ में २२	व्यत्यस्त मणिबन्ध बन्धन और बहु कोण की रेखा गम्भीर भागः— पहली करभास्थि का अधोभाग	ल्यस्थि (अंगुष्ठ बहिर्नायनी ह्रस्वा के साथ पहली अंगुल्यस्थि (अंगुष्ठ अन्तरनायनी के साथ)	करभास्थि को मोड़ना	८ ग्रै० अन्तः प्रकोष्ठिकानाड़ी द्वारा
(४२) सन्मुखकारिणी अंगुष्ठगा Opponens pollicis चित्र १३१ में २०	व्यतस्त बन्धन, बहुकोण की रेखा	अंगुष्ठ की करभास्थि का अगला पृष्ठ और बाहरी धारा	करभास्थि को मोड़ना और उसको अन्दर की ओर घुमाना	६, ७ ग्रै० मध्य प्रकोष्ठिका द्वारा
(४३) अंगुष्ठ अन्तरनायनी Adductor pollicis चित्र १३१ में २३	तिरछा भागः— दोनों बहुकोण के अगले पृष्ठ; शिरोधारी; २, ३, ४ करभास्थियों के अधोभाग अथवा इन अस्थियों के बन्धन	अङ्गुष्ठ की प्रथम अङ्गुल्यस्थि का अधोभाग- अन्दर की ओर इस पेशी की कण्डरा में कण्डरा चणक अस्थियाँ रहती हैं	अंगुष्ठ को हस्ततल की ओर खींचना	८ ग्रै० अन्त प्रकोष्ठिका द्वारा

	व्यत्यस्त भाग :— तीसरी करभास्थि का अगला पृष्ठ			
(४४) हस्ततली का ह्रस्वा— Palmaris brevis	व्यतस्त बन्धन	हस्ततल की कनिष्ठानुगाधारा की त्वचा	त्वचा में झुर्रियाँ डालना	८ ग्रै० अन्तः प्रकोष्ठिका द्वारा
(४५) कनिष्ठा बहिर्नायिनी Abductor digiti quinti चित्र १३१ में १२	मटराकारास्थि;मणिबन्ध संकोचनी अन्तःस्था की कंडरा	कनिष्ठा के पहले पोर्वे का अधोभाग	पहले पोर्वे को बाहर ले जाना	,,
(४६) कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा Flexor digiti quinti brevis चित्र १३१ में ११	व्यत्यस्त बन्धन; वक्रास्थि का बढ़ा हुआ भाग	पहली अंगुल्यस्थि की कनिष्ठानुगाधारा	कनिष्ठा के पहले पोर्वे को मोड़ना और उस को बाहर लाना	८ ग्रै० अन्तः प्रकोष्ठिका द्वारा
(४७) सन्मुख कारिणी कनिष्ठागा Opponens digiti quinti	वक्रास्थि और व्यत्यस्त बन्धन	५वीं करभास्थि की कनिष्ठानुगाधारा	५वीं करभास्थि को सामने लाता है जिस से हस्ततल गहरा हो जाता है	८ ग्रै० अन्तः प्रकोष्ठिका नाड़ी

४८—५१ कृमिका (चित्र १३१ में २४, २, ३, ४; चित्र १३४) Lumbricales

हाथ में चार पेशियाँ छोटी छोटी और केंचवे के सदृश गोल सी होती हैं इनको कृमिवत पेशियाँ या कृमिका कहते हैं।

आरम्भः—हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्विका की कंडराओं से इस प्रकारः—पहली और दूसरी उन कंडराओं की बाह्य धारा और अगले पृष्ठ से जो कि प्रदेशिनी और मध्यमा को जाती हैं; तीसरी, मध्यमा और तर्जनी की कंडराओं से; चौथी, तर्जनी और कनिष्ठा की समीपस्थ धाराओं से।

अन्तः—हर एक अंगुली के पृष्ठ पर अंगुली प्रसारणी पेशी की कंडरा फैली रहती है। कृमिका की कंडरा का अन्त अपनी अंगुली की इस कंडरा में ही होता है।

कार्य्यः—पहले पोत्रों को मोड़ना और दूसरे और तीसरे पोवों को सीधा करना।

अस्थ्यांतरिका पेशियाँ Interossei (चित्र १३८,१३०)

यह दो प्रकार की हैं :—(१) पृष्ठ अस्थ्यांतरिका जो हाथ के पृष्ठ या पिछले भाग में हैं।

(२) करतलीय अस्थ्यांतरिका जो हथेली में हैं।

५१—५४ पृष्ठ अस्थ्यांतरिका (चित्र १३०,१३८)

यह चार हैं और पत्राकार होती हैं

प्रारम्भः—पहली पेशी प्रथमा और द्वितीया; दूसरी पेशी द्वितीया और तृतीया; तीसरी तृतीया और चतुर्थी; चौथी चतुर्थी और पंचमी करभास्थियों के बीच में रहती हैं। इन पेशियों का आरम्भ इन पेशियों के सन्निकृष्ट धाराओं से होता है।

अन्तः—पहली करभास्थि का अधो भाग और अंगुली प्रसारणी की कंडरा इस प्रकारः—

प्रथमा—प्रदेशिनी की पहली अंगुल्यस्थि का बाह्य भाग।

द्वितीया—मध्यमा की पहिली अंगुल्यस्थि का अन्तः भाग।

तृतीयाः—मध्यमा की पहली अंगुल्यस्थि का अन्तः भाग।

चतुर्थीः—तर्जनी की पहली अंगुल्यस्थि का अन्तः भाग।

कार्य्यः—यदि मध्यमा में से एक कल्पित रेखा खींची जावे तो इन पेशियों का कार्य्य अंगुलियों को इस रेखा से परे ले जाना है (१३२, १३३)

चित्र १३३
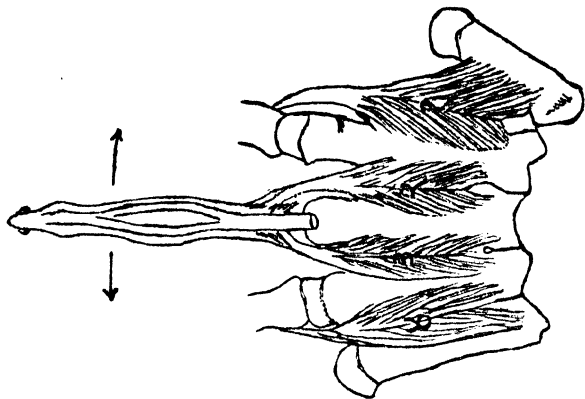
चित्र १३२
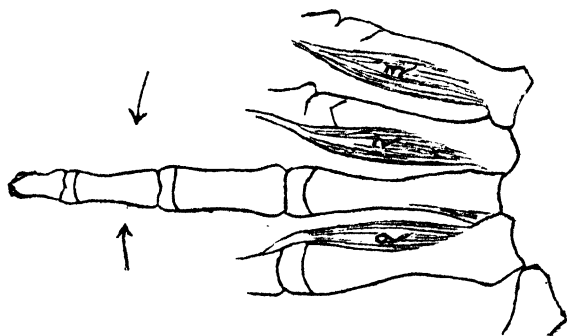
५५—५७ करतलीय अस्थ्यांतरिका पेशियाँ

यह तीन हैं और करभास्थियों के अगले पृष्ठ से लगी होती हैं ।

आरम्भः—प्रथमा, प्रदेशिनी की करभास्थि के अन्तः भाग से ।

द्वितीया, तर्जनी की करभास्थि के बाह्य भाग से ।

तृतीया, कनिष्ठा की करभास्थि के बाह्य भाग से ।

अन्तः—जिस अङ्गुली से आरम्भ होती है उसी की पहली अङ्गुल्यस्थि के अधोभाग और अङ्गुली प्रसारणी की कंडरा में उसका अन्त होता है ।

कार्य्यः—अङ्गुलियों को मध्यमा में से होती हुई कल्पित रेखा की ओर लाना ।

नाड़ीः—प्रै० अन्तः प्रकोष्ठिका द्वारा

ऊर्ध्व शाखा की ४८ पेशियों का वर्णन समाप्त हुआ; यदि अङ्गुष्ठ संकोचनी ह्रस्वा के दोनों भागों को अलग अलग लिखें तो ४९ पेशियाँ होती हैं ।
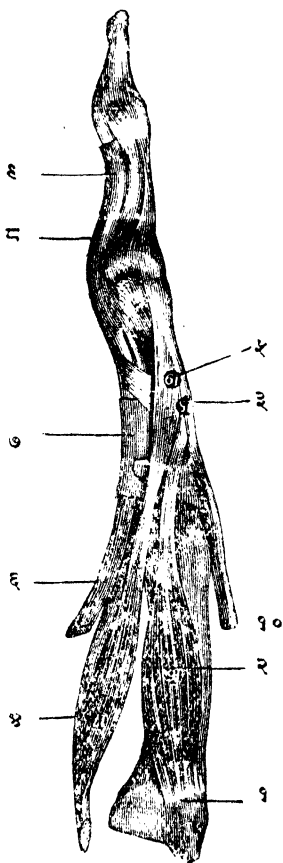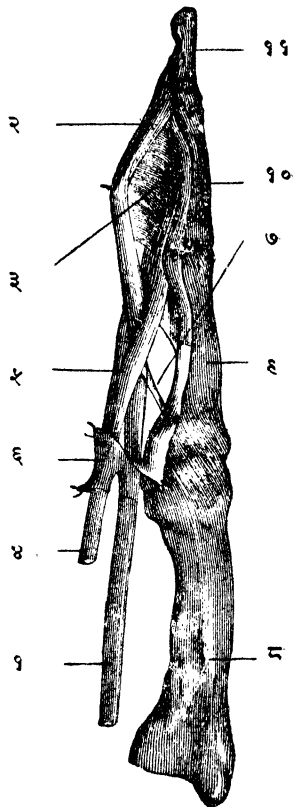
From Sparke's Artistic Anatomy (Bailliere Tindall & Cox. London)

चित्र १३४, १३५ की व्याख्या

इन चित्रों में यह दर्शाया गया है कि कृमिकाओं और अस्थ्यांतरिकाओं का अन्त कैसे होता है; और हस्तांगुली संकोचनी मध्य पर्व्विका के दो भागों के बीच में से हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्व्विका कैसे निकलती है और ये दोनों कंडराएँ किस प्रकार पोवों से लगी रहती हैं।

चित्र १३४

१ = करभास्थि
२ = पृष्ठ अस्थ्यांतरिका का आरंभ
३ = नं० २ का अन्त
४ = कृमिका
५ = उसका अन्त
१० = अङ्गुली प्रसारणी की कण्डरा जिसमें १,२ का अन्त होता है
६, ८, ९ = हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्व्विका
७ = पिधान

चित्र १३५

१ = हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्व्विका की कण्डरा
२ = उसका अन्त
३ = बंधन
४ = हस्तांगुली संकोचनी मध्य पर्व्विका
५ = नं० ४ के दो भाग
६ = पिधान
७ = बंधन
८ = करभास्थि
९ = पहली अंगुलयस्थि
१० = बीच की ,,
११ = अन्तिम या अग्र अंगुल्यस्थि

चित्र १३८ की व्याख्या

१ = अङ्गुष्ठ बहिर्नायनी दीर्घा ८ = मणिबंध प्रसारणी बहिस्था दीर्घा
१३,१४ = प्रथम पृष्ठ अस्थ्यांतरिका १५ = मध्यमा प्रसारणी विशेषा
१९ = कृमिका का अन्त।
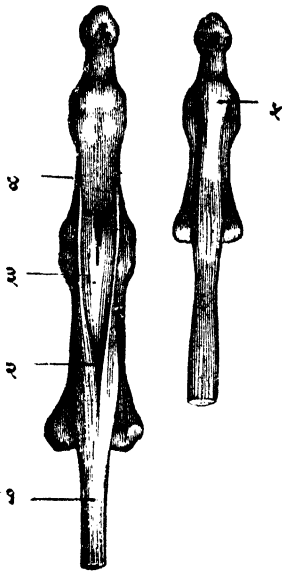
चित्र १३६ चित्र १३७
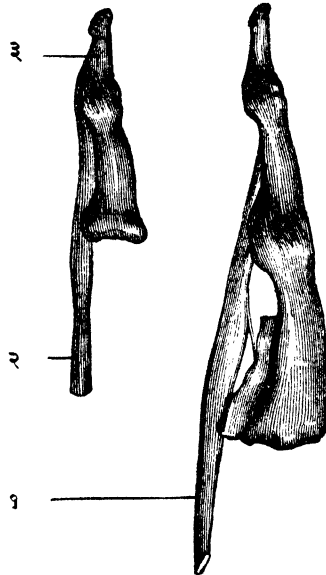
From Sparke's Artistic Anatomy (Bailliere, Tindall & Cox.)

चित्र १३६

१ = हस्तांगुली संकोचनी मध्य पर्व्विका की कंडरा
२ = उसके दो भाग
४ = यह दो भाग बीच के पोर्वे के दोनों ओर जाकर लगते हैं
३ = हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्व्विका
५ = जो ३

चित्र १३७

१. २, हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्व्विका की कंडरा— इसका अन्त सब से अगले पोर्वे के अगले पृष्ठ पर होता है
३ = अगला पोर्वा (या अङ्गुल्यस्थि)
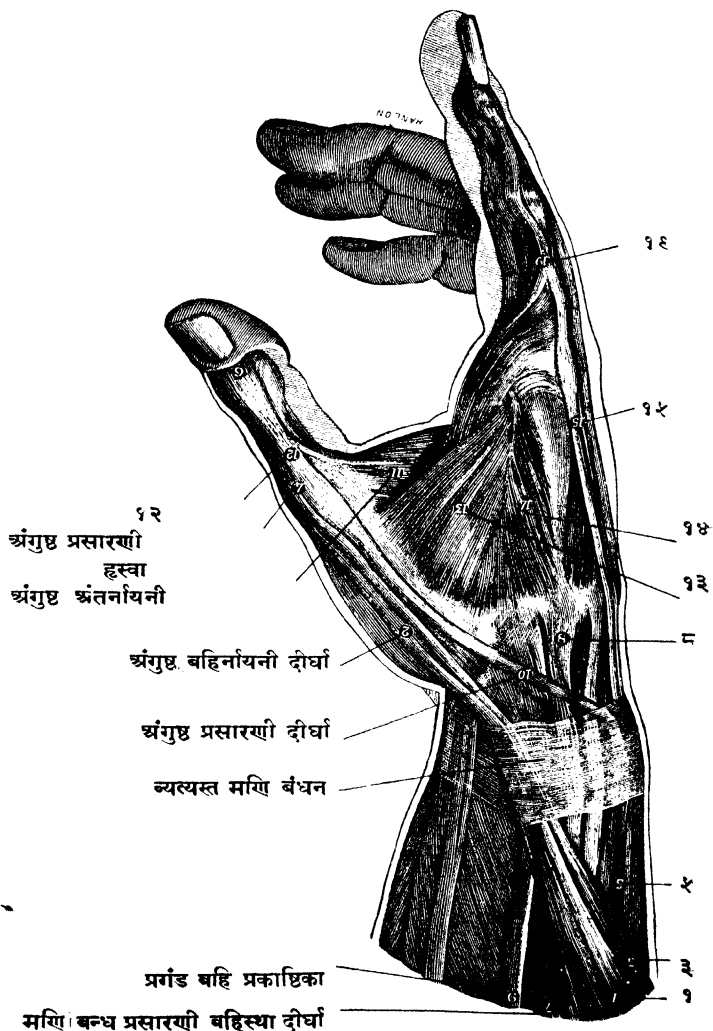
Reduced from Sparke's Artistic anafomy (Messrs Bailliere, Tindall & Cox London.)

चित्र १३६
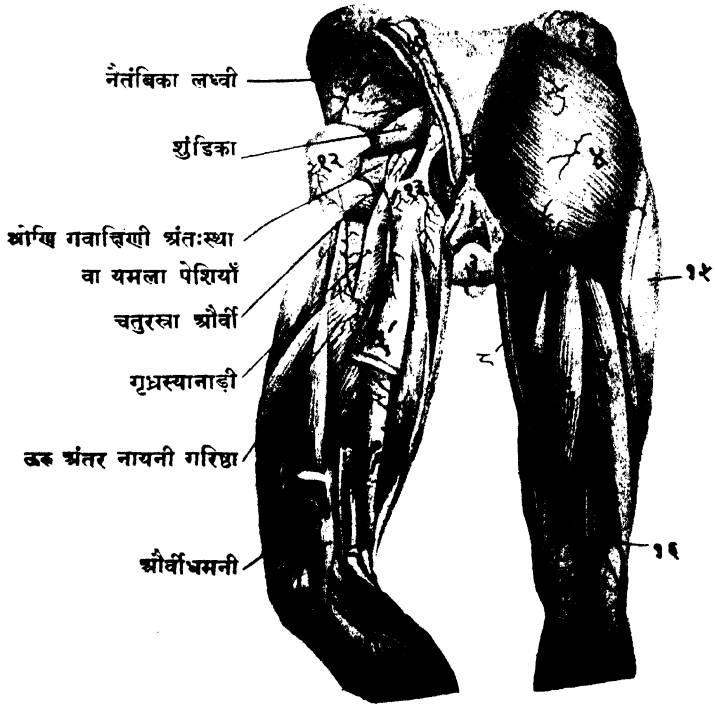
(Tiedmann)

१ = गुदास्थि २ = मलद्वार ३ = अंडकोष ४ = नैतंबिका महती (कटा हुआ भाग) ५ = द्विशिरस्का औौर्वी पेशी ५ = द्विशिरस्का औौर्वी (कटा हुआ भाग) पेशी ६,७ = कण्डराकल्पा पेशी ८ = ऊर्वन्तः पार्श्विका पेशी ९,१० = पिचिण्डिका महती के दो शिर ११ = कलाकल्पा पेशी १२ = महाशिखरक, यहाँ नैतंबिका मध्यस्था पेशी लगी हुई है १३ = कुकुन्दर पिण्ड, यहाँ त्रिककुकुन्दरिका बन्धन लगा है १४ = नैतंबिका मध्यस्था १५ = औौर्वीकला १६ = जानु पश्चात् धमनी

अधो शाखा की पेशियाँ

कटि की पेशियाँ

१५

(१) कटि लम्बिनी वृहती Psoas major चित्र १४० में ८	पाँचों कटि कशेरुकाओं के पार्श्व प्रवर्द्धन, कशेरुकाओं के बीच की चकरियाँ और कशेरुकाओं के सन्नकृष्ट किनारे; ऊपर के चार कटि कशेरुकाओं के पार्श्वों की सौत्रिक महराबें	ऊर्वस्थि का लघु शिखरक	जाँघ को वस्तिगह्वर पर मोड़ना (जब पेशी ऊपर से संकोच करे); जब नीचे से संकोच करे तो कटि को आगे को और अपनी ओर को झुकाना	२, ३ कटि नाड़ियों की शाखायें
(२) कटि लम्बिनी लघ्वी Psoas minor चित्र १४० में ५	बारहवें वक्ष और पहले कटि कशेरुका के पार्श्व और उनके बीच की चकरी	भगचूड़ा और जघनकंकतिका प्रवर्धन और कटि लम्बिनी वृहति का वेष्ट	पृष्ठ वंश को झुकाना	१ कटि नाड़ी

चित्र १४०
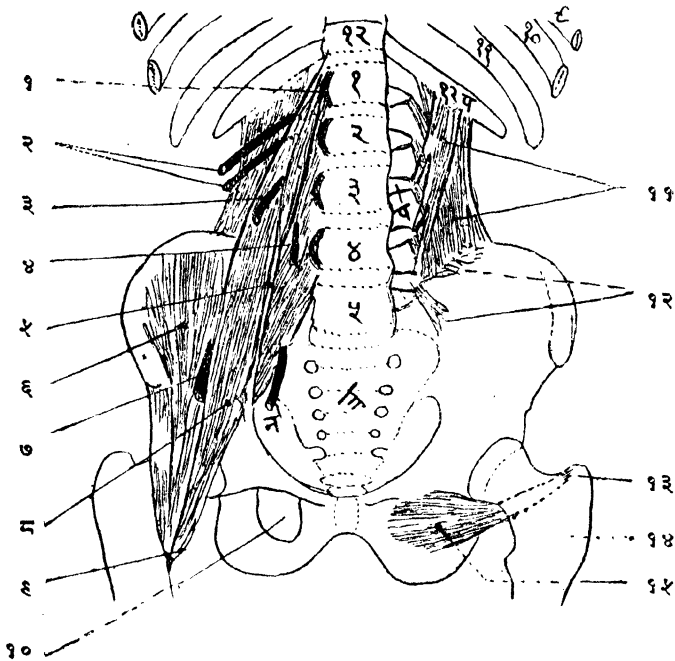
१ = सौत्रिक महाराब
२ = १ काटिकी नाड़ी की शाखाएँ
३ = औवीं बाह्य त्वगीया नाड़ी
४ = ननन-औवीं नाड़ी
५ = कटि लम्बिनी लघ्वी की कंडरा
६ = जघनीया पे०
७ = औवीं नाड़ी
८ = कटि लम्बिनी वृहती
९ = " " " का अन्त

न = गवाक्षीया नाड़ी
त्र = त्रिकास्थि
प = पार्श्व प्रर्द्धन
१२प = बारहवीं पर्शुका

(३) जघन्या Iliacus चित्र १४० में ६	जघनखात का ऊपर का ⅔ भाग, जघनचूड़ा का अंतरीय ओष्ठ; जघन त्रिक और जघन कटि बन्धन इत्यादि	अधिक भाग कटि लम्बिनी बृहती से मिल जाता है और इन दोनों की मिश्रिति कंडरा लघु शिखरक और लघु शिखरक से १ इंच नीचे तक लगी रहती है	जाँघ को मोड़ना और मोड़ते हुए उसको अन्दर को घुमाना और जब मुड़ जाये तो बाहर को घुमाना	कटि २, ३, ४ औरवीं नाड़ी द्वारा

जाँघ (ऊरु) की पेशियाँ

(४) और्वीकला तंसनी Tensor fasciæ latæ चित्र १११ में ६	जघन चूड़ा के बाह्य ओष्ठ का अगला भाग; जघन पुरोर्ध्व कूट	और्वीकला के "जघन जंघा नामक भाग" की दो तहों के बीच में	और्वीकला को तानना; जाँघ को बाहर ले जाना और भीतरी ओर घुमाना	कटि ४, त्रिक १ ऊर्ध्व नैतम्बिकनाड़ी द्वारा

चित्र १४१ (Esmarch)
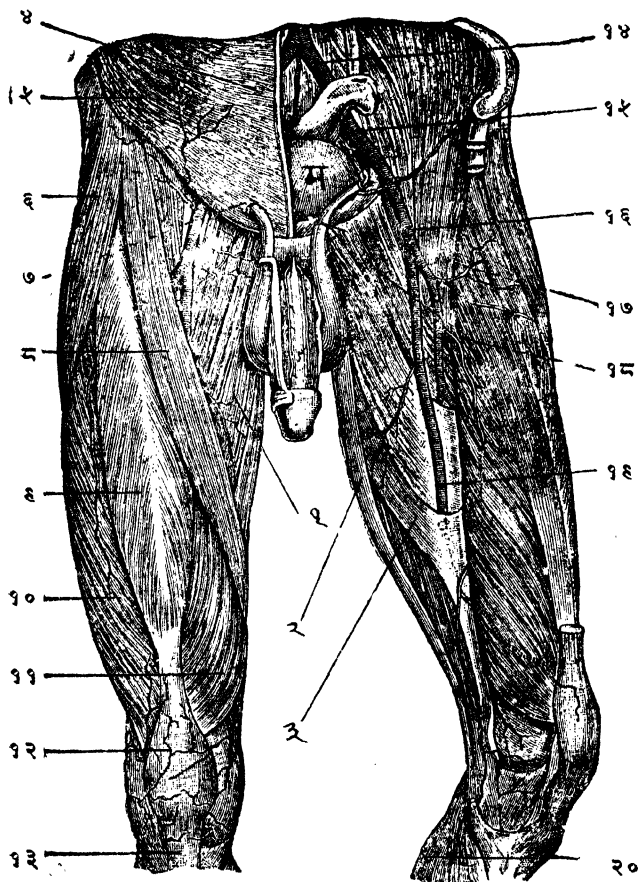
चित्र १४१ की व्याख्या

१ = दीर्घा ऊरु अंतरनायनी पे०

२ = ऊर्वन्तः पार्श्विका पे० (बिरला)

३ = गरिष्ठा ऊरु अंतरनायनी पे०

४ = उदरच्छदा बहिःस्था की चौड़ी कण्डरा

५ = उदरच्छदा बहिःस्था (मांस भाग)

७ = उदरच्छदा बहिःस्था का छिद्र जिसमें से होकर अंडधारक रज्जु अंड तक पहुँचती है; अंत्रवृद्धि भी इसी छिद्र में से होती है।

१७ = अंडधारक रज्जु

८ = एक पेशी

९ = ऊरु प्रसारणी (सरला)

१० = ऊरु प्रसारणी बहिःस्था पे०

११ = ऊरु प्रसारणी अन्तःस्था

[ऊरु प्रसारणी के चार भाग हैं :—तीन ऊपर गिनाये गये हैं, चौथा भाग ऊरु प्रसारणी मध्यस्था कहलाता है; समस्त पेशी को चतुर शिरस्का और्वी कहते हैं]

१२ = जान्वस्थि जिससे ऊरु प्रसारणी पेशी लगी है

१३ = जान्वस्थि बन्धन

१४ = बृहत्धमनी की अंतिम शाखा (मूल श्रोणिगा धमनी)

१५ = बाह्य श्रोणिगा धमनी

१६ = और्वी धमनी

१८ = कंकतिका पेशी

१९ = और्वी धमनी

२० = पिचिण्डिका महती

चित्र १४२
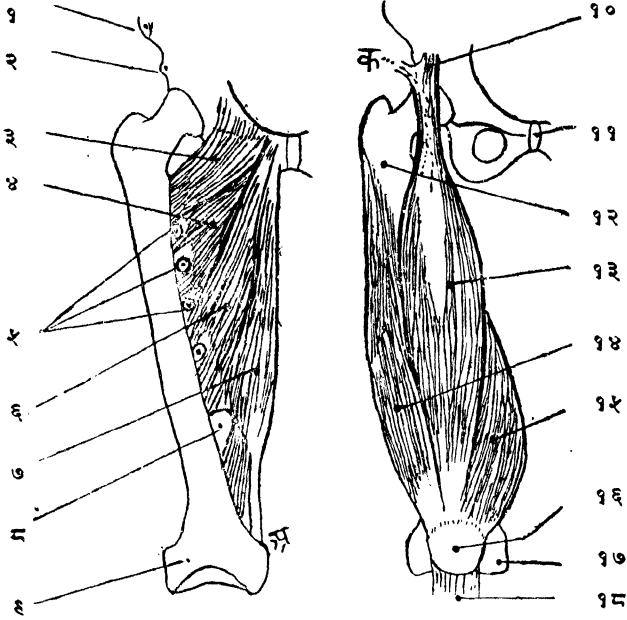
१ = पुरोर्ध्व कूट
२ = पुराधः कूट
३ = कंकतिका पे०
४ = ऊरु अन्तरनायनी लघ्वी
५ = रक्तवाहिनी छिद्र
६,७ = ऊरु अन्तरनायनी गरिष्ठा
८ = औैर्वी धमनी तथा शिरा द्वार
९ = ऊर्वस्थि अधोभाग

१०,क = सरला औैर्वी आरम्भ
११ = भगसन्धि
१२ = ऊर्वस्थि
१३ = सरला औैर्वी
१४ = ऊरु प्रसारणी बहिःस्था
१५ = ,, ,, अन्तःस्था
१६ = जान्वस्थि
१८ = जानुबन्धन

(५) सारटोरियस Sartorius चित्र १४१ में ८	जघन पुरोर्ध्व कूट और उसके नीचे का अंग	जघनास्थि का ऊपर का सिरा; जानुकोष और जानु का अन्तरीय बन्धन	जंघास्थि को मोड़ना और भीतर को घुमाना; जाँघ को मोड़ना और बाहर की ओर ले जाना और उसको बाहर की ओर घुमाना	३, ४ कटिकी; और्वी नाड़ी द्वारा
चतुर शिरस्का और्वी:— Quadriceps femoris				
६—सरला और्वी (१) Rectus femoris चित्र १४१ में ९	सीधा शिर :— पुराधः कूट; टेढ़ा शिर उपवंक्षणोलूखल खात	जान्वस्थि का ऊपर का किनारा		३, ४ कटिकी और्वी नाड़ी द्वारा
७—ऊरु प्रसारणी बहिस्था (२) चित्र १४१ में १०	शिखरांतरिक रेखा, महाशिखरक; नितम्बार्बुद; विश्लेषित तीरणिका के बाह्य	सरला और्वी की कंडरा से मिलकर जान्वस्थि के बाहरी और ऊपरी किनारे		

चित्र १४३
चित्र १४४
१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
कं
ध
१२
१३
१४
१५
१६
१७
१८
HANLON
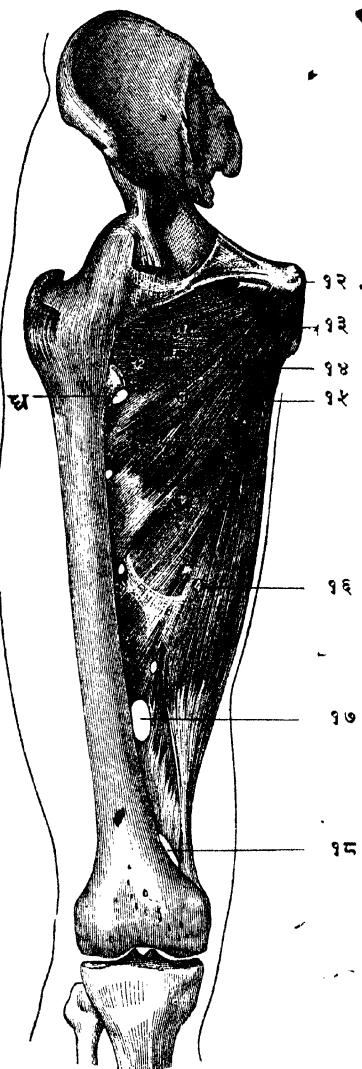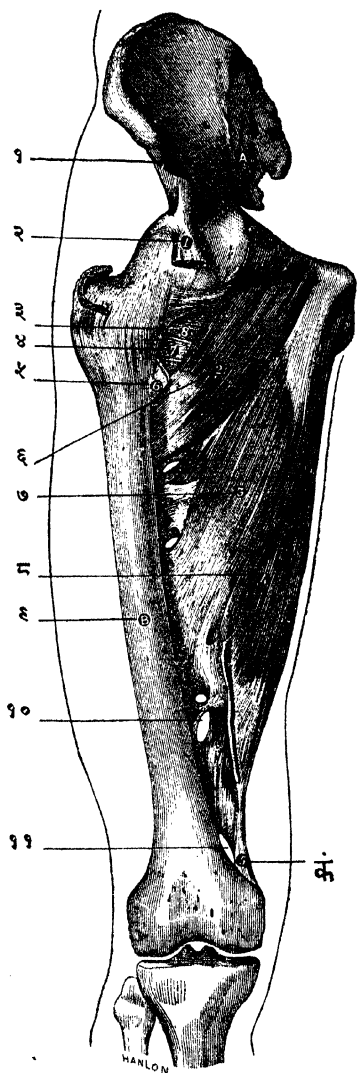
चित्र १४३ की व्याख्या

१ = जघनास्थि

२ = सरला और्वी की कण्डरा

३ = श्रोणी गवाक्षिणी बहिस्था

४ = चतुरस्रा और्वी

५ = कटि लम्बिनी बृहती की कण्डरा (कटी हुई)

६ = कंकतिका

७ = ऊरु अंतरनायनी दीर्घा

८ = ऊरु अंतरनायनी गरिष्ठा

९ = ऊर्वस्थि

१० = धमनी छिद्र

११ = और्वी धमनी छिद्र

कं० = ऊरु अंतरनायिनी गरिष्ठा की कण्डरा

चित्र १४४ की व्याख्या

ध = धमनी छिद्र

१२ = भगास्थि

१३ = श्रोणी गवाक्षिणी बहिस्था

१४ = चतुरस्रा और्वी

१५ = ऊरु अन्तर नायनी लघ्वी

१६ = ऊरु अन्तर नायनी गरिष्ठा

१७ = धमनी छिद्र

१८ = और्वी धमनी छिद्र

Vastus lateralis	ओष्ठ का ऊपर का आधा भाग और बाह्य पेश्यान्तरिक परिच्छेद	से लगती है		
८—ऊरु प्रसारणी अन्तस्था (३) चित्र १४१ में ११ Vastus intermedius	शिखरान्तरिकारेखा का नीचे का भाग; विश्लेषित तीरणिका का अंतरीय ओष्ठ; पेश्यान्तरिक परिच्छेद	सरला की कंडरा से मिल कर जान्वस्थि और जानुकोष से लगती है		
(९) ऊरु प्रसारणी मध्यस्था Vastus medialis	ऊर्वस्थि के अगले और बाहरी भाग का $\frac{3}{3}$—$\frac{3}{4}$ अंश; विश्लेषित रेखा का बाह्य ओष्ठ	ऊपर की तीनों पेशियों के गम्भीर भाग से	टाँग (जंघा) फैलाना या पसारना।	
(१०) जानुका Articularis genu	ऊर्वस्थि का अगला पृष्ठ	जानु की संधि कला	जानु के फैलते समय संधी कला को ऊपर खींचना	काटिकी ३,४ औवीं नाड़ी द्वारा

(११) विरला (ऊर्वतः पार्श्विका) Gracilis चित्र १४१ में ३	भग सन्धि; भगास्थि के निम्नांश की मध्य धारा	जंघास्थिका मध्य पृष्ठ जंघाबुर्द के नीचे	जाँघ को अन्दर की ओर लाना; जंघास्थि को मोड़ना और मध्य रेखा की ओर घुमाना	काटिकी २, ३, ४ गवाक्षीया नाड़ी द्वारा
(१२) कंकतिका Pectineus चित्र १४१ में १८	भगास्थि	लघु शिखरक के नीचे	जाँघ को मोड़ना अन्दर को लाना और बाहर को घुमाना	काटिकी २,३ औवीं नाड़ी द्वारा
(१३) ऊरु अन्तर-नायिनी दीर्घा Adductor longus चित्र १४१ में १	भगास्थि, भग सन्धि और भग चूड़ा के कोने से	विश्लेषित रेखा के मध्य ओष्ठ का नीचे का ⅓ भाग	जाँघ को अन्दर की ओर लाना और मोड़ना और बाहर को घुमाना	काटिकी २,३ गवाक्षीया नाड़ी द्वारा
(१४) ऊरु अन्तर नायिनी लध्वी Adductor brevis	भगास्थि, दीर्घा के नीचे	उस रेखा का नीचे का ⅔ भाग जो लघु शिखरक से विश्लेषित तीरणिकाकी ओर जाती है	,, ,,	काटिकी ३,४ गवाक्षीया नाड़ी द्वारा
(१५) ऊरु अन्तर नायिनो गरिष्ठा	कुकुन्दर पिण्ड, भगास्थि	ऊर्वस्थि का पिछला पृष्ठ, नैतम्बिक अर्बुद	जाँघ को अन्दर को लाना और बाहर को	काटिकी ३,४ गवाक्षीया द्वारा

Adductor magnus चित्र १४१ में ३ चित्र १४४		के पास; विश्लेषित रेखा; मय उपाबुर्दिक रेखा और अन्तरनायनी अर्बुद	घुमाना	काटिकी ४,५, त्रिक १ गृध्रस्या द्वारा
(१६) नैतम्बिका महती Gluteus maximus छित्र १३९ में ४	जघनास्थि के नैतम्बिक पृष्ठ का पिछला भाग; त्रिक पृष्ठिका की कंडरा; त्रिक और चंचू के पिछले पृष्ठ; त्रिक कुकुन्दर बन्धन	जघन-जंघा कला; नैतम्बिक अर्बुद, बाह्य पेश्यान्तरिक कला	जाँघ को पसारना बाहर ले जाना और बाहर को घुमाना; जघन जंघा कला को खींचना	काटिकी ५ त्रिक १, २ अधो नैतम्बिकी नाड़ी द्वारा
(१७) नैतिम्बका मध्यस्था Gluteus medius चित्र १३९ में १४	जघनास्थि का नैतम्बिक पृष्ठ	महा शिखरक	अगला भाग जाँघ को झुकाता है और अन्दर को घुमाता है, पिछला भाग उसको बाहर को घुमाता है	काटिकी ४, ५ त्रिक १ उर्ध्व नैतम्बिक नाड़ी द्वारा
(१८) नैतम्बिका लघ्वी	जघनास्थि का नैतम्बिक पृष्ठ अगली	महा शिखरक	,,	,,

Gluteus minimus चित्र १३९	और नीचे की रेखाओं के बीच से			त्रिक १, २
(१९) शुण्डिका Piriformis चित्र १३९	त्रिकास्थि के २, ३, ४ कशेरुकाओं के अगले पृष्ठ; कुकुन्दर भंग का ऊपर का किनारा	महा शिखरक	झुकी हुई जाँघ को बाहर ले जाना; फैली हुई जाँघ को बाहर घुमाना	
(२०) श्रोणी गवाक्षिणी अन्तस्था Obturator internus चित्र १३९	गवाक्षीया कला का गह्वरया पृष्ठ; गवाक्ष के किनारे	महा शिखरक का अन्तस्तल	,,	काटिकीं ५ त्रिक १, २
(२१) यमलाऊर्ध्वस्था Gemellus superior चित्र १३९	छोटे कुकुन्दर भंग के किनारे	श्रोणी गवाक्षणी अन्तस्था	,,	श्रोणी गवाक्षणी अन्तस्था की नाड़ी

(२२) यमला अधस्था Gemellus inferior चित्र १४१	,,	,,	,,	चतुरस्रा और्वी की नाड़ी
(२३) चतुरस्रा और्वी Quadratus femoris चित्र १३९	कुकुन्दर पिंड का बाहरी किनारा	चतुरस्रा अर्बुद और उसके नीचे की रेखा	जाँघ को मध्य रेखा की ओर लाना और बाहर को घुमाना	काटिकी ४, ५ और त्रिक १
(२४) श्रोणी गवाक्षिणी बहिस्था Obturator externus चित्र १४० में १५	गवाक्षिणी कला का और्वी पृष्ठ और आस पास की अस्थि	शिखरक खात	जाँघ को बाहर को घुमाना और उसको बाहर लाना और मोड़ना	काटिकी ३, ४
(२५) द्विशिरस्का और्वी Biceps femoris चित्र १३९ में ५	लम्बा शिर :-कुकुन्दर पिंड छोटा शिर:-विश्लेषित तीरणिका का बाह्य ओष्ठ; उपार्ब-	अनुजंघास्थि का शिर, जंघास्थि का बाह्य अर्बुद	टाँग को मोड़ना और बाहर को घुमाना; जाँघ को फैलाना	लम्बा शिर: त्रिक १,२,३ छोटा शिर: काटि० ५ त्रि० १,२

	दिक रेखा का ऊपर का ⅔ भाग, बाह्य पेश्यान्तरिक परिच्छेद			
(२६) कंडरा कल्पा Semitendinosus चित्र १३९ में ६	कुकुन्दर पिंड	जंघास्थि के ऊपर के भाग का मध्य पृष्ठ	टाँग को मोड़ना और अन्दर को घुमाना और जाँघ को फैलाना	का० ५ त्रि० १,२
(२७) कला कल्पा Semimembra-nosus चित्र १३९ में ११	कुकुन्दर पिंड	जंघास्थि के मध्यार्बुद के पिछले भाग का खात इत्यादि	,,	का० ४,५ त्रि० १

टाँग की पेशियाँ

(२८) जंघा पुरोगा Tibialis anterior चित्र १२९ में १३	बाह्य जंघा अर्बुद और जंघास्थि के बाह्य पृष्ठ का उपरी ⅔ भाग	अन्तःत्रिपार्श्विक का मध्य पृष्ठ और प्रथम प्रपादास्थि का अधो-भाग	पैर को अन्दर को मोड़ना और ऊपर को झुकाना	का० ४,५ त्रि० १

(२९) पादांगुष्ठ प्रसारणी दीर्घा चित्र १२९ में ५ Extensor hallucis longus	अनुजंघास्थि के मध्य पृष्ठ का बीच का $\frac{3}{5}$ भाग और अस्थ्यांतरिक कला	अंगुष्ठ की दूसरी अंगुल्यस्थि का अधोभाग	अङ्गुष्ठ को फैलाना और पैर को ऊपर को मोड़ना	का० ४,५ त्रि० १ गम्भीर विवर्तनी नाड़ी द्वारा
(३०) पादांगुली प्रसारणी दीर्घा चित्र १२९ में ११ Extensor digitorum longus	बाह्य जंघार्बुद; अनु जंघास्थि के मध्य पृष्ठ का बीच का $\frac{2}{3}$ भाग	चारों अङ्गुलियों की २,३ अङ्गुल्यस्थियाँ	अङ्गुलियों को फैलाना; पैर को ऊपर को मोड़ना	का० ४,५ त्रि० १
(३१) पादविवर्तनी लध्वी Peroneus tertius चित्र १२९ में १०	अनुजंघास्थि के मध्य पृष्ठ का बीच का $\frac{1}{3}$ भाग, अस्थ्यांतरिक कला	पंचमी प्रपादास्थि का अधो भाग	पैर को ऊपर की ओर मोड़ना और तले को बाहर की ओर ले जाना	का० ४,५ त्रि० १
(३२) पिचिंडिका महती; चित्र १३९ Gastrocnemius चित्र १४५; १४६	बाह्य शिरः—उपार्बुदिक रेखा; जानु-कोष मध्य शिरः—मध्या-	गुल्फास्थि का पिछला भाग	पैर फैलाना और (एड़ी उठाना) जानु को मोड़ना	त्रि० १,२

चित्र १४९

Reducedfrom Sparke's Artistic Anatomy (Messrs Bailliere, Tindall & Cox London)

चित्र १४६

ऊरु प्रसारणी बहिस्थ
द्विशिरस्का और्वी
सरला और्वी
ऊरु प्रसारणी बहिस्थ
और्वी कला
जानवस्थि बचन
द्विशिरस्का और्वी कण्डरा
पिचिंडिका महता बाह्य शिर
पिचिंडिका लघ्वी
पाद निवर्तना दीर्घा
जंघा पुरोगा
पादांगुली प्रसारणी दीर्घा
पाद विवर्तनी ह्रस्वा
पाद विवर्तनी लघ्वी
पादविवर्तनी दीर्घा
पादांगुली प्रसारणी दीर्घा
पाद विवर्तनी लघ्वी अन्त
पिचिंडिका लघ्वी
अन्त
पादांगुली प्रसारणी ह्रस्वा
कानिष्ठा बाहिर्नायनी

(३३) पिचिंडिका, लघ्वी Soleus चित्र १४६	बुर्द के ऊपर से, अनुजंघास्थि का शिर और गात्र के ऊपर के $\frac{1}{3}$ भाग का पिछला पृष्ठ; जंघास्थि का पिछला भाग	पिचिंडिका महती से मिल जाती है	,, ,,	का० ५ त्रि० १,२
(३४) पिचिंडिका विरला Plantaris	बाह्य उपार्बुदिक रेखा का नीचे का भाग	गुल्फास्थि का मध्यार्बुद	,, ,,	का० ४,५ त्रि० १
(३५) जानु पृष्ठिका Popliteus	ऊर्वस्थि के बाह्यार्बुद के बाह्य पृष्ठ पर १ खात	जंघास्थि की जानु पृष्ठिका रेखा और उसके ऊपर का स्थान	टाँग को मोड़ना और उसको अन्दर को घुमाना	
(३६) पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा Flexor hallucis longus	अनु जंघास्थि के पिछले पृष्ठ का नीचे का $\frac{2}{3}$ भाग	अङ्गुष्ठ की दूसरी अङ्गुल्यस्थि का अधो भाग	पादांगुष्ठ को मोड़ना और पैर को फैलाना	का० ५ त्रि० १, २
(३७) पादांगुली	जंघास्थि के पिछले	चार कंडराओं द्वारा	अङ्गुलियों को झुकाना;	त्रि० १, २

संकोचनी दीर्घा Flexor digitorum longus	पृष्ठ का बीच का ¾ भाग	अंगुलियों की अन्तिम अंगुल्यस्थियों से	पैर को सीधा करना	
(३८) जंघा पश्चिमगा Tibialis posterior	अनुजंघास्थि के मध्य पृष्ठ का पिछला भाग; जंघास्थि के पिछले पृष्ठ का ऊपरी ⅔ भाग; अस्थ्यान्तरिक कला	नौकाकृति का अर्बुद और प्रथमा त्रिकोण; कुछ २ अंश गुल्फास्थि को छोड़कर शेष कूर्चास्थियों से और २, ३, ४ प्रपादास्थियों के अधो भाग से	पैर को फैलाना और उसको अन्दर की ओर मोड़ना	चित्र० १, २
(३९) पाद विवर्तनी दीर्घा Peroneus longus चित्र १४६	अनुजंघास्थि का शिर और उसके गात्र के बाह्य पृष्ठ का ऊपरी ⅔ भाग; पेश्यान्तरिक परिच्छेद	प्रथम प्रपादास्थि का अधो भाग और प्रथमा त्रिकोण	पैर को बाहर को मोड़ना और फैलाना	का० ४, ५ त्रि० १ उपरितन विवर्तनी नाड़ी द्वारा
(४०) पाद विवर्तनी ह्रस्वा Peroneus brevis चित्र १४६	अनु जंघास्थि के बाह्य पृष्ठ का नीच का ⅔ भाग	पंचमी प्रपादास्थि के अधो भाग का अर्बुद	,,	,,

(४१) पादांगुली प्रसारणी ह्रस्वा Extensor digitorum brevis चित्र १४७	पार्ष्णि का ऊपर का और बाह्य पृष्ठ	चार कंडरायें होती हैं पहली अंगुष्ठ को जाती है और पहली अंगुल्यस्थि के अधोभाग से लगती है शेष ३ कंडरायें दूसरी तीसरी चौथी अंगुलियों को जाती हैं और इन अंगुलियों सम्बन्धी अंगुली प्रसारणी दीर्घा की कंडराओं से मिल जाती हैं।	अङ्गुलियों के पोरों को फैलाना	का० ४,५ त्रि० १ गम्भीर विवर्तनी नाड़ी द्वारा
(४२) पादांगुष्ठ बहिर्नायिनी Abductor hallucis चित्र १५१	मध्य पार्ष्णि अर्बुद-पैर की कंडराकला इत्यादि	अङ्गुष्ठ की पहली अङ्गुल्यस्थि के अधो भाग का मध्य पार्श्व	अङ्गुष्ठ की पहली अङ्गुल्यस्थि को मोड़ना (तले की ओर) और उसको मध्य रेखा की तरफ खींचना	क० ५ त्रि० १ मध्य पादतली-का नाड़ी द्वारा
(४३) पादांगुली	मध्य पार्ष्णि अर्बुद	४ कडरायें होती हैं और		

संकोचनी ह्रस्वा Flexor digitorum brevis चित्र १४९		२,३,४,५वीं अंगुलियों को जाती हैं; पहली अंगुल्यस्थि के सन्मुख हर एक कंडरा की दो शाखा हो जाती हैं इन दोनों शाखाओं के बीच में से होकर अंगुली संकोचनी दीर्घा की शाखा आगे जाती है यह दोनों शाखायें मिल जाती हैं और कुछ दूर आगे चलकर फिर दो भागों में विभक्त होती हैं और दूसरी अंगुल्यस्थि के पार्श्वों से जा लगती हैं	दूसरी अंगुल्यस्थि को पहली पर झुकाना और फिर पहली अंगुल्यस्थियों को झुकाना और अंगुल्यों को पास पास ले जाना	का० ५ त्रि १ मध्य पादतली-का नाड़ी द्वारा
(४३) कनिष्ठा बहिर्नायिनी Abduc-	पार्ष्णि के मध्य और बाह्य अर्बुद इत्यादि	पंचमी अंगुली की पहली अंगुल्यस्थि के	पहली अंगुल्यस्थि को झुकाना और उसको	त्रि० १, २ बाह्य पादतली-

tor digiti quinti		अधो भाग का बाह्य पार्श्व	बाहर की ओर लाना	का नाड़ी द्वारा
(४५) पाद चतुरस्रा Quadratus plantae चित्र १४८	मध्यशिर :--पार्ष्णि का नतोदर मध्य पृष्ठ; बाह्यशिर:— पार्ष्णि के बाह्यबुर्द के सामने से	अंगुली संकोचनी दीर्घा की बाह्य धारा और निम्न पृष्ठ	अंगुली संकोचनी दीर्घा का सहायक	त्रि० १,२ बाह्य पादतली का नाड़ी द्वारा
(४६-४९) पाद कृमिका Lumbricales चित्र १४८	चार हैं (१) अंगुली प्रसारणी दीर्घा की पहली कंडरा की मध्य धारा (२) पहली और दूसरी कंडरा की सन्नकृष्ठ धाराओं से (३) दूसरी, तीसरी कंडराओं की सन्नकृष्ठ धाराओं से	इन पेशियों की कंडरायें अंगुली प्रसारणी दीर्घा की कंडराओं के फैले हुए भाग से जो पहली अंगुल्यस्थि के ऊपर रहता है मिल जाती है	पहली अंगुल्यस्थि को मोड़ना और दूसरी तीसरी को सीधा करना	पहली कृमिका-का० ५ त्रि० १ मध्य पादतली-का नाड़ी द्वारा; शेष = त्रि० १, २ बाह्य पादतलीका नाड़ी द्वारा

	(४) तीसरी चौथी कंडराओं से			
(५०) पादांगुष्ठ संकोचनी ह्रस्वा Flexor hallucis brevis चित्र १५०	घनास्थि के पादतलिक पृष्ठ का मध्य भाग इत्यादि	पेशी के दो भाग हो जाते हैं मध्य और बाह्य मध्य भाग :—अंगुष्ठ की पहली अंगुल्यस्थि के अधोभाग का मध्य पार्श्व बाह्य भाग :—उसी अस्थि का बाह्य पार्श्व; इसकी कंडरा में कंडरा चणक अस्थियाँ रहती हैं	अंगुष्ठ को मोड़ना	का० ५ त्रि० १ मध्य पादतलिका नाड़ी द्वारा
(५१) पादांगुष्ठ अंतरनायिनी Abductor hallucis चित्र १५०	तिर्छा शिरा:—२,३,४ थी प्रपादास्थि का अधोभाग और पादविवर्तनी दीर्घा का	पहली अंगुल्यस्थि के अधोभाग का बाह्य पार्श्व	अंगूठे को मोड़ना और अन्दर को लाना, व्यत्यस्त भाग सब अंगुलियों को एकत्रित	त्रि० १, २ बाह्य पादतलिका नाड़ी द्वारा

चित्र १४७ पैर की पेशियाँ

Morris's Human Anatomy

चित्र १४८ पादतल की पहली तह

पादांगुली संकोचनी स्वा कंडरा

पादांगुली संकोचनी ह्रस्वा

पादक्रमिका

कनिष्ठा बहिर्नायिनी

कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा

पादांगुष्ठ बहिर्नायिनी

पादांगुष्ठ अंतरनायिनी

पादांगुष्ठसंकोचनीह्रस्वा

पादांगुष्ठसंकोचनीदीर्घा

पादांगुष्ठसंकोचनीदीर्घा

पाद चतुरस्त्रा

कनिष्ठा बहिर्नायिनी

पादांगुष्ठ बहिर्नायिनी

पादांगुली संकोचनी ह्रस्वा

कनिष्ठा बहिर्नायिनी (उत्पत्ति)
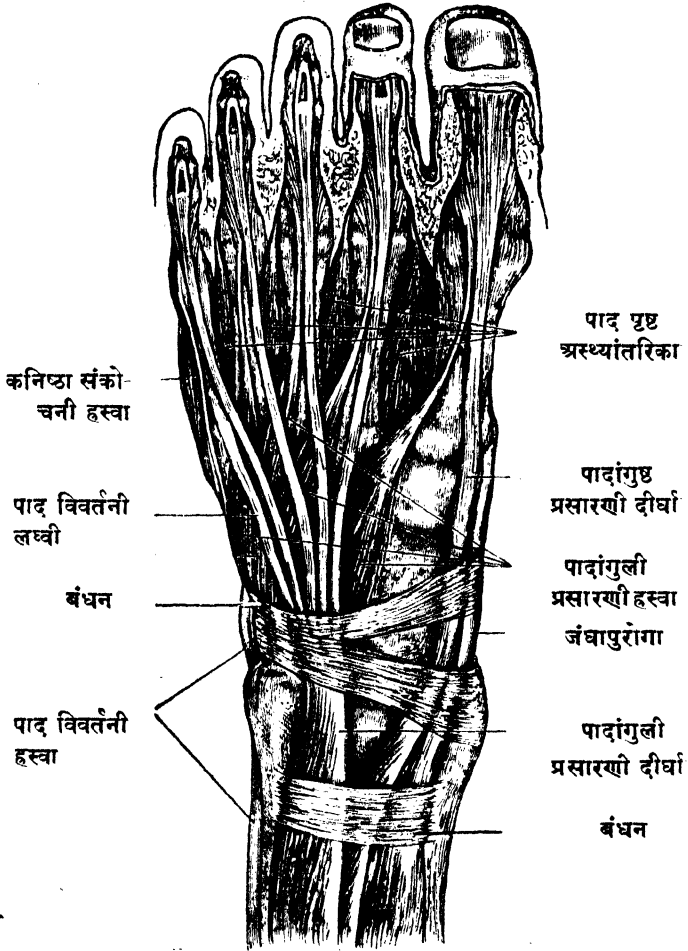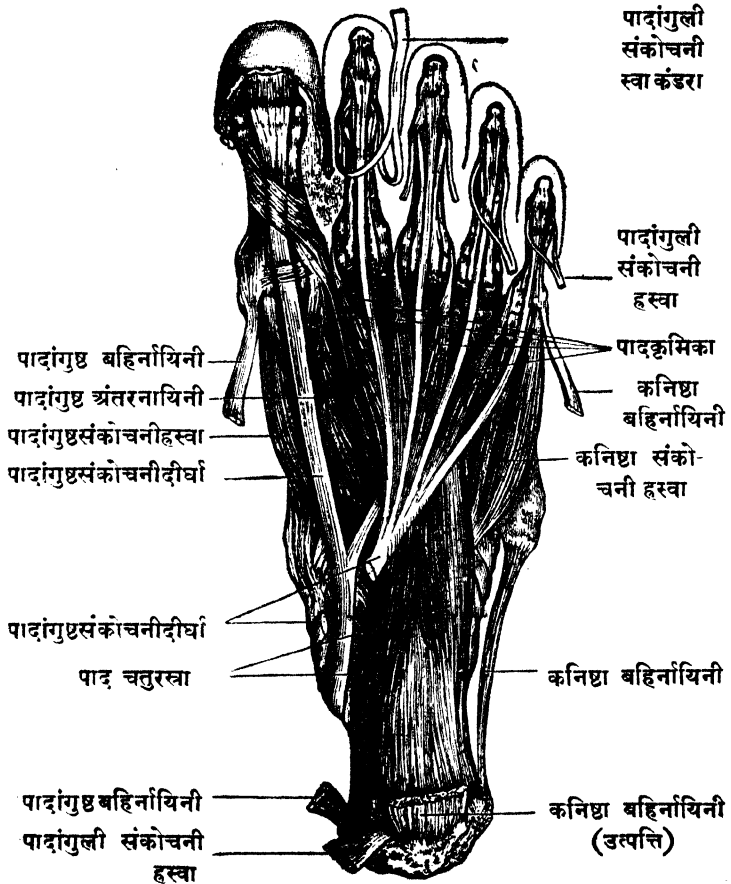
From Morris's Human Anatomy

चित्र १४६ पादतल, दूसरी तह

From Morris's Human Anatomy
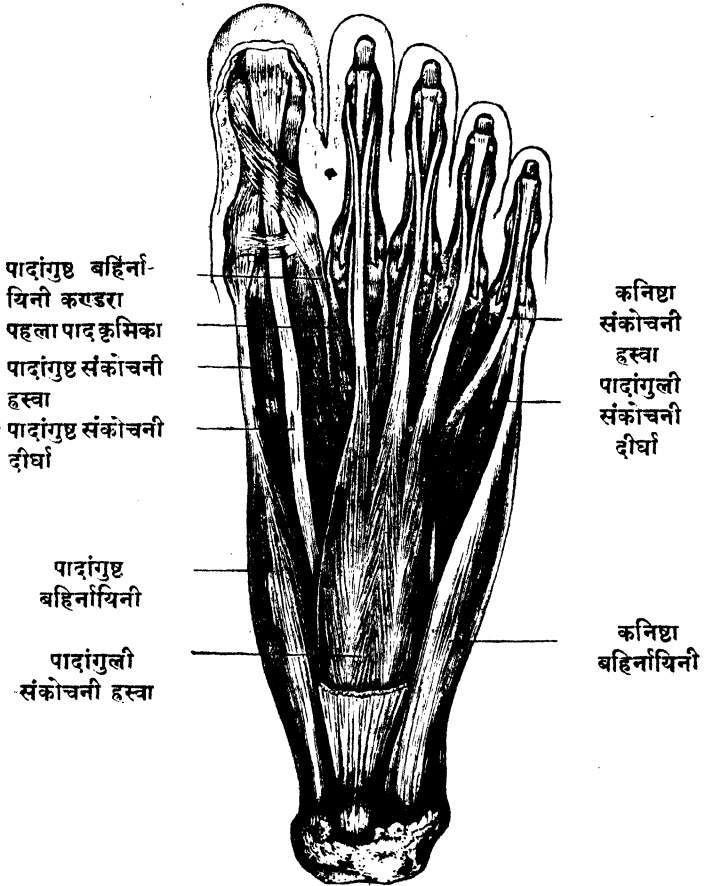
चित्र १९० पादतल तीसरी तह

From Morris's Human Anatomy
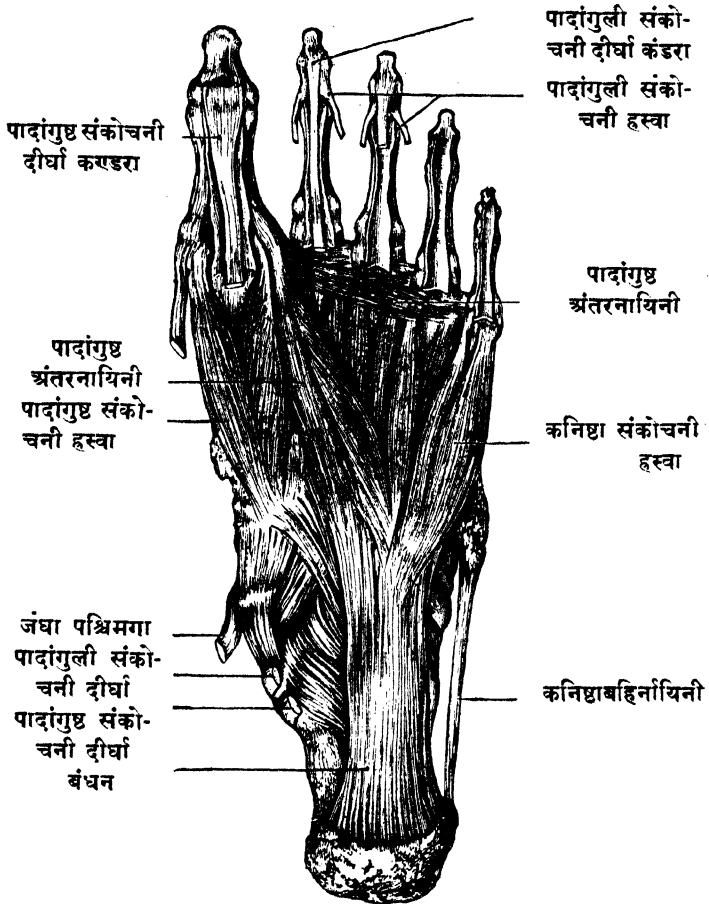
चित्र १५१ पादतल चौथी तह
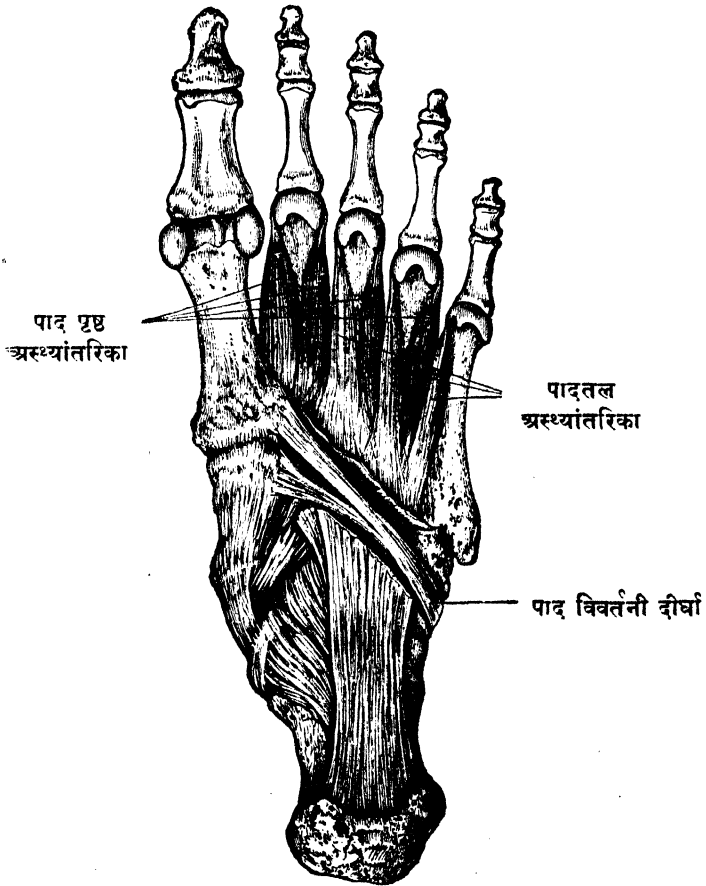
From Morris's Human Anatomy

	सौत्रिक कोष व्यत्यस्त शिर:— पादतल के कुछ बन्धनों से		करता है।	
(५२) कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा Flexor digiti quinti brevis चित्र १४९	५ वीं प्रपादास्थि के अधोभाग के नीचे से और पादविवर्तनी दीर्घा के सौत्रिक कोष से	कनिष्ठा की पहिली अंगुल्यस्थि के बाह्य भाग का पार्श्व	कनिष्ठा को मोड़ना	त्रि० १, २ बाह्य पादतलिका नाड़ी द्वारा

पादअस्थ्यांतरिका Interossei

यह सात हैं ३ पादतल में और ४ पाद पृष्ठ में (५३-५५) पादतल अस्थ्यांतरिका Plantar interossei चित्र १५१	३, ४, ५वीं प्रपादास्थियों के निम्न पृष्ठ	३, ४, ५वीं अंगुलियों की पहली अंगुल्यस्थियों का अधो भाग और प्रसारणी पेशी की कंडरा	पहली अंगुल्यस्थियों को मोड़ना और २, ३री को फैलाना और ३, ४, ५वीं अङ्गुल्यों को दूसरी अङ्गुली की ओर लाना	त्रि० १, २ बाह्य पादतलीका नाड़ी द्वारा

(५६-५९) पादपृष्ठ अस्थ्यांतरिका Dorsal interossei चित्र १४७ " १५१	पत्त्राकार होती हैं और २ शिरों द्वारा प्रपादास्थियों के सन्नकृष्ठ धाराओं द्वारा निकलती हैं	पहली अंगुल्यस्थि का अधो भाग और अंगुली प्रसारणी दीर्घा की कंडरा इस प्रकार :— प्रथमा--दूसरी अंगुली की मध्य धारा; शेष ३ :—२, ३, ४थी अंगुल्यों की बाह्य धारा	अंगुलियों को दूसरी अंगुली में से होती हुई कल्पित रेखा से परे हटाना;पहली पेशी दूसरी अंगुली को अंगूठे की ओर ले जाती है दूसरी पेशी दूसरी अंगुली को कनिष्ठा की ओर ले जाती है; इसी तरह तीसरी चौथी। पहली अंगु-ल्यास्थि को झुकाना और दूसरी तीसरी को फैलाना	"

अध्याय ८

वसा

बाहु के छेदन से आपको ज्ञात हो चुका है कि मांस के ऊपर और त्वचा के नीचे एक पीली चिकनी वस्तु रहती है जिसको वसा या चरबी कहते हैं। केवल तीन स्थानों को छोड़कर त्वचा के नीचे हर जगह वसा रहती है। जिन स्थानों में वसा नहीं पाई जाती वे ये हैं—पलक, अंडकोष और शिश्न। वसा और बहुत से स्थानों में भी रहती है जैसे लम्बी अस्थियों के गात्रों की मज्जा में, उदर में, मांस पेशियों के बीच में। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक वसा रहती है। जिन मनुष्यों में वसा कम होती है उनके शरीरों में कई जगह गड़े दिखाई दिया करते हैं जैसे अक्षक अस्थियों के ऊपर और नीचे और गालों में जो पिचके हुए मालूम होते हैं। जब वसा अधिक होती है तो छाती और चेहरा भरे हुए दिखाई देते हैं। दुबले मनुष्यों में कई अस्थियाँ त्वचा में उभरी हुई दिखाई देती हैं जो मोटे मनुष्य में वसा से खूब ढके रहने के कारण नहीं दिखाई देतीं। शरीर में कई जगह वसा की गद्दियाँ होती हैं जिन पर कोमल अंग रक्खे रहते हैं। अक्षिगोलक के चारों ओर वसा रहती है, वृक्क (गुर्दा) वसा की गद्दी पर रक्खा रहता है, हथेलियों और तलुओं में भी वसा की गद्दियाँ होती हैं।

उष्णता का अच्छा चालक न होने के कारण वसा शरीर

के ताप परिमाण को स्थिर रखने में सहायता देती है। वह अधिक गर्मी और सर्दी दोनों से शरीर की रक्षा करती है। उन मनुष्यों के शरीर जो परिश्रम कम करते हैं और भोजन अधिक खाते हैं (विशेष कर ऐसे पदार्थ जिनसे अधिक वसा बनती है जैसे घी, चावल, शकर आदि) बहुत स्थूल हो जाते हैं। परिश्रम से वसा का व्यय होता है। जब व्यय कम होता है और वसा अधिक बनती है तो वह शरीर में इकट्ठी होने लगती है। सब से पहले वह त्वचा के नीचे इकट्ठी होती है और सब शरीर को स्थूल बनाती है। फिर विशेष अंगों में जैसे उदर के भीतर, ठोढ़ी के नीचे, गालों में, चूतड़ों में इकट्ठी होती है। अधिक वसा के कारण पेट आगे को उभर आता है, चूतड़ बहुत मोटे हो जाते हैं, एक ठोढ़ी की जगह दो ठोढ़ियाँ दिखाई देने लगती हैं, गाल फूल कर कुप्पा जैसे हो जाते हैं। हृदय जैसे अति आवश्यक और कोमल अंगों में अधिक वसा के रहने से उनके कार्य में फर्क आ जाता है। ऐसे मनुष्यों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता।

सामान्यतः शरीर के भार के प्रति १०० भागों में १८ भाग वसा के होते हैं।

त्वचा

त्वचा से हमारा समस्त शरीर ढका हुआ है, उसके नीचे वसा रहती है। त्वचा अपने नीचे की कोमल चीज़ों की रक्षा करती है। यही नहीं वह हमारी स्पर्शेन्द्रिय भी है, उसके द्वारा हमको सर्दी और गर्मी का ज्ञान होता है। उसमें बालों की जड़ें रहती हैं और अंगुलियों में उससे नाखून भी

निकलते हैं। त्वचा में कई प्रकार के छोटे छोटे यंत्र (ग्रन्थियाँ) भी होते हैं, इनमें से एक प्रकार के यंत्रों द्वारा पसीना बनता है, दूसरे प्रकार के यंत्रों में एक तैलवत् चीज़ बनती है जो त्वचा और बालों को चिकना बनाती है। त्वचा में बहुत से छोटे छोटे छिद्र होते हैं, पसीना इन्हीं छिद्रों में से निकला करता है।

त्वचा का रंग सब जातियों में एक सा नहीं होता। शीत-प्रधान देश निवासियों की त्वचा का रंग ग्रीष्मप्रधान देश निवासियों के रंग से उजला (गोरा) होता है। उत्तर यूरोप और काश्मीर वालों का रंग गोरा होता है, दक्षिण भारतवर्ष और अफ़रीक़ा वालों का रंग काला (श्याम) होता है। चीनियों और जापानियों का रंग पीला सा होता है।

त्वचा की मोटाई शरीर के सब स्थानों में एक सी नहीं होती। जहाँ उस पर अधिक दबाव पड़ता है वहाँ वह मोटी होती है; हथेलियों, तलुओं और पीठ की त्वचा और स्थानों की त्वचा से अधिक मोटी होती है, पलकों, अंडकोष और शिश्न की त्वचा बहुत पतली होती है। पुरुषों की त्वचा स्त्रियों की त्वचा से अधिक मोटी होती है। त्वचा की मोटाई $\frac{१}{४०}$ से $\frac{१}{६}$ इञ्च तक होती है।

शरीर के भार के १०० भागों में ८ भाग त्वचा के होते हैं। त्वचा की सूक्ष्म रचना अध्याय १३ में लिखी जायगी।

अध्याय ९

रक्त

जब अंगुली में सुई चुभती है या शरीर का कोई भाग कहीं से कट जाता है तो एक गहरे लाल रंग का तरल निकलने लगता है—यह रक्त या रुधिर (खून) है।

रक्त के द्वारा हमारे समस्त शरीर का पोषण होता है। जल की अपेक्षा उसका गुरुत्व अधिक होता है। जल का गुरुत्व १००० माना जाय तो उसका १०५५ के लगभग होगा अर्थात् यदि एक गिलास जल का भार १००० तोले हो तो उतने ही रक्त का भार १०५५ तोले होगा। रक्त अपारदर्शक होता है, जल की भाँति उसमें से प्रकाश की रेखाएँ नहीं गुज़र सकतीं। उसका स्वाद कुछ नमकीन होता है। शरीर के भीतर उसका तापपरिमाण १००° दरजे फहरनहाइट * या ३७.८° दरजे शतांश होता है। रोगों में यह तापपरिमाण घट बढ़ जाता है। ज्वरों में १००° से बढ़कर १०६°—१०७° फ० और कभी कभी इससे भी अधिक हो जाता है। प्रत्येक प्राणधारी के ताजे रक्त से एक विशेष प्रकार की गन्ध आया करती है।

शरीर से निकलने के पश्चात् रक्त तरल नहीं रहता, वह गाढ़ा होने लगता है और शीघ्र ही लुआबदार हो जाता है। यदि आप रक्त को एक बरतन में रख दें तो कुछ समय बीतने पर वह जम जायगा; ऐसा प्रतीत होगा कि सब का सब

* फहरनहाइट और शतांश—ये दो प्रकार के तापमापक यंत्र हैं।

ठोस हो गया है । परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता: यदि बरतन कुछ देर के लिये अलग रख दिया जाय तो उसमें एक लाल छिछड़ा पीले से पानी पर तैरता हुआ दिखाई देगा; छिछड़ा बरतन से कहीं चिपट जाय तो पीला पानी उसके ऊपर आ जायगा। जमने के पश्चात् जो यह पीला पानी बना उसका नाम **रक्तरस (सीरम*)** है। यदि आप छिछड़े को बाहर निकाल लें और उसको जल से धोवें तो कुछ देर पीछे उसका लाल रंग धुल जायगा और आपके हाथ में एक श्वेत

चित्र १५२ फाइब्रिन का जाल
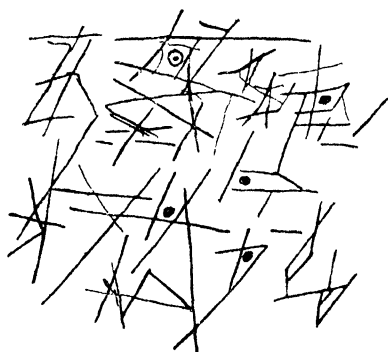
वस्तु रह जायगी। ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि यह वस्तु सूक्ष्म तारों से बनी हुई है; उसके एक सूक्ष्म अंश की अणुवीक्षण से परीक्षा की जाय तो उसकी रचना ऐसी दिखाई देगी जैसी कि चित्र १५२ में दिखाई गई है। छिछड़ा

* अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है ।

अति सूक्ष्म तारों से बना है; तारों के परस्पर संयोग से एक जाल बन जाता है जिसके छिद्रों में कुछ गोल गोल चीजे फँसी रहती हैं—ये रक्त की सेलें या **रक्तकण** हैं। जिस पदार्थ के ये तार बने होते हैं उसको **फाइब्रिन*** कहते हैं। रसायन विद्या के अनुसार फाइब्रिन एक भाँति की प्रोटीन * है।

रक्त के संयोगी तत्त्व (रक्त का संगठन)

रक्त के दो भाग होते हैं:—

१. तरल भाग जिसका नाम **रक्तवारि** या **प्लाज़मा*** है।

२. सेलें जो रक्तकण कहलाती हैं, रक्तकण रक्तवारि में तैरते हैं। रक्त के १०० भागों में ६० से ६५ भाग रक्तवारि के और ३५-४० भाग कणों के होते हैं।

रक्तवारि

विशेष साधनों से यंत्रों द्वारा रक्तवारि कणों से अलग किया जा सकता है। वह हलके पीले रंग का तरल होता है जिसमें कण तैरा करते हैं। उसका गुरुत्व १०२६ से १०२९ तक होता है १०० भागों में ९० भाग जल (जो उदजन और ओषजन गैसों ‡ का यौगिक है) के होते हैं; शेष दस भाग उन रासायनिक वस्तुओं के होते हैं जो उस जल में घुली रहती हैं जैसे:—

१. प्रोटीनें—रक्त में तीन प्रकार की प्रोटीनें होती हैं जिनमें से एक को **फाइब्रिनजनक** कहते हैं।

---

* अङ्गरेज़ी भाषा का शब्द है।

‡ गैस (अङ्गरेज़ी भाषा) = वायव्य।

२. वसा या चरबी ।

३. अंगूरी शकर या द्राक्षौज (शकरें कई प्रकार की होती हैं जैसे अंगूरी शकर जो अंगूरादि मिष्ट फलों में पाई जाती है; गन्ने की शकर; खट्टे फलों की शकर; दुग्ध की शकर; मालटीय शकर। इन सब शकरों में केवल तीन ही मूलतत्त्व पाये जाते हैं—कर्बन, उदजन और ओषजन—परन्तु इनका संयोग किसी विशेष शकर में विशेष रीति से होता है)।

४. शर्कराजन या ग्लाइकोजन। इस वस्तु से रासायनिक परिवर्तन द्वारा अंगूरी शकर बन सकती है।

५. साधारण लवण (जो हम रोज़ खाते हैं) और अन्य कई प्रकार के लवण ।

६. ओषजन, कर्बनद्विओषित और नत्रजन गैसें।

७. यूरिया, यूरिक अम्लादि पदार्थ। ये शरीर में हर समय बनते रहते हैं और मूत्र, पसीने द्वारा शरीर से बाहर निकलते हैं।

८. अनेक प्रकार की विषनाशक (प्रति विष) और (शरीर के) शत्रुघातक वस्तुएँ ।

जमने पर (थक्का बँधने पर) रक्त में क्या परिवर्तन होता है ।

रक्त की तीन प्रोटीनों में से एक फाइब्रिनजनक कहलाती है। यह घुलनशील होती है और रक्तवारि में घुली रहती है। जब रक्त जमता है तो इस प्रोटीन में एक परिवर्तन होता है जिसके कारण वह अनघुल बन जाती है। इस अनघुल वस्तु को फाइब्रिन कहते हैं। घुलनशील न होने के कारण यह वस्तु

रक्तवारि से बाहर निकल आती है। इसका रक्तवारि से अलग होना ही रक्त के जमाव का कारण है।

रक्तवारि और रक्तरस में भेद

रक्तवारि रक्त के उस तरल भाग को कहते हैं जिसमें वे सब चीज़ें घुली हों जो रक्त में घुली रहती हैं; किसी प्रकार की नवीनता न हुई हो; कणों को छोड़ कर रक्त का शेष भाग रक्तवारि है।

रक्तरस उस तरल भाग को कहते हैं जो फाइब्रिन नामक प्रोटीन के अनघुल बनकर बाहर निकल जाने के पश्चात् बाक़ी रहता है।

यह समझना चाहिये कि जमने के समय रक्तवारि के दो भाग हो जाते हैं—रक्तरस और फाइब्रिन। फाइब्रिन से जिस के जाल में कुछ कण फँसे रहते हैं छिछड़ा बनता है:—
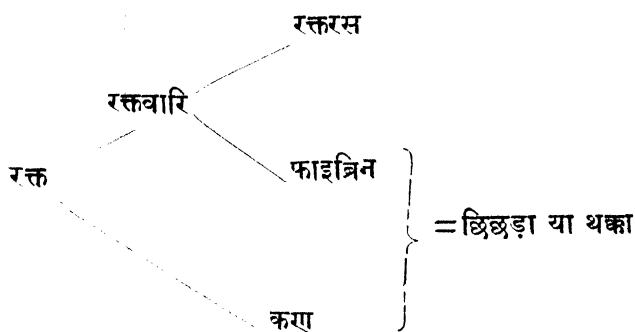
रक्त को शीघ्र जमाने वाले और उसके जमाव में विलंब डालने वाले कारण:—

वैसे तो रक्त शरीर से निकलने के पश्चात् शीघ्र जम ही जाता है परन्तु विशेष साधनों से इसका जमाव कुछ समय

तक रोका जा सकता है और कई एक साधन ऐसे भी हैं जिन से जमाव बहुत ही शीघ्र हो सकता है:—

(१) अधिक उष्णता से रक्त जल्दी जमता है ; ५६°—५७° शतांश का ताप (यह शरीर के ताप से कोई २० दरजे अधिक होता है) उसको तुरन्त ही जमा देगा। शीत के प्रभाव से वह देर में जमता है; यदि बरतन को बरफ़ से ठंढा करें तो रक्त १ घंटे या इससे अधिक देरी तक भी न जमेगा।

(२) खटिक योगिकों (चूना, पत्थर, खड़िया, मिट्टी आदि) के मेल से रक्त शीघ्र जम जाता है। कई जगह ऐसा रिवाज है कि जब चोट लगने के कारण शरीर से रक्त निकलने लगता है तो रक्त को बन्द करने के लिये पत्थर पीसकर लगा देते हैं। रक्त का बहना शीघ्र बन्द हो जाता है। खटिक योगिकों (सम्मेलनों) के अतिरिक्त और बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं जो उसको शीघ्र जमा दें।

कई एक रासायनिक वस्तुएँ ऐसी भी हैं जो उसको शीघ्र न जमने दें जैसे सोडियम सिट्रेट* नामक लवण।

(३) चिकने बरतन में रक्त देर में जमता है। यदि रक्त वाले बरतन को हम ख़ूब हिलायें या रक्त को लकड़ी या किसी और कड़ी और खुरदरी चीज़ से चलावें तो वह शीघ्र जम जावेगा।

आरोग्यता में रक्त शरीर के भीतर अपने आप नहीं जमता परन्तु कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जो शरीर के भीतर पहुँच कर

* अङ्गरेज़ी भाषा का शब्द।

उसको नालियों में जमा देती हैं जैसे—न्युक्लियो प्रोटीन। सर्प विष का भी रक्त के जमाव पर एक विशेष असर होता है; किसी श्रेणी के सर्प के विष में रक्त को शीघ्र जमाने वाली वस्तुएँ अधिक होती हैं; किसी में उसके जमाव में बिलंब डालने वाली।

टाइफौयड ज्वर में रक्त में जल्दी और शरीर के भीतर जमने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

(५) जोंक के सिर में कई छोटे छोटे थूक बनानेवाले यंत्र (ग्रन्थियाँ) होते हैं। इस रस में यह गुण है कि जब वह रक्त में मिल जाता है तो रक्त शीघ्र नहीं जमता। जब जोंक रक्त चूसती है तो यह रस उस जगह फैल जाता है जहाँ उसने अपना मुँह गुभा रक्खा है। यदि यह रस न हो तो रक्त उसके मुँह में जम जाय और उसको निगलने में कठिनता हो। जब जोंक त्वचा से हटा दी जाती है तो रक्त का बहना शीघ्र बन्द नहीं होता क्योंकि उसके जमाव में विलम्ब डालने वाली वस्तु वहाँ मौजूद है। जब यह स्थान खूब धो दिया जाता है तो रक्त जम जाता है और वहाँ से रक्त का बहना बंद हो जाता है। कभी कभी रक्त के बहाव को बंद करने के लिये रक्त जमाने वाली औषधि के लगाने की आवश्यकता होती है।

मृत्यु के पश्चात् रक्त की दशा

मृत्यु के पश्चात् रक्त जम जाता है, साधारणतः मृत्यु के कोई ४ घण्टे पीछे रक्त जमना आरम्भ होता है। जिन नलियों में वह जीवित अवस्था में रहता है वह मृत्यु के पश्चात् बहुधा

(विशेष कर शुद्ध रक्त वाली) खाली मिलती हैं, केवल कहीं कहीं उनमें थोड़ा सा रक्तरस और कुछ छिछड़े पाए जाते हैं। रक्तरस का अधिक भाग इन नलियों की दीवारों में से चू कर गुरुत्वाकर्षण के कारण शरीर के उन भागों में इकट्ठा हो जाता है जो सब से नीचे होते हैं, मुर्दा पीठ के बल पड़ा हो तो अधिक रक्तरस के इकट्ठा होने के कारण उसकी पीठ और कमर पिलपिली हो जाती है। रक्तकण टूट जाते हैं, लाल कणों का रंग रक्तरस में घुल जाता है जिससे उसका रंग लाल हो जाता है। मुर्दे के पिलपिले भागों को काटने से जो लाल तरल निकलता है वह लाल रक्तरस होता है न कि असली रक्त।

समस्त शरीर में रक्त कितना होता है

कुल रक्त का भार शरीर के भार का $\frac{1}{20}$ अंश के लगभग होता है। जिस मनुष्य का भार एक मन बीस सेर है, उसके शरीर में ३ सेर के लगभग रक्त होगा।

रक्त की सेलें (रक्तकण)

रक्त में तीन प्रकार की सेलें या कण पाए जाते हैं:—

(१) लाल रक्तकण (**रक्ताणु**)

(२) श्वेत य विवर्ण रक्तकण (**श्वेताणु**)

(३) सूक्ष्म रक्तकण

लाल रक्त कण (रक्ताणु) (चित्र १५४)

लाल सेलों की संख्या श्वेत सेलों से बहुत अधिक होती है। उनका आकार गोल होता है परन्तु वे दोनों तरफ़ से कुछ

पिचकी हुई होती हैं (जैसे रबड़ की गेंद को दो तरफ़ से अंगुलियों से दबाकर पिचका दें)। दोनों ओर से पिचके रहने के कारण करण की शकल कुछ कुछ चक्री जैसी हो जाती है। प्रत्येक करण की मोटाई $\frac{१}{१२८००}$ इंच और चौड़ाई अथवा लम्बई $\frac{१}{३२००}$ इंच होती है। रक्त का रंग इन्हीं करणों के कारण लाल होता है। एक घन सहस्रांश मीटर* (जो एक बूँद के साठवें अंश के बराबर होता है) रक्त में इनकी संख्या पुरुषों में पचास लाख और स्त्रियों में पैंतालीस लाख के लगभग होती है, नवजात शिशु में संख्या ६० लाख होती हैं। एक घन सहस्रांश मीटर $\frac{१}{१६३८०}$ घन इंच के बराबर होता है; इस हिसाब से १ घन इंच रक्त में (एक इंच लम्बे, एक इंच चौडे और एक इंच ऊँचे बरतन भर रक्त में) ८१,९००,०००,००० लाल करण होते हैं। जिस मनुष्य का भार १½ मन है उसके रक्त में १½ पद्म के लगभग लाल करण होते हैं; यह एक केवल अनुमान है, इसमें करोड़ों का फ़र्क़ हो सकता है। एक लालकरण का भार $\frac{१}{१०,०००,०००,०००}$ माशा होता है या यह समझो कि १० अरब लाल करणों का भार एक माशे के लगभग होता है। लाल करण का

---

* फ्रांस देश का लम्बाई नापने का पैमाना मीटर कहलाता है। एक मीटर ३९·३७ इंच के बराबर होता है; एक गज़ से कुछ बड़ा समझिये। मीटर के दसवें भाग को दशांशमीटर; सौवें भाग को शतांशमीटर और हज़ारवें भाग को सहस्रांशमीटर कहते हैं।

एक सहस्रांशमीटर　=　$\frac{१}{२५}$ इंच (लगभग)
एक शतांशमीटर　=　$\frac{२}{५}$ इंच　　,,
एक दशांशमीटर　　४ इंच

विज्ञान में नापने के लिये मीटर और उसके अंशों का प्रयोग होता है, गज़ और इंच बहुत काम में नहीं आते।

क्षेत्रफल '०००००००२ वर्ग इंच और घनफल '०००००००००००४४ घन इंच होता है। यदि १½ पदम लाल कण एक स्थान में पास पास रख दिये जावें (जो असंभव है) तो वे २३०० वर्ग गज़ स्थान घेरेंगे। इन अंकों से आप लाल कणों की सूक्ष्मता का कुछ अन्दाज़ा लगा सकते हैं। बिना अणुवीक्षण के उन्हें कोई कैसे देख सकता है।

अलग अलग कणों का रंग पीला सा होता है परन्तु जब बहुत से कण इकट्ठे और एक दूसरे के ऊपर पड़े हुए देखे जाते हैं तो रंग लाल दिखाई देता है (यह एक भौतिक घटना है)।

स्तनधारी अर्थात् दुग्ध पिलाने वाले प्राणियों (जैसे मनुष्य, घोड़ा, गाय, बकरी, कुत्ता, आदि) के लाल कणों में मींगी नहीं दिखाई देती। पृष्ठवंशधारियों * की शेष श्रेणियों

---

* प्राणी वर्ग के दो विभाग हैं :—

१ पृष्ठवंशविहीन विभाग (इस विभाग के प्राणियों में रीढ़ नहीं होती जैसे अमीबा, केंचुवा, घोंघा, मक्खी इत्यादि)

२ पृष्ठवंशधारी विभाग (इस विभाग के प्राणियों में रीढ़ होती है) इस विभाग में पाँच श्रेणियाँ हैं।

१ मत्स्य श्रे० (मछली)

२ मंडूक श्रे० (मेंढकादि)

३ सर्प, श्रे० (सर्प छिपकली आदि)

४ पक्षी श्रे० (कबूतर, चिड़िया)

५ स्तनधारी श्रे० (अपनी छाती से अपनी संतान को दुग्ध पिलाने वाले प्राणी जैसे घोड़ा, गाय, बकरी, बानर, चाम चिड़िया, ह्वेल मछली, न्योला, मनुष्य)

के रक्त के लाल कणों में मींगियाँ होती हैं [जैसे पत्ती श्रेणी, कबूतर, चील, तोता; सर्पश्रेणी, सर्प, छिपकली, कछुआ; मंडूकश्रेणी (जल और भूमि दोनों जगह रहनेवाले प्राणी) मेंढक; मत्स्यश्रेणी जैसे मछली] देखो चित्र १५३

स्तनधारियों के लाल कणों में मींगी न होने के कारण

चित्र १५३ मेंढक के रक्त के मींगीदार अण्डाकार लाल कण
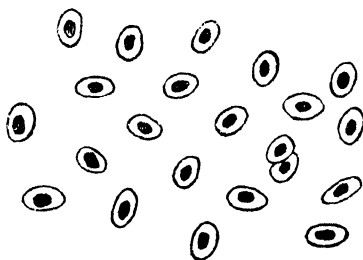
उनके रक्त को हम और प्राणियों (मेंढक, मछली, पत्ती इत्यादि) के रक्त से पहचान सकते हैं। यह तो नहीं बतला सकते कि यह रक्त मछली का है या किसी चिड़िया का या सर्प का, परन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि यह रक्त दुग्ध पिलाने वाले प्राणी का है या नहीं।

स्तनधारियों में केवल ऊँट की श्रेणी के प्राणियों को छोड़ कर और सभों के लाल कण दोनों तरफ़ से पिचके हुए अर्थात् युगलनतोदर होते हैं। ऊँट की श्रेणी के जानवरों के लाल कण दोनों ओर से उभरे हुए अर्थात् युगलोन्नतोदर होते हैं।

स्तनधारियों को छोड़कर अन्य जितने रीढ़दार प्राणी हैं (मछली, मेंढक; पत्ती इत्यादि) उन सभों के लाल कण मींगीदार

अंडाकार और युगलोन्नतोदर होते हैं। मनुष्य के लाल कण चक्रियों की भाँति गोल परन्तु दोनों तरफ़ से पिचके हुए और मींगी रहित होते हैं।

गर्भ में चतुर्थ मास तक जितने लाल कण भ्रूण के शरीर में बनते हैं उन सभों में मींगी होती है। इस कारण इस समय के रक्त को और जीवधारियों (जैसे पक्षी) के रक्त से पहिचानना कठिन है। चौथे मास के पश्चात् जितने लाल कण बनते हैं उनमें मींगी नहीं होती और जिनमें थी उनमें से भी जाती रहती है।

लाल कणों में एक रङ्ग होता है जिसको रक्तग्लोबिन या **कणरञ्जक** कहते हैं। जब लाल कण टूटते हैं तो यह रङ्ग रक्त-वारि या सीरम में घुल जाता है। कणरञ्जक एक प्रकार की प्रोटीन है। इस प्रोटीन में कर्बन, ओषजन, उदजन, गन्धक, नत्रजन के अतिरिक्त लोहा भी होता है। मलेरिया ज्वर (तैय्या, चौथिया) में इस रोग को उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म जन्तु इन कणों के भीतर घुस जाते हैं और उनका विनाश करते हैं। बहुत से कणों के टूटने से उनकी संख्या कम हो जाती है, संख्या कम होने से रक्त का रङ्ग हलका हो जाता है और मनुष्य का चेहरा पीला सा पड़ जाता है और नाखून सफेद दिखाई देने लगते हैं।

श्वेत या विवर्ण कण (श्वेताणु) (चित्र १५५)

इन कणों का रङ्ग जल के रङ्ग के सदृश होता है, इसी कारण ये विवर्ण कहलाते हैं; ये कण लाल कणों से कुछ बड़े होते हैं। उनमें मींगियाँ होती हैं जो विविध रूपों की होती हैं। किसी में गोलाकार, किसी में जूते की नाल की भाँति मुड़ी हुई और किसी

में उसके कई छोटे छोटे टुकड़े होते हैं जो एक दूसरे से सूक्ष्म तारों द्वारा जुड़े रहते हैं।

एक बूँद के साठवें भाग में अर्थात् एक घन सहस्रांश मीटर रक्त में ये ७००० से १०००० तक पाये जाते हैं। ५०० या ६०० लाल कणों पीछे एक श्वेत कण होता है। काला अज़ार ज्वर (यह रोग आसाम, बङ्गाल, मदरास प्रान्तों में अधिक होता है। संयुक्त प्रान्त और पंजाब में कम) में इस रोग के जन्तु इन कणों पर आक्षेप करते हैं, इस कारण इस रोग में इनकी संख्या घट जाती है। कुछ रोगों में (जैसे फुप्फुस प्रदाह) इनकी संख्या अधिक हो जाती है यहाँ तक कि कभी कभी एक घन सहस्रांश मीटर रक्त में ६०००० तक भी मिलते हैं।

श्वेत कण की लम्बाई $\frac{१}{२५००}$ इंच के लगभग होती है। जीवित कणों की आकृति सदा एक ही सी नहीं रहती; अमीबा की भाँति उनकी आकृति बदलती रहती है, अभी गोलाकार हैं तो क्षण भर पीछे त्रिकोण हो जाते हैं, पल भर पीछे उनमें अंगुलियाँ सी निकलने लगती हैं, ज़रा देर पीछे फिर पूर्व दशा को प्राप्त करते हुए दिखाई देते हैं। श्वेत कणों की इस प्रकार की गति को अमीबावत् गति कहते हैं। जब ये कण गति नहीं करते या जब वे मर जाते हैं तो उनका आकार गोल दिखाई देता है।

रक्त में विशेष कर चार प्रकार के श्वेत कण पाये जाते हैं :—

१. **क्षुद्र लसीकाणु**। ये लाल कणों से कुछ ही बड़े होते हैं। प्रत्येक कण में एक बड़ी गोल मींगी होती है। मींगी के चारों ओर थोड़ा सा जीवोज रहता है। इनकी संख्या प्रति सैकड़ा २० से २५ तक होती है। (देखो चित्र १५५)

२. **बृहत् लसीकाणु** । ये छोटे **लसीकाणुओं** से बड़े होते हैं; इनका परिमाण लाल कणों से दुगुना या तिगुना होता है। किसी कण में गोल मींगी होती है, किसी में अंडाकार और किसी में वृक्काकार (गुरदे की शकल की या लोबिये के बीज के समान)। मींगी के चारों ओर बहुत सा जीवोज होता है। प्रति सैकड़ा इनकी संख्या ३ से ५ तक होती है (देखो चित्र १५५)

(३) **बहुरूप मींगीयुक्त श्वेताणु** । इन कणों की मींगी कई प्रकार के रूप धारण करती है। अंग्रेज़ी के E, V, S, U, Z अक्षरों में से किसी के आकार की हो सकती है। बहुधा मींगी के कई छोटे छोटे भाग होते हैं जो एक दूसरे से सूक्ष्म तारों द्वारा जुड़े रहते हैं। इन कणों में अमीबावत् गति करने की शक्ति और श्वेत कणों की अपेक्षा अधिक होती है; उनके जीवोज में बहुत से छोटे छोटे दाने भी पाए जाते हैं। कणों को विधिपूर्वक रंगने से ये दाने रंग ग्रहण कर लेते हैं। इन कणों की संख्या प्रति सैकड़ा ६७ से ७० तक होती है। (देखो चित्र १५५)

(४) **अम्लरंगेच्छु श्वेताणु** । ये कण बहुरूपी मींगी-वालों से कुछ बड़े होते हैं। इन कणों की मींगी या तो गोल होती है या नाल की भाँति मुड़ी हुई; कभी कभी उसके कई टुकड़े होते हैं जो एक दूसरे से तारों द्वारा जुड़े रहते हैं। इन के प्रोटोप्लाज़्म में बहुत से मोटे मोटे दाने होते हैं जिनमें यह गुण है कि जब कण ईओसीन* आदि अम्ल रंगों से रंगे जाते हैं तो

*एक प्रकार का रंग है। इसकी प्रतिक्रिया अम्ल होती है।

वे खूब गहरा रंग पकड़ते हैं। इन कणों के लिये अम्ल रंगेच्छु शब्द का प्रयोग इसी कारण होता है। ये दाने बहुरूप मींगी वाले कणों के दानों से अधिक मोटे होते हैं। इन कणों की संख्या प्रति सैकड़ा २ से ४ तक (देखो चित्र १५५) होती है।

कभी कभी एक या दो और प्रकार के श्वेत कण भी पाए जाते हैं।

रक्त की अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा करने की विधि

इस विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन तो बड़ी पुस्तकों में मिलेगा परन्तु हम यहाँ दो तीन बातें लिखते हैं। रक्त अँगुली से या कान की लौर से सुई चुभाकर निकाला जाता है; रक्त निकालने से पहले अँगुली को धो कर और सुई को तपाकर या किसी और विधि से शुद्ध कर लेते हैं। फिर एक तीन इंच लम्बी और एक इंच चौड़ी स्वच्छ काँच की पट्टी पर ज़रा सा रक्त लगा लेते हैं। फिर दूसरी पट्टी के छोटे किनारे या सुई द्वारा इस रक्त को एक पतली तह में फैला देते हैं। जब यह तह सूख जाती है तो उसको विशेष प्रकार के रंगों से यथाविधि रँगते हैं। इस पट्टी को धोकर सुखा लेते हैं; और फिर उसको अणुवीक्षण से देखते हैं।

रँगने से कणों की परीक्षा अच्छी तरह होती है। बहुत सी चीज़ें जो बिना रँगने के नहीं दिखाई देतीं अब साफ़ साफ़ दिखाई देने लगती हैं।

रक्त की परीक्षा में क्या क्या बातें देखी जाती हैं

१. रक्त का रंग, गुरुत्व; वह शीघ्र जमता है या देर में।

२. रक्त की प्रतिक्रिया; कम क्षारीय है या अधिक क्षारीय।

३. लाल और श्वेत कणों की प्रति सहस्रांश मीटर संख्या; श्वेत कणों की संख्या की लाल कणों की संख्या से निस्बत (देखो पृष्ठ २७१)।

४. लाल कण टूटे हुए तो नहीं हैं; किसी विशेष प्रकार के लाल कण तो नहीं दिखाई देते। उनके भीतर रोग उत्पादक जन्तु तो नहीं हैं [मलेरिया ज्वर या मौसमी बुखार के जन्तु इन कणों के भीतर रहते हैं]।

५. चारों प्रकार के श्वेत कण प्रति सैकड़ा कितने हैं; किसी विशेष प्रकार के श्वेत कण घट बढ़ तो नहीं गए। असामान्य प्रकार के कण तो दिखाई नहीं देते; कणों में रोग उत्पादक जन्तु तो नहीं हैं ?

६. रक्तवारि में किसी प्रकार के रोग उत्पादक जन्तु हैं या नहीं।

७. रक्त का रासायनिक संगठन :—रक्त शर्करा जितनी होनी चाहिये उतनी है या कम या ज्यादा; रक्त में खटिक की मात्रा कम है या ज्यादा इत्यादि।

रक्त की परीक्षा से बहुत से रोगों के निदान में सहायता मिलती है।

चित्र १२४ रक्ताणु (तीन श्वेताणु भी हैं)
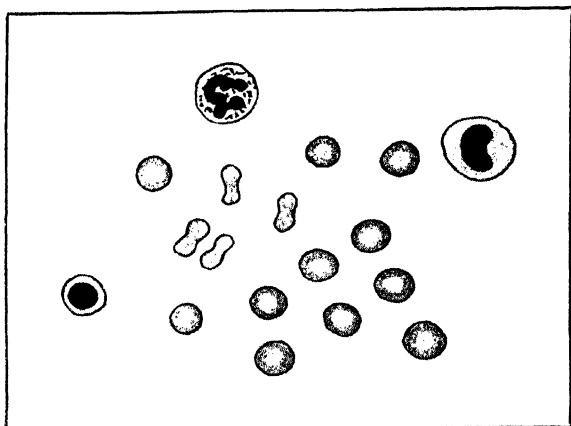
चित्र १२५ श्वेताणु
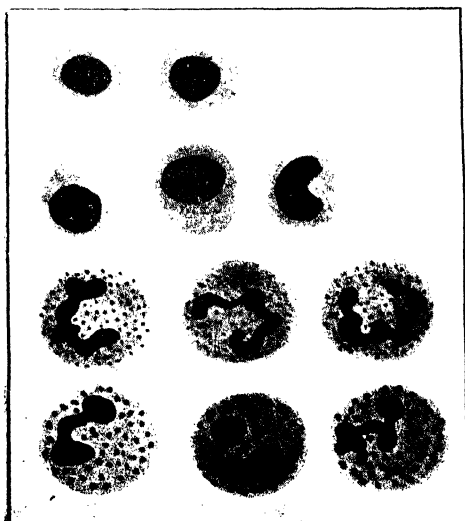
लघु लसीकाणु

वृहत्‌लसीकाणु

बहुरूप मींगीयुक्त श्वेताणु

अम्लरंगेच्छु श्वेताणु

पृष्ठ २७४ के सम्मुख

चित्र १५६ हृदय
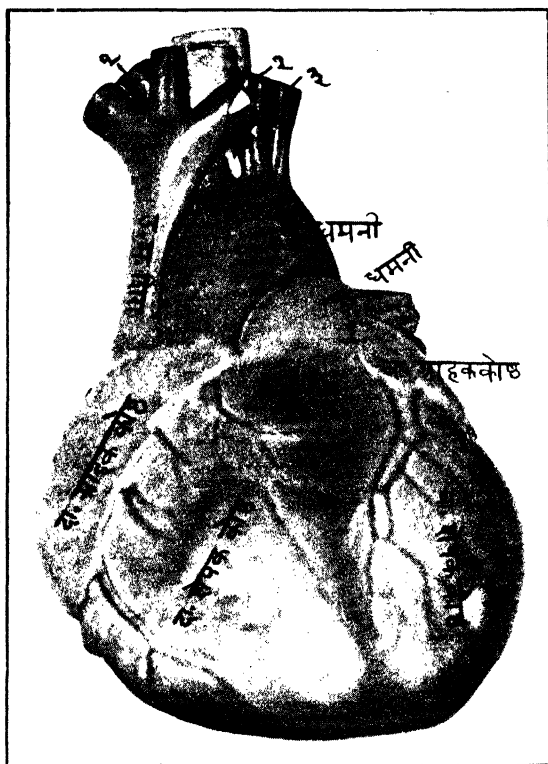
१, २, ३ = महाधमनी की तीन बड़ी शाखाएँ

पृष्ठ २७५ के सम्मुख

अध्याय १०

रक्तवाहक संस्थान

शरीर में रक्त नलियों के भीतर रहता है। रक्त की नलियाँ दो प्रकार की हैं :—

१. वे नलियाँ जिनकी दीवारें मोटी होती हैं और जिनके भीतर शुद्ध रक्त रहता है इन नलियों को **धमनियाँ** कहते हैं।

२. वे नलियाँ जिनकी दीवारें पतली होती हैं और जिनमें अशुद्ध रक्त रहता है। ये **शिराएँ** कहलाती हैं।

हृदय (चित्र १५६)

रक्त सर्वदा बहता रहता है। रक्त परिचालक यन्त्र का नाम हृदय है। यह अंग अनैच्छिक मांस से निर्मित है और दोनों फुप्फुसों के बीच में वक्ष के भीतर रहता है। जवान मनुष्य का हृदय कोई ४½ इंच लम्बा, ३½ इंच चौड़ा और २½ इंच मोटा होता है और उसका भार ३½ छटाँक के लगभग होता है।

किसी मनुष्य का हृदय आकार, परिमाणादि में उसकी बंद मुट्ठी से बहुत कुछ मिलता है। यदि आप अपनी बाँई मुट्ठी को छाती पर इस प्रकार रक्खें कि कलाई का वह भाग जो हथेली के समीप है आपके बाएँ स्तन से १¼ इंच नीचे रहे और अँगुलियों के सब से बड़े पोर्वे ऊपर को और दाहिने कन्धे की तरफ़ को रहें तो आपको साधारण रीति से यह मालूम हो जायगा कि हृदय छाती में कहाँ रहता है और उस की शकल किस प्रकार की होती है।

हृदय का अधिक अंश मध्यरेखा के बाईं ओर अवस्थित है और उसके दाहिनी ओर दाहिना और बाईं ओर बायाँ फुफ्फुस रहता है। उसके सामने उरोस्थि और बाईं ओर की दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं उपशुका रहती हैं; उसके पीछे पीठ के पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें मोहरों के गात्र और उनके बीच की चक्रियाँ रहती हैं परन्तु इन मोहरों और हृदय के बीच में बृहत् धमनी और अन्नप्रणाली पड़ी रहती हैं।

हृदय एक सौत्रिक तन्तु से निर्मित आवरण से ढका रहता है। यह आवरण एक थैली के समान होता है जिसके भीतर हृदय रहता है; इसको **हृदयकोष** या हृदावरण कहते हैं। आवरण का भीतरी पृष्ठ बहुत चिकना और चमकदार होता है (चित्र १४८ में २९, ३०)।

हृदय मांस से निर्मित एक कोष्ठ है जिसके भीतर रक्त भरा रहता है। यह कोष्ठ भीतर से एक खड़े (**ऊर्ध्व**) मांस के परदे द्वारा दाहिनी और बाईं दो कोठरियों में विभक्त है; इन दोनों कोठरियों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्रत्येक कोठरी की दो मंज़िलें हैं; ऊपर की मंज़िल को **ग्राहक कोष्ठ** और नीचे की मंज़िल को **क्षेपक कोष्ठ** कहते हैं। जिस छत द्वारा ऊपर की मंज़िल नीचे की मंज़िल से जुदा होती है वह पतले पतले किवाड़ों से बनी है। ये किवाड़ सौत्रिक तन्तु से निर्मित हैं और इस प्रकार लगे हुए हैं कि नीचे की तरफ़ को तो खुलते हैं ऊपर की तरफ़ को नहीं। दाहिनी ओर तीन तिकोनिये किवाड़ होते हैं, बाईं ओर केवल दो।

इस प्रकार हृदय में चार कोठरियाँ होती हैं (चित्र १५७):—

१—दाहिना ग्राहक कोष्ठ, २—दाहिना क्षेपक कोष्ठ, ३—बायाँ ग्राहक कोष्ठ, ४—बायाँ क्षेपक कोष्ठ (देखो चित्र १५६)। दोनों दाहिनी और बाईं कोठरियों के बीच में मांस का परदा है यह समझो कि इन कोठरियों की पास पास की दीवारें मिली हुई हैं। दाहिने ग्राहक और दाहिने क्षेपक कोष्ठ के बीच में दो किवाड़ हैं। *

किवाड़ों के नीचे की ओर को खुलने के कारण रक्त ऊपर से नीचे को अर्थात् ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में तो जा सकता है; नीचे से ऊपर को नहीं जा सकता। किवाड़ों से बने हुए इस यन्त्र का नाम **कपाट** है (चित्र १५९)।

ग्राहक कोष्ठों की दीवारें क्षेपक कोष्ठों की दीवारों से पतली होती हैं। बाएँ क्षेपक कोष्ठ की दीवारें दाहिने से दुगुनी तिगुनी मोटी होती हैं (चित्र १५७, १५८)

हर एक क्षेपक कोष्ठ की समाई (धारणशक्ति) १¼—१½ छटाँक रक्त के लगभग होती है। ग्राहक कोष्ठों की समाई कुछ कम होती है।

दाहिने ग्राहक कोष्ठ में दो नलियाँ लगी रहती हैं एक ऊपर के भाग में दूसरी नीचे के भाग में; ये दो शिराएँ हैं। ऊपर वाली **ऊर्ध्वमहाशिरा** और नीचेवाली **निम्नमहाशिरा** कहलाती हैं।

*यदि आप को मनुष्य का हृदय देखने को न मिल सके तो चिकवे (मांस बेचने वाले) की दूकान से बकरे का हृदय लेकर देख लीजिये। उसकी बनावट मनुष्य के हृदय जैसी ही होती है।

चित्र १५७ की व्याख्या

इस चित्र में हृदय की भीतरी बनावट दिखलाई गई है। चारों कोष्ठ दिखाई दे रहे हैं ; दोनों ग्राहक और दोनों क्षेपक कोष्ठों के बीच में रहने वाले परदे भी दिखाई देते हैं :—

१ = महा धमनी	९ = दाहिनी हार्दिकी धमनी
२ = बाईं फुप्फुसीया शिराएँ	१० = दाहिना ग्राहक क्षेपक कपाट
३ = बायां ग्राहक कोष्ठ	११ = ग्राहकांतरिका प्राचीर
४ = महा हार्दिकी शिरा	१२ = अंडाकार खात का किनारा
५ = बायां ग्राहक-क्षेपक कपाट	१३ = दाहिना ग्राहक कोष्ठ
६ = बायीं कपाटीया पेशी (तीन)	१४ = अंडाकार खात
७ = क्षेपेकांतरिका प्राचीर	१५ = ऊर्ध्व महा शिरा
८ = दाहिनी कपाटीया पेशी (दो)	१६ = दाहिनी फुप्फुसीया शिराएँ

ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच में जो कपाट लगे हैं उनकी शिखरें क्षेपक कोष्ठों की दीवारों से मांस और पतली पतली कंडराओं द्वारा बँधी रहती हैं (चित्र में ५, ६, ८, १०); जब क्षेपक कोष्ठ फैलता है और ग्राहक कोष्ठ सिकुड़ता है तो कपाटीया पेशियां सिकुड़ कर छोटी हो जाती हैं जिसके कारण कपाट पूरे खुल जाते हैं ; जब क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ता है तो कपाटीया पेशियों का प्रसार होता है जिसके कारण द्वार बन्द हो जाता है और रक्त फिर उलटा ग्राहक कोष्ठ में नहीं जा सकता। जब कपाट खराब हो जाते हैं तो थोड़ा बहुत रक्त उलटा लौटने लगता है (इसको रक्त अपसरण या रक्त अपक्रमण कहते हैं)

ऊर्ध्वमहाशिरा अशुद्ध रक्त को शिर, ऊर्ध्व शाखाओं और वक्ष से इकट्ठा करके लाती है। निम्नमहाशिरा शरीर के शेष भागों से अर्थात् उदर और निम्न शाखाओं से रक्त को इकट्ठा करके लाती है।

दाहिने क्षेपक कोष्ठ से एक नली निकलती है; इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं जिनमें से एक दाहिने फुप्फुस को और दूसरी बाएँ फुप्फुस को जाती है। ये **फुप्फुसीया धमनी** हैं (देखो चित्र १५६ फु० धमनी) जहाँ इस धमनी का आरम्भ होता है वहाँ उसके भीतर तीन अर्धचन्द्राकार किवाड़ों से निर्मित एक कपाट लगा रहता है; इस कपाट का प्रयोजन यह है कि रक्त कोष्ठ से धमनी में तो जा सके परन्तु उलटा न लौटे (चित्र १५९ फु० १, २, ३)।

चित्र १५८ की व्याख्या :—दोनों क्षेपक कोष्ठ शिखर से कोई एक इंच ऊपर काटी गई हैं ; अ = नीचे का छोटा भाग ऊपर से देखा गया है ; क = ऊपर का बड़ा भाग नीचे से देखा गया है । १ = बायाँ क्षेपक कोष्ठ ; २ = दाहिना क्षेपक कोष्ठ ; ३ = दोनों कोष्ठों के बीच का परदा ; ४ = बाएँ क्षेपक कोष्ठ की मोटी दीवार ; ५ = दाहिने क्षेपक कोष्ठ की पतली दीवार ।

चित्र १५९ की व्याख्या :—दोनों ग्राहक कोष्ठ और फुप्फुसीया धमनी और महा धमनी बिलकुल काटकर अलग कर दिये गये हैं, अब शेष हृदय का ऊपर का भाग ऐसा दिखाई देता है ; द = दाहिने ग्राहक और दाहिने क्षेपक कोष्ठ के बीच का रास्ता ; यहाँ एक तीन किवाड़ वाला कपाट है १, २, ३ ये तीन किवाड़ हैं । ब = बाएँ ग्राहक और बाएँ क्षेपक कोष्ठ के बीच का रास्ता ; यहाँ (१, २) दो किवाड़ वाला कपाट है । ध = महा धमनी का आरम्भिक मुख यहाँ (१, २, ३) तीन अर्ध चन्द्राकार किवाड़ लगे हैं ।

बाएँ ग्राहक क्षेपक कोष्ठ में चार नलियाँ लगी रहती हैं। इनमें से दो दाहिने और दो बाएँ फुप्फुस से आती हैं; ये **फुप्फुसीया शिराएँ** हैं (चित्र १६२)। जहाँ ये हृदय से जुड़ी रहती हैं वहाँ इन के भीतर कोई कपाट नहीं होता।

चित्र १६० हृदय के दाहिने भाग के कपाट
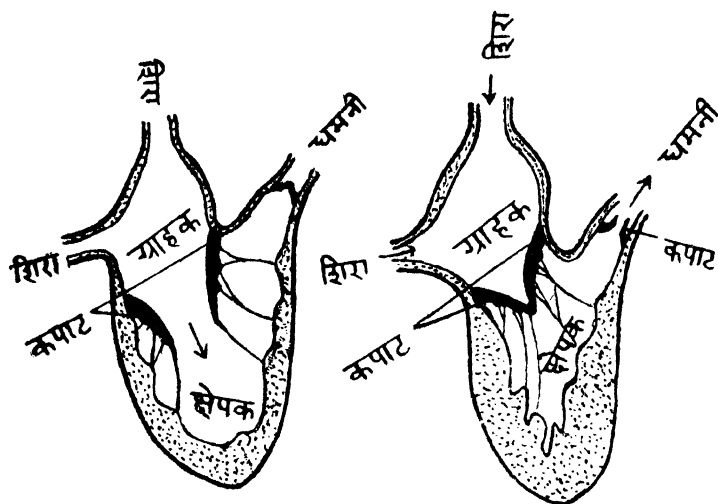
(१) में ग्राहक कोष्ठ सिकुड़कर रक्त को क्षेपक कोष्ठ में ढकेल रहा है ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच के किवाड़ खुले हुए हैं।

(२) में क्षेपक कोष्ठ सिकुड़ रहा है; किवाड़ जो पहले खुले थे अब बन्द हो गए हैं। ग्राहक कोष्ठ में रक्त शिरा से आ रहा है। क्षेपक कोष्ठ से रक्त निकल कर फुप्फुसीया धमनी में जा रहा है।

हमारे शरीर की रचना—चित्र १५७ हृदय की भीतरी रचना
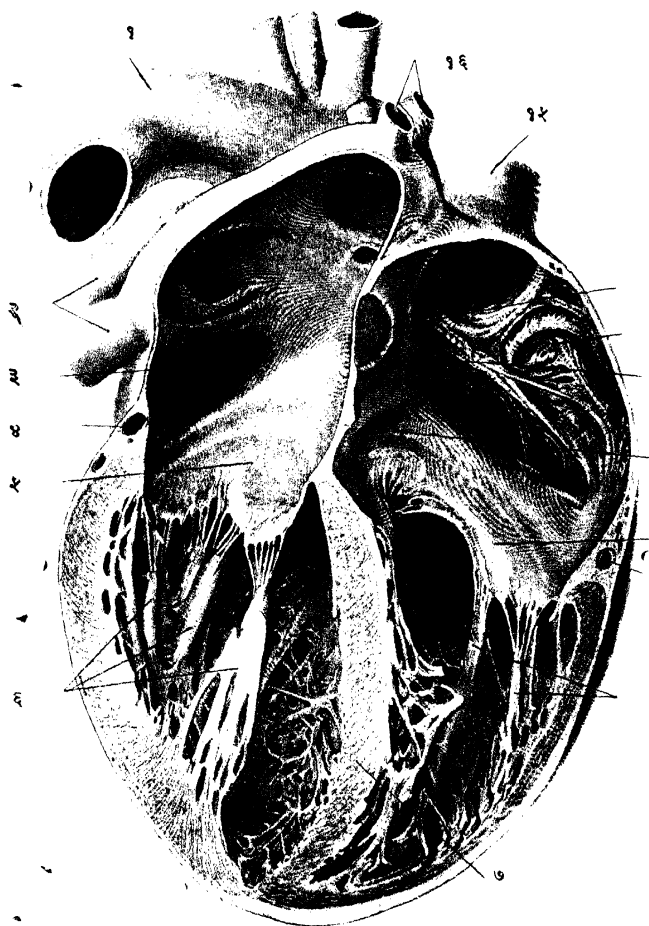
Heitzmann—Zucker Kandl's Atlas

चित्र १५८ हृदय का व्यत्यस्त काट

अ क

चित्र १५६
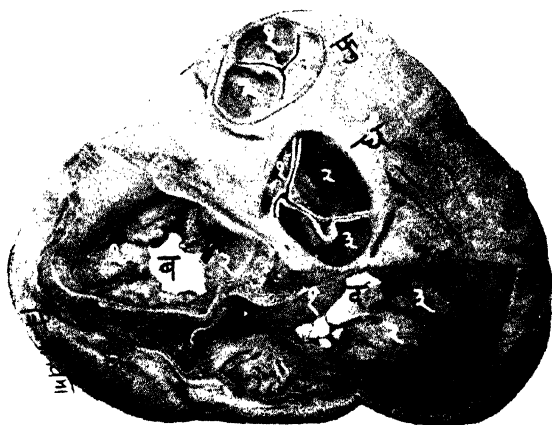
पृष्ठ २७६ के सम्मुख

चित्र १६१
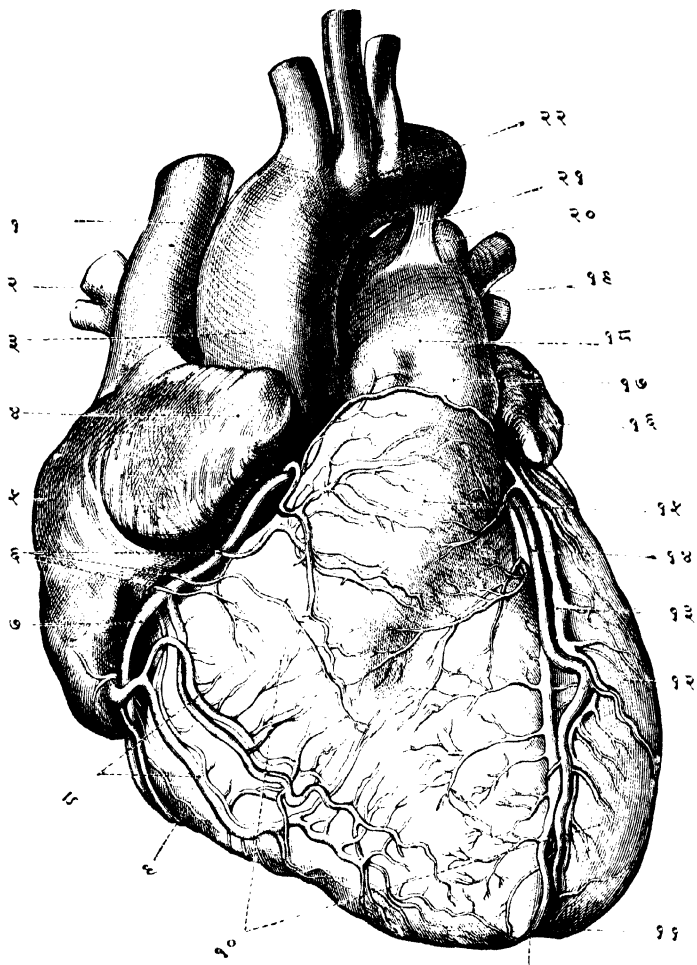
(From Toldt's Atlas — By permission)

पृष्ठ २८१ के सम्मुख

बाईं क्षेपक कोष्ठ के पिछले भाग से एक बड़ी मोटी नली निकलती है; यह **वृहत् धमनी** (या महाधमनी) है। फुप्फुसीया धमनी को छोड़ कर शरीर में जितनी धमनियाँ हैं वे सब वृहत् धमनी से निकलती हैं; जहाँ यह धमनी क्षेपक कोष्ठ से निकलती है वहाँ उसके भीतर तीन अर्धचन्द्राकार किवाड़ों से निर्मित एक कपाट होता है (चित्र १५९ ध १, २, ३)। इस कपाट के कारण रक्त कोष्ठ से धमनी में जा सकता है, धमनी से कोष्ठ में नहीं।

चित्र १६१ हृदय जैसा कि सामने से दिखाई देता है:—

१ = ऊर्ध्व महाशिरा
२ = दाहिनी उर्ध्व फुप्फुसीया शिरा
३ = उद्गामी महाधमनी
४ = दाहिने ग्राहक कोष्ठ का शिखर
५ = दाहिना ग्राहक कोष्ठ
६ = हार्दिकी शिराएँ (सबसे छोटी)
७ = दाहिनी हार्दिकी धमनी
८ = सामने की हार्दिकी शिराएँ
९ = दाहिना क्षेपक कोष्ठ
१० = हृदय का सामने का पृष्ठ
११ = हृदय का शिखर
१२ = बायां क्षेपक कोष्ठ
१३ = हृदय की महाशिरा
१४ = बाई हार्दिकी धमनी की अधोगा शाखा
१५ = दाहिने क्षेपक कोष्ठ का वह भाग जहाँ से फुप्फुसीया धमनी का आरम्भ होता है
१६ = बाएँ ग्राहक कोष्ठ का शिखर
१७ = फुप्फुसीया धमनी का फूला हुआ भाग
१८ = मूल फुप्फुसीया धमनी
१९ = बाई ऊर्ध्व फुप्फुसीया शिरा
२० = बाईं फुप्फुसीया धमनी
२१ = धमनी संयोजक
२२ = महाधमनी की महराब

चित्र १६२ हृदय जैसा कि पीछे से दिखाई देता है—

१ = महा धमनी
२ = बाईं फुप्फुसीया धमनी
३ = बाईं फुप्फुसीया शिराएँ
४ = तिर्यक् शिरा
५ = बायाँ ग्राहक कोष्ठ
६ = हृदय की महाशिरा
७ = बाईं हार्दिकी धमनी की पिछली शाखा की एक शाखा
८ = ग्राहक-क्षेपक कोष्ठांतरिका परिखा
९ = पिछली हार्दिकी शिराएँ
१० = हृदय का शिखर
११ = पिछला पृष्ठ
१२ = पाश्चात्य कोष्ठांतरिका धमनी
१३ = मध्य हार्दिकी शिरा
१४ = छोटी शिरा
१५ = दाहिनी हार्दिकी धमनी
१६ = महा हार्दिकी शिरा का अन्तिम फूला हुआ भाग
१७ = दाहिना ग्राहक कोष्ठ
१८ = परिखा
२० = अधोगा महाशिरा
२१ = ग्राहक कोष्ठांतरिका परिखा (पिछली)
२२ = बायाँ ग्राहक कोष्ठ
२३ = दाहिनी फुप्फुसीया शिराएँ
२४ = दाहिनी फुप्फुसीया धमनी
२५ = ऊर्ध्व महाशिरा

चित्र १६२
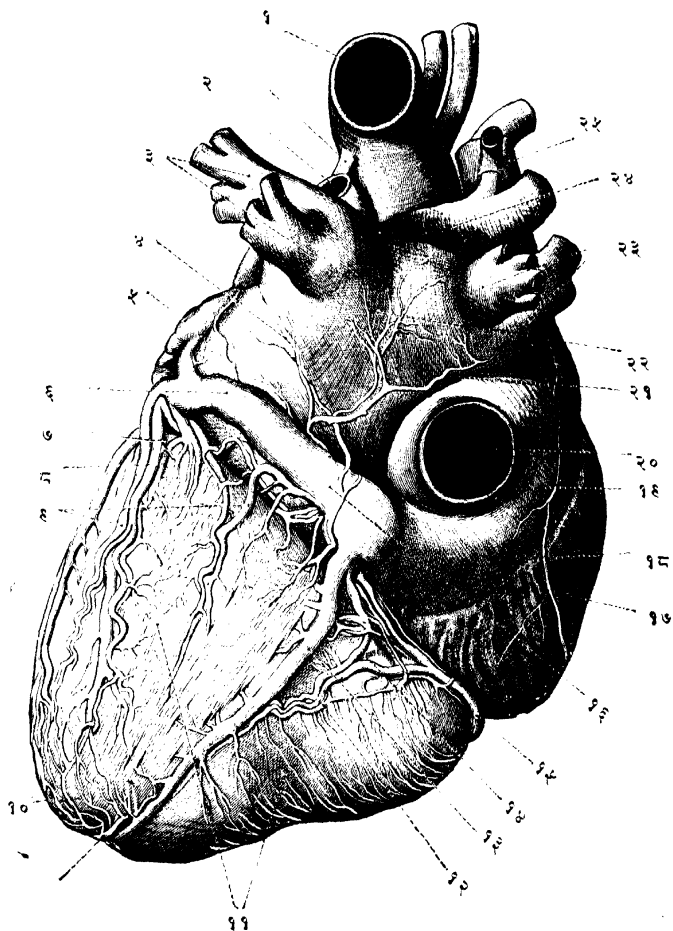
(From Toldt's Atlas — By permission)

पृष्ठ २८२ के सम्मुख

हृदय के कपाट (या कवाट) (देखो चित्र १५७, १५९)

हृदय में चार कपाट होते हैं :—

१. दाहिने ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच में
२. बाएँ " " "
३. फुप्फुसीया धमनी में
४. बृहत् धमनी में

कपाटों के कारण रक्त दाहिने क्षेपक कोष्ठ से दाहिने ग्राहक कोष्ठ में और फुप्फुसीया धमनी से दाहिने क्षेपक कोष्ठ में लौट कर नहीं जा सकता; इसी प्रकार बाएँ क्षेपक कोष्ठ से बाएँ ग्राहक कोष्ठ में और बृहत् धमनी से बाएँ क्षेपक कोष्ठ में नहीं लौट सकता।

(कभी कभी कपाटों के किवाड़ ख़राब हो जाते हैं तब रक्त उलटा लौटने लगता है इस को रक्त अपक्रमण कहते हैं।)

हृदय का कार्य

हृदय कभी एक सा नहीं रहता; वह कभी सिकुड़ता है और कभी फैलता है। सिकुड़ने और फैलने से उसकी धारणशक्ति घटती और बढ़ती रहती है।

रक्त शरीर के सब अंगों को आवश्यक वस्तुएँ दे कर दो महाशिराओं द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठ में वापिस आता है। ज्यों ही यह कोठरी रक्त से भरती है, वह सिकुड़ने लगती है; सिकुड़ने से उसकी धारणशक्ति (समाई) कम हो जाती है; इसलिये रक्त उसमें से निकल कर क्षेपक कोष्ठ में चला जाता है। जब रक्त क्षेपक कोष्ठ में पहुँचने लगता है तो कपाट के किवाड़ ऊपर को उठ कर बंद होने लगते हैं और जब यह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है तो वे अच्छी तरह से बंद हो जाते हैं। कपाट के बंद हो जाने से

रक्त ग्राहक कोष्ठ में लौट कर नहीं जा सकता। दाहिने ग्राहक कोष्ठ से फुप्फुसीया धमनी निकलती है; रक्त उसमें चला जाता है और उसकी शाखाओं द्वारा फुप्फुसों में पहुँचता है।

फुप्फुस रक्त को शुद्ध करने वाले अंग हैं। इन अंगों में शुद्ध होकर रक्त चार नलियों द्वारा (२ शिराएँ दाहिने फुप्फुस से आती हैं और दो बाएँ से चित्र १५७) बाएँ ग्राहक कोष्ठ में लौट आता है। भर जाने पर यह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है और रक्त उसमें से निकल कर बाएँ क्षेपक कोष्ठ में प्रवेश करता है। रक्त के इस कोष्ठ में पहुँचने पर कपाट के किवाड़ ऊपर उठकर बंद होने लगते हैं और जब कोष्ठ सिकुड़ता है तो वे पूरे तौर से बंद हो जाते हैं जिसके कारण रक्त लौट कर ग्राहक कोष्ठ में नहीं जा सकता।

क्षेपक कोष्ठ के सिकुड़ने से रक्त वृहद्धमनी में जाता है। वृहद्धमनी से बहुत सी शाखाएँ फूटती हैं जिनके द्वारा रक्त समस्त शरीर में पहुँचता है।

हृदय के कोष्ठ रक्त को आगे को ढकेल कर फैलने लगते हैं और शीघ्र पूर्व दशा को प्राप्त होते हैं। इतने में वे रक्त से भर कर फिर सिकुड़ने लगते हैं और इस रक्त को आगे को ढकेलकर फैल जाते हैं। यह सिकुड़ने और फैलने का सिलसिला जीवन भर रहता है; हृदय का कोई कोष्ठ पल भर के लिये भी ख़ाली नहीं रहता। दोनों ग्राहक कोष्ठ एक साथ ही रक्त से भरते हैं और फिर एक साथ ही सिकुड़ते हैं; इसी तरह दोनों क्षेपक कोष्ठ भी एक ही साथ भरते और सिकुड़ते हैं। कभी कभी रोगों के कारण एक कोष्ठ दूसरे से पहले सिकुड़ने लगता है।

कोष्ठों के सिकुड़ने को **आकुंचन** या **संकोच** कहते हैं और

फैल कर पूर्व दशा को प्राप्त होने को **प्रसार**। पहिले ग्राहक कोष्ठों का आकुंचन होता है, फिर क्षेपक कोष्ठों का ; तत्पश्चात् समस्त हृदय का प्रसार होता है और वह क्षण भर के लिये विश्राम करता है ; फिर सिकुड़ता और फैलता है। एक आकुंचन और एक प्रसार में १/७२ मिनट के लगभग समय लगता है ; यह समझो कि हृदय एक मिनट में ७२ बार रक्त ग्रहण करता है और इतने ही बार उसको आगे को ढकेलता है।

हृदय का शब्द

हृदय नियमानुसार सिकुड़ता और फैलता रहता है। फैलने पर उसमें रक्त का प्रवेश होता है ; सिकुड़ने पर रक्त उसमें से बाहर निकलता है। जब हृदय संकोच करता है तो वह रक्त को बड़े वेग से धमनियों में ढकेलता है। संकोच और प्रसार से एक शब्द उत्पन्न होता है जो लूब-डप, लूब-डप, लूब-डप जैसा सुनाई दिया करता है। यह शब्द छाती पर कई स्थानों में सुनाई पड़ता है; यदि आप सुनना चाहें तो किसी मनुष्य की छाती पर उसके बाएँ स्तन से इंच सवा इंच नीचे अपना कान लगाएँ और एकाग्र-चित्त होकर सुनें। आपको दो आवाजें सुनाई देंगी जिनके बीच में थोड़ा सा अंतर (निःशब्दता) रहता है :—लुब, थोड़ा सा अंतर डप। लुब और डप के बीच में थोड़ा सा अंतर रहता है। परन्तु डप और लुब के बीच में इससे अधिक अंतर रहता है। लुब को हृदय का पहला शब्द और डप को दूसरा शब्द कहते हैं। हृदय के शब्द छाती पर और कई स्थानों में भी सुने जा सकते हैं जैसे दाहिनी ओर की दूसरी और बाईं ओर की तीसरी उपपर्शुका के ऊपर; और

वक्षोऽस्थि के अग्रखंड के ऊपर कौड़ी देश के गढ़े में। हृदय की परीक्षा करने के समय डाक्टर इन शब्दों को **शब्द परीक्षक** यंत्र द्वारा सुनते हैं। हृदय के रोगों में ये शब्द और प्रकार के सुनाई देने लगते हैं।

हृदय के धड़कने की संख्या

प्रौढ़ मनुष्य का हृदय सामान्यत: एक मिनट में ७०, ७५ बार धड़कता है। बाल्यावस्था में हृदय जल्दी जल्दी धड़कता है, जन्म काल में धड़कने की संख्या प्रति मिनट १४० होती है, ज्यों ज्यों बालक बड़ा होता है यह संख्या घटती जाती है। स्वस्थ बालकों में सोते समय या जब वे आराम से चुपचाप बैठे हों हृदय के धड़कने की संख्या इस प्रकार होती है:—

६ से १२ मास	=	१०५ से ११५ प्रति मिनट
२ से ६ वर्ष	=	९० से १०५ " "
७ से १० वर्ष	=	८० से ९० " "
११ से १४ वर्ष	=	७५ से ८५ " "

वृद्धावस्था में संख्या पहले से कुछ अधिक हो जाती है।

बहुत से कारणों से हृदय की चाल शीघ्र या मन्द हो जाती है। भय, अति हर्ष, अधिक उष्णता (और ज्वर), भाँति भाँति की चित्तवृत्तियाँ और विकार, मैथुन की इच्छा, क्रोध, भोजन करना, जल पान करना, व्यायाम ये सब बातें हृदय की चाल को तेज़ करने वाली हैं; बहुत सी औषधियाँ भी ऐसा कर सकती हैं।

क्लेश, निर्बलता और भूखे रहने (उपास) से हृदय की चाल

मन्द हो जाती है ; कई औषधियों से भी हृदय की चाल घट जाती है। कभी कभी एक दम किसी भयंकर दृश्य को देखने से या शोकजनक समाचारों को अकस्मात् सुनने से भी हृदय का धड़कना एक दम बन्द हो जाता है ; कभी कभी मनुष्य की मृत्यु भी हो जाती है।

धमनी और शिरा शब्दों की व्याख्या

रक्त की नलियाँ दो प्रकार की हैं—एक वे जो रक्त को हृदय से लेकर और अंगों में पहुँचाती हैं। दूसरी वे जो सब अंगों से रक्त को इकट्ठा करके उसको हृदय में लौटा कर ले जाती हैं। पहले प्रकार की नलियों को धमनियाँ कहते हैं; दूसरे प्रकार की नलियों को शिराएँ। केवल एक धमनी (फुप्फुसीया धमनी) को छोड़कर शरीर में जितनी धमनियाँ हैं उन सब में शुद्ध रक्त रहता है ; ऐसे ही केवल फुप्फुसीया शिराओं (जो चार हैं) को छोड़कर जितनी भर शिराएँ हैं उन सब में अशुद्ध रक्त रहता है, प्राय: धमनियाँ शुद्ध रक्तवाहिनी और शिराएँ अशुद्ध रक्तवाहिनी नलियाँ हैं। फुप्फुसीया धमनी में अशुद्ध और फुप्फुसीया शिराओं में शुद्ध रक्त रहता है।

केशिकाएँ (चित्र १६३)

हृदय के बाएँ क्षेपक कोष्ठ से सब से बड़ी धमनी निकलती है जिसको वृहत् धमनी कहते हैं। फुप्फुसीया धमनी को छोड़ कर शरीर की सब मुख्य धमनियाँ वृहत् धमनी से निकलती हैं ; बड़ी धमनियों से बहुत सी छोटी छोटी धमनियाँ फूटा करती हैं ; सब से छोटी धमनियाँ बिना सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की

सहायता के दिखाई नहीं देतीं। इन अति सूक्ष्म धमनियों * में बहता हुआ रक्त इनसे भी पतली पतली नलियों में पहुँचता है; इन नलियों की दीवारों में मांस नहीं होता। वे सेलों की एक तह से ही बनी होती हैं।

इन नलियों में से कुछ तो इतनी पतली और कम चौड़ी होती हैं कि उनके भीतर केवल एक ही रक्तकण की गति सम्भव है। ये अतिसूक्ष्म नलियाँ जिनकी दीवारों में मांस नहीं है **केशिकाएँ** कहलाती हैं। केशिकाएँ हर एक अंग में जाल-रूप

चित्र १६३ धमनियों का रक्त केशिकाओं में होकर शिराओं में पहुँच जाता है
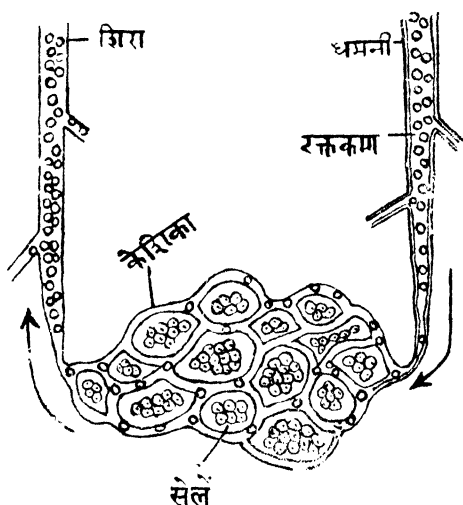
* अति सूक्ष्म और अणुवीक्ष्य धमनी धमनिका कहलाती है।

में फैली हुई हैं। उनकी दीवारें अंगों की सेलों के पास या उनमें मिली हुई रहती हैं। (देखो चित्र १६३)

जब रक्त इन केशिकाओं में बहता है तो थोड़ा सा रक्तवारि उनकी पतली पतली दीवारों में से छन कर बाहर निकल जाता है; यह तरल अंगों की सेलों से मिला रहता है। अंगों की सेलें इस रस से पौष्टिक पदार्थ ग्रहण करती हैं। शरीर को सेलें केशिकाओं के रक्त से ओषजन भी ग्रहण करती हैं; कर्बन-द्विओषित गैस जो हर समय बनती रहती है केशिकाओं के रक्त में पहुँच जाती है। इस गैस के कारण केशिकाओं के रक्त का रंग स्याहीमायल हो जाता है।

अब ये केशिकाएँ एक दूसरे से जुड़ने लगती हैं और उनके परस्पर संयोग से उनसे मोटी नलियाँ बन जाती हैं जिनके भीतर कम ओषजन और अधिक कर्बनद्विओषित वाला स्याही-मायल रक्त बहता है; इस रक्त में पौष्टिक पदार्थ भी कम होते हैं। ये नलियाँ जो केशिकाओं के मिलने से बनती हैं **शिराएँ*** हैं। पतली पतली शिराओं (शिराकों) के एक दूसरे से जुड़ने से बड़ी बड़ी शिराएँ बन जाती हैं। पतली शिराएँ बड़ी शिराओं की सहायक हैं।

धमनी से शाखाएँ निकलती हैं; शिरा सहायकों के मिलने से बनती है। धमनी ज्यों ज्यों आगे को जाती है पहले से छोटी और पतली होती जाती है; शिरा आरम्भ में छोटी होती है और धीरे धीरे बड़ी होती जाती है। अंगों में शुद्ध रक्त धमनियों द्वारा पहुँचता है; और वहाँ से अशुद्ध रक्त शिराओं द्वारा वापस

* अति सूक्ष्म शिरा = शिराक।

चित्र १६४ रक्त परिभ्रमण (रक्त संचार)

ऊर्ध्वगा महाशिरा या निम्न महाशिरा

अधोगा महाशिरा या ऊर्ध्व महाशिरा
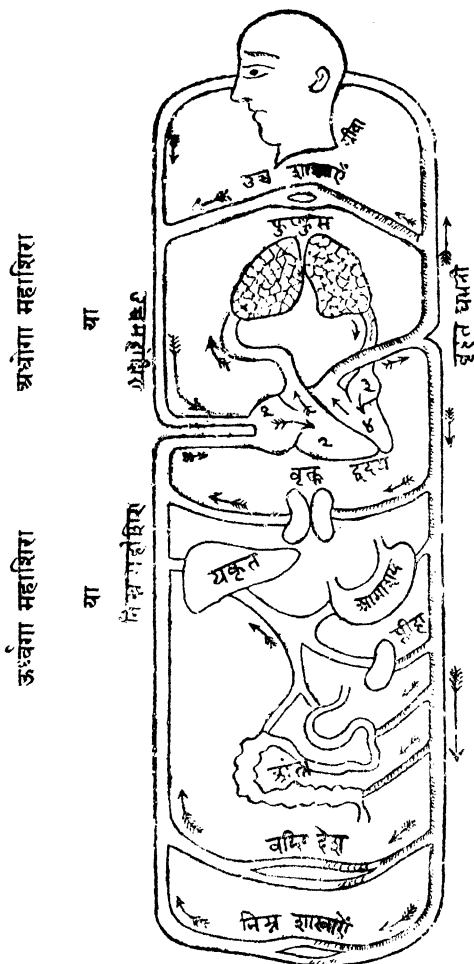
१—दाहिना ग्राहक कोष्ठ। २—दाहिना क्षेपक कोष्ठ। ३—बायाँ ग्राहक कोष्ठ।
४—बायाँ क्षेपक कोष्ठ। जिधर को तीर की नोक है उधर को रक्त बहता है।

जाता है। धमनी की सूक्ष्म शाखाओं और शिरा के सहायकों के बीच में केशिकाओं का जाल रहता है।

रक्त परिभ्रमण या परिक्रमण (चित्र १६५)

बाएँ क्षेपक कोष्ठ के आकुञ्चन से रक्त बड़े वेग के साथ वृहत् धमनी में प्रवेश करता है जिसकी शाखाओं द्वारा वह समस्त शरीर में पहुँचता है। अंगों में पहुँच कर धमनियों की अनेक छोटी छोटी शाखाएँ हो जाती हैं; इन शाखाओं में बहता हुआ रक्त केशिकाओं के जाल में पहुँचता है जिस से छोटी छोटी शिराओं का आरम्भ होता है। छोटी छोटी शिराओं के मेल से बड़ी बड़ी शिराएँ बन जाती हैं जो अंगों से बाहर निकल कर और शिराओं से जा मिलती हैं।

निम्न शाखा की शिरा (और्वी शिरा) उदर में पहुँचकर अपनी ओर के वस्तिदेश* की शिरा (अंत: श्रोणिगा शिरा) से जा मिलती है; इस प्रकार दोनों निम्न शाखाओं और वस्तिदेश की शिराओं के संयोग से दो बड़ी शिराएँ बन जाती हैं जो वृहत् धमनी की अन्तिम शाखाओं के पास रहती हैं। ये दोनों शिराएँ शीघ्र मिल जाती हैं और इनके मेल से एक बड़ी शिरा बन जाती है जिसका नाम **अधोगा महाशिरा** है। अधोगा महाशिरा

*उदर में पहुँचते ही और्वी शिरा में कुछ सहायक शिराएँ मिलती हैं; इनके मिलने के पश्चात् यह बड़ी शिरा बाह्य श्रोणिगाशिरा कहलाती है। बाह्य श्रोणिगा और अन्त:श्रोणिगा शिराओं के मेल से जो शिरा बनती है उसका नाम संयुक्ता श्रोणिगा शिरा है। दाहिनी और बाईं संयुक्त श्रोणिगा शिराओं के मेल से अधोगा महाशिरा बनती है। चित्र (१६४)

उदर में वृहत् धमनी के दाहिनी ओर रहती है। उदरस्थ अंगों की शिराएँ इसकी सहायक हैं; इस कारण ज्यों ज्यों यह ऊपर को जाती है वह अधिक मोटी होती जाती है। यकृत् (जिगर) के पीछे होकर अधोगा महाशिरा वक्षउदरमध्यस्थ पेशी के एक छिद्र में से वक्ष के भीतर घुस जाती है और घुसते ही दाहिने ग्राहक कोष्ठ के नीचे के भाग में जा खुलती है। अधोगा महाशिरा मैले रक्त को निम्न शाखाओं और उदर से इकट्ठा करके हृदय में पहुँचा देती है (देखो चित्र १६४)।

शिर, ग्रीवा, ऊर्ध्व शाखाओं और वक्षस्थल की शिराओं के संयोग से एक बड़ी शिरा बन जाती है जिसको **ऊर्ध्वगा महाशिरा** कहते हैं। ऊर्ध्वगा महाशिरा वक्ष में रहती है और नीचे आकर दाहिने ग्राहक कोष्ठ के ऊपर के भाग में खुलती है। इस प्रकार जितना रक्त वृहत् धमनी की शाखाओं द्वारा अंगों में पहुँचता है वह दो महाशिराओं द्वारा हृदय के दाहिने भाग में लौट आता है।

यह अशुद्ध रक्त दाहिने ग्राहक कोष्ठ से दाहिने क्षेपक कोष्ठ में और उससे फुफ्फुसीया धमनी द्वारा दोनों फुफ्फुसों में पहुँचता है। फुफ्फुसों में रक्त की शुद्धि होती है शुद्ध होने के पश्चात् रक्त फुफ्फुसों से चार फुफ्फुसीया शिराओं द्वारा बाएँ ग्राहक कोष्ठ में लौट आता है। ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में पहुँचता है और वहाँ से फिर वृहत् धमनी में जाता है।

इस तरह से रक्त एक स्थान से चलकर शरीर भर में घूम घाम कर फिर वहीं लौट आता है। वह एक जगह नहीं ठहरता। रक्त के चक्रवत् बहने को **रक्तपरिक्रमण** या **रक्त-**

चित्र १६५ रक्तचक्र
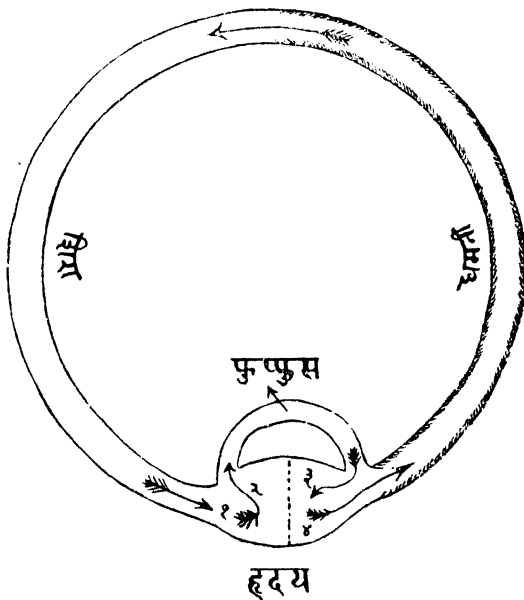
परिभ्रमण कहते हैं (देखो चित्र १६५)। अनुमान है कि रक्त को एक चक्र पूरा करने में १५ सेकण्ड के लगभग लगते हैं।(अर्थात् इस समय में हृदय से चलकर फिर हृदय में लौट आता है)

रक्तवाहिनी नलियों की बनावट

धमनी—धमनी की दीवार सौत्रिक तन्तु और अनैच्छिक मांस से निर्मित होती है। सब से बाहर सौत्रिक तन्तु होता है जिसमें श्वेत और पीले दोनों प्रकार के सूत्र होते हैं

सौत्रिक तह के भीतर मांस की तह होती है; मांस सेलों में रले मिले कुछ पीले सूत्र भी होते हैं; बड़ी बड़ी धमनियों में

चित्र १६६ धमनी और शिरा की रचना   चित्र १६७ शिरा के कपाट
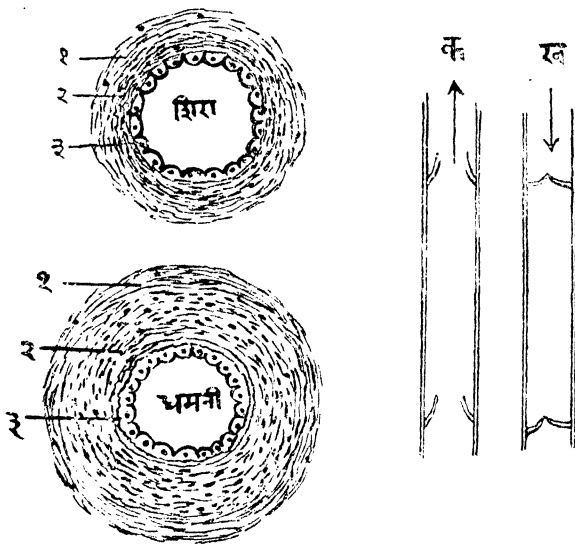
१—सौत्रिक तंतु। २—मांस। ३—पीला सौत्रिक तंतु; और सेलों की तह; क = शिरा का कपाट खुला है; ख = कपाट बंद है।

छोटी धमनियों की अपेक्षा पीले सूत्र अधिक होते हैं। मांस की तह के भीतर एक तह पीले सौत्रिक तन्तु की होती है; इस तह के पृष्ठ पर सेलें बिछी रहती हैं। इन सेलों की तह के कारण धमनी का भीतरी पृष्ठ कुछ चिकना सा होता है और रक्त बिना किसी प्रकार की रगड़ खाए सुगमता से बह सकता है

(देखो चित्र १६६)।

शिरा—शिरा की दीवार की बनावट धमनी जैसी होती है। सब से बाहर सौत्रिक तन्तु होता है; धमनी की अपेक्षा यह घना और अधिक होता है। मध्य में अनैच्छिक मांस होता है; यह धमनी से कम होता है और इसमें पीले और श्वेत दोनों प्रकार के सूत्र मिले रहते हैं; श्वेत सूत्र पीलों से अधिक होते हैं; किसी किसी शिरा में मांस की तह नहीं होती। मांस के भीतर पीला सौत्रिक तन्तु रहता है जिस पर सेलों की एक तह बिछी रहती है। मांस कम होने के कारण शिरा की दीवार धमनी की दीवार से पतली होती है, और पीला सौत्रिक तन्तु कम होने से उसमें स्थितिस्थापकता कम होती है।

बहुत सी शिराओं के भीतर जगह जगह कपाट लगे रहते हैं। इन कपाटों के किवाड़ हृदय की ओर खुलते हैं; जो शिराएँ हृदय से नीचे अवस्थित हैं उनमें किवाड़ ऊपर को खुलते हैं और जो उससे ऊपर अवस्थित हैं उनमें नीचे की ओर खुलते हैं। इन किवाड़ों के कारण रक्त हृदय की ओर ही बहता है, उलटा पीछे को नहीं जा सकता। ऊर्ध्वगा और अधोगा महाशिराओं, अस्थि, कपाल और कशेरू की शिराओं में कपाट नहीं होते (चित्र १६७)।

केशिका—केशिका की दीवार केवल सेलों से निर्मित है; उसमें मांस और सौत्रिक तन्तु नहीं होते। केशिका के छिद्र का व्यास सामान्यतः $\frac{१}{२०००}$ इंच के लगभग होता है। मस्तिष्क और अन्त्र की श्लैष्मिक झिल्ली की केशिकाएँ सब से पतली होती हैं; त्वचा, और फुप्फुस की केशिकाएँ सब से चौड़ी होती हैं।

धमनी की गति, नब्ज़, धमनी-स्पंदन या स्फुरण

यदि आप किसी धमनी को अँगुली से दबायें तो वह जीवित शरीर में उठती और गिरती प्रतीत होगी। हृदय के आकुञ्चन के समय धमनी उठती है और उसके प्रसार के समय पूर्व दशा को प्राप्त होती है। इस उठने और गिरने को धमनी का फड़कना, धमनी-स्पन्दन या स्फुरण, या नब्ज़ कहते हैं।

फड़क का कारण

धमनियों की दीवारें अधिकतर मांस और पीले सौत्रिक तन्तु से निर्मित हैं; इन दोनों तन्तुओं में स्थितिस्थापकता होती है अर्थात् ये चीज़ें खींचने से बढ़ जाती हैं और जब हम खींचना बन्द करें तो पूर्व दशा को प्राप्त होती हैं। इन तन्तुओं के होने से धमनी की दीवार में भी स्थितिस्थापकता होती है; ज़ोर पड़ने पर धमनी फैलकर चौड़ी हो सकती है; ज़ोर हटने पर फिर पहली जैसी हो जाती है।

बायाँ क्षेपक कोष्ठ सिकुड़कर बड़े वेग के साथ १½ छटाँक रक्त बृहत् धमनी में ढकेला करता है। धमनियाँ हर समय भरी रहती हैं; जब यह १½ छटाँक रक्त भरी हुई बृहत् धमनी में पहुँचा तो उसमें कैसे समायगा? यद्यपि यह धमनी खाली नहीं परन्तु वेग पड़ने पर वह स्थितिस्थापकता के कारण फैलकर पहले से अधिक चौड़ी हो सकती है जिससे उसकी समाई बढ़ जाती है। बस जब अधिक रक्त बृहत् धमनी में जाता है तो उसका हृदय के समीप का भाग फैलकर चौड़ा हो जाता है और यह सब रक्त उसमें समा जाता है। सिकुड़ने के

पश्चात् बायाँ क्षेपक कोष्ठ फैलता है ; दबाव कम होने से वृहत धमनी का यह फैला हुआ भाग अपनी पूर्व दशा को प्राप्त करना चाहता है ; यह तब ही सम्भव है कि जब उससे अगला भाग फैले। ऐसा ही होता है ; धमनी का एक भाग सिकुड़ता है और उससे अगला भाग फैलता है ; फिर यह भाग सिकुड़ता है और अगला भाग फैलता है ; वृहत् धमनी की शाखाएँ भी इसी तरह फैलती और सिकुड़ती हैं और रक्त आगे को बहता है। इतने में क्षेपक कोष्ठ का दूसरा आकुंचन होता है और फैलने और सिकुड़ने की नई लहर उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार वृहत् धमनी और उसकी शाखाओं में फैलने और सिकुड़ने की लहरें एक के पश्चात् दूसरी उत्पन्न होती रहती हैं। एक लहर के पीछे दूसरी लहर के आने से धमनी में फड़क उत्पन्न हो जाती है ; इसी को धमनी-स्पन्दन या नब्ज़ कहते हैं।

यह स्पन्दन साधारणतः केवल धमनियों में ही मालूम होता है, शिराओं में नहीं; कारण यह है कि जब रक्त सूक्ष्म सूक्ष्म धमनियों में पहुँचता है तो इस लहर का वेग कम हो जाता है; केशिकाओं और शिराओं में यह लहर रहती ही नहीं। जब धमनी कट जाती है तो उसमें से रक्त उछल उछलकर निकला करता है; परन्तु जब शिरा कटती है तो रक्त धीमे धीमे एक चाल से बहता है उछलता नहीं।

रक्त-भार (रक्त वेग)

जब किसी स्थितिस्थापक नली में कोई तरल रहता है तो वह तरल उस नली की दीवारों पर एक दबाव डालता है। जब हम भरी हुई नली को अँगुली से दबाते हैं तो उस तरल का

दबाव मालूम होता है। जितना अधिक गुरुत्व का यह तरल होता है उतना ही अधिक दबाव नली की दीवारों पर पड़ता है। यदि तरल किसी पम्प द्वारा नली में भरा जावे तो उस तरल का नली की दीवारों पर दबाव उतना ही अधिक होगा जितना कि उस पम्प का वेग; यदि पम्प ज़ोर से तरल को ढकेलता है तो तरल का दबाव भी अधिक होगा; यदि पम्प का वेग कम है तो तरल का दबाव भी कम होगा। यदि नली की दीवारें स्थितिस्थापक हैं तो वे तरल के दबाव को सह लेती हैं अर्थात् अधिक वेग पड़ने से वे फैल जाती हैं; जब स्थितिस्थापकता काफ़ी नहीं होती तो जब वेग एक हद से ज़्यादा हो जाता है तो दीवारें फट जाती हैं और तरल बाहर बहने लगता है।

धमनियाँ शरीर की स्थितिस्थापक नलियाँ हैं। हृदय उनके लिये पम्प है; जो तरल हृदय धमनियों में ढकेलता है वह रक्त है। जब आप धमनी को अँगुली से दबाते हैं तो आप उसके भीतर के रक्त का भार या वेग प्रतीत करते हैं। जब हृदय का वेग अधिक है तो इस रक्त का भार भी अधिक होता है; जब हृदय कमज़ोर होता है तो यह भार भी कम होता है। जब रक्त के बहाव में रुकावट होती है (जैसे बृक्क के रोगों में) तो रक्त का भार अधिक हो जाता है; जब धमनिकाएँ पहले से चौड़ी हो जाती हैं तो रक्त बहुत आसानी से बहता है और धमनी में रक्त का भार कम हो जाता है।

रक्त का भार साधारणत: तो धमनी को अँगुली से दबाकर मालूम किया जा सकता है ; ठीक ठीक मालूम करने के लिये कई प्रकार के **रक्त-भार-मापक** यंत्र बनाए गए हैं।

धमनी के रक्त का भार दो प्रकार का होता । एक वह जो हृदय के संकोच के समय होता है। इसे **संकोच** या **आकुंचन रक्तभार** कहते हैं; दूसरा वह जो उस समय होता है जब हृदय का प्रसार होता है यह **प्रसार रक्तभार** है; संकोच रक्त-भार प्रसार रक्त भार से अधिक होता है। रोगों में रक्त-भार घट बढ़ जाता है। रक्त-भार का बहुत कम होना या अधिक होना दोनों ही बुरे हैं रक्त-भाराधिक्य से छोटी छोटी धमनियों के फटने का डर रहता है। मस्तिष्क की धमनियों के फटने से अर्धाङ्ग हो जाता है।

ज्यों ज्यों आयु बढ़ती है रक्त-भार भी बढ़ता जाता है। रक्त-भार का सम्बन्ध भोजन से भी है। मांस भक्षियों का रक्त-भार मांस न खाने वालों के रक्त-भार से बहुधा अधिक रहता है। भारतवासियों का रक्त-भार युरोपनिवासियों के रक्त-भार से कुछ कम होता है।

सामान्यतः संकोच रक्त-भार इस प्रकार होता है :—

आयु १०—१५ वर्ष	=	१००—११०	शतांशमीटर पारा
,, २५ ,,	=	११५—१२५	,,
,, ४० ,,	=	१३५—१४५	,,
,, ५० से अधिक	=	१४५—१५५	,,

प्रसार रक्त-भार १०—१५ वर्ष की आयु में ६०—७२ होता है; २१ २२ वर्ष की आयु में ६५-८० और फिर धीरे धीरे ९५ तक हो जाता है। १०० से अधिक होना ठीक नहीं।

नाड़ी-परीक्षा

नाड़ी-परीक्षा धमनियों को अँगुलियों से यथाविधि दबाकर की जाती है। परीक्षा करने के लिये यन्त्र भी बनाए गये हैं

बड़ी बड़ी धमनियाँ प्राय: मांस और वसा से खूब ढकी रहती हैं; कहीं कहीं वे केवल त्वचा और ज़रा सी वसा से ही ढकी रहती हैं। नाड़ी-परीक्षा ऐसे ही स्थानों में की जाती है क्योंकि अधिक वसा और मांस के न होने के कारण उनकी फड़क आसानी से मालूम हो सकती है। बहुधा कलाई में अंगुष्ठ की ओर वाली धमनी (बहि: प्रकोष्ठिका धमनी) की परीक्षा की जाती है। आप चाहें तो धमनियों की फड़क इन स्थानों में मालूम कर सकते हैं:—

१. कनपटी में कान के ठीक सामने।

२. ग्रीवा में टेंटुवे के दाहिनी और बाईं ओर उर:कर्ण-मूलिका पेशियों को दबाकर।

३. वंक्षण के मध्य में (और्वी धमनी)।

४. पैर में अंगुष्ठ की ओर गट्टे के नीचे (जंघा पश्चिमगा धमनी)।

५. कोहनी में सामने की तरफ़ (प्रगंडीया धमनी)

६. बाहु में (बग़ल की ओर वाले किनारे में) प्रगंडीया धमनी)।

धमनी एक मिनट में उतने ही बार फड़कती है जितनी बार हृदय धड़कता है। नाड़ी-परीक्षा से हृदय और रक्त-भ्रमण की दशा का ज्ञान होता है; उससे धमनियों और हृदय के रोगों का पता लग जाता है; रक्तवाहक संस्थान के अंगों के अतिरिक्त और भी कई अंगों के रोगों का निदान करने में उस से सहायता मिलती है। अमुक मनुष्य ने कल आलू का शाक खाया था या बैंगन का यह हमारी राय में नाड़ी-परीक्षा से नहीं

जाना जा सकता ; सब रोगों का निदान भी केवल नाड़ी-परीक्षा ही से नहीं हो सकता

लसीका

जब रक्त केशिकाओं में बहता है तो उनकी पतली पतली दीवारों में से उसका कुछ तरल भाग चू कर बाहर निकल जाता है। इस चुए हुए तरल का नाम लसीका है। लसीका में वे पदार्थ घुले रहते हैं जिनकी सेलों को आवश्यकता रहती है जैसे शकर, प्रोटीन, वसा, लवण आदि। अंगों की सेलों और रक्त के बीच में तो केशिकाओं की दीवार रहती है परन्तु लसीका और सेलें एक दूसरे से बिलकुल मिले रहते हैं, यह समझो कि सेलें लसीका में स्नान किया करती हैं और उससे सदा भीगी रहती हैं। रक्त लसीका द्वारा ही सेलों का पोषण करता है।

जब सेलें काम करती हैं तो प्रोटीन आदि पदार्थों से रासायनिक क्रियाओं द्वारा बहुत सी निकम्मी और विषैली वस्तुएँ बनती हैं—यूरिया, यूरिकअम्ल, कर्बनद्विओषित इत्यादि। ये सब वस्तुएँ लसीका में घुल जाती हैं।

हर एक स्थान में रक्तकेशिकाओं से भिन्न कुछ और केशिकाएँ भी रहती हैं; ये लसीका केशिकाएँ हैं। सेलों को पोषणकारक पदार्थ देकर और उनसे हानिकारक पदार्थ लेकर यह लसीका केशिकाओं में चला जाता है। इन केशिकाओं के परस्पर मेल से पतली पतली लसीकावाहिनियाँ बन जाती हैं। पतली लसीकावाहिनियों के एक

चित्र १६८ लसीका संचार

चित्र व्याख्या :—

व = वक्ष ; क = कटि ; ५ से १२ तक = वक्ष के कशेरूका; १,२ कटि कशेरूका बा. ग. श = ग्रीवा के बाएँ भाग की बड़ी शिरा ; बा.ऊ.श = बाईं ऊर्ध्व शाखा की शिरा ; द.ग.श = ग्रीवा के दाहिने भाग की शिरा; द.ऊ.श = दाहिना ऊर्ध्व शाखा की शिरा ।

जिन नलियों में नन्हे नन्हे बिन्दु हैं वे लसीकावाहिनियाँ हैं ।

ज = जननेंद्रियों की लसीका वाहिनियाँ ।

प = ये लसीकावाहिनियाँ वक्ष के नीचे के भागों की दीवार से लसीका को उदर में ले जाकर लसीका-कोष में डालती हैं ।

अंत्र—ये अंत्र की लसीका वाहिनियाँ हैं; इनके द्वारा बसा अंत्र से आकर लसीका-कोष में पहुँचती है । लसीका कोष से महालसीकावाहिनी का आरम्भ होता है । यह लसीका को ग्रीवा में ले जाकर शिराओं के रक्त में मिला देती है ।
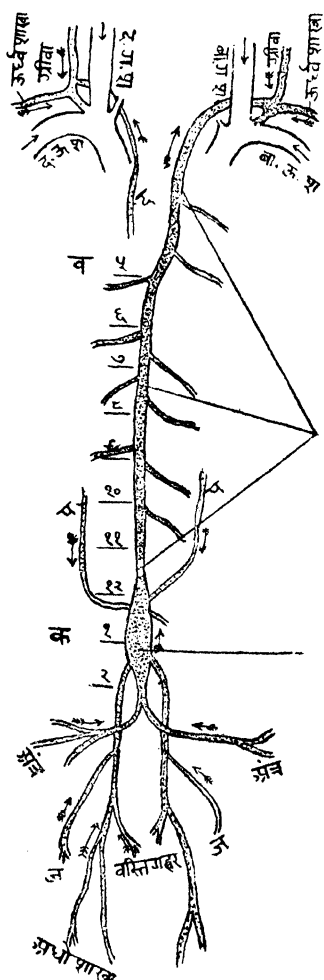
चित्र १६६ हाथ की लसीकावाहिनियां (Sappey)
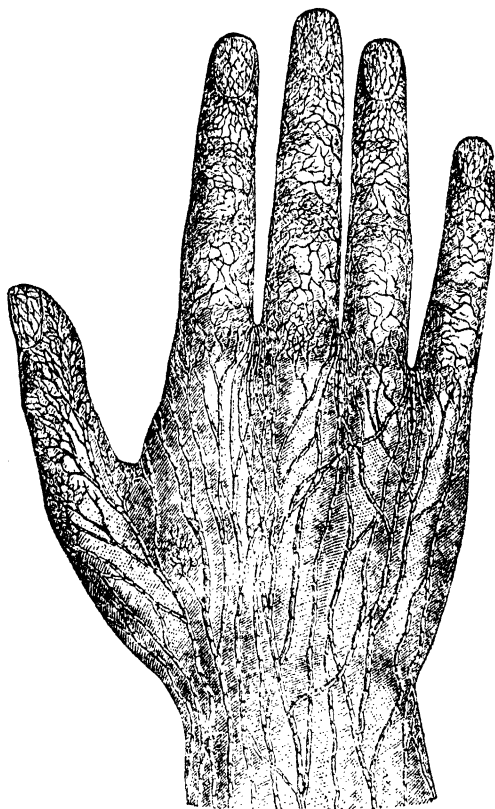
दूसरे से मिलने से बड़ी बड़ी लसीकावाहिनियाँ* बन जाती।

*लसीकावाहिनियाँ बहुधा शिराओं के साथ साथ या उनकी दीवारों से चिपटी हुई रहा करती हैं।

हैं। समस्त शरीर से इकट्ठा होकर लसीका दो नलियों में आ जाता है जिनमें से एक बड़ी होती है और एक छोटी, बड़ी नली **महालसीकावाहिनी** कहलाती है (चित्र १६८)। इस नली का आरम्भ उदर के भीतर कमर के दूसरे मोहरे के गात्र के सामने होता है; उदर से यह वक्षउदरमध्यस्थ पेशी के एक छिद्र में से होकर वक्ष में पहुँचती है; वक्ष से ग्रीवा के बाएँ भाग में पहुँचती है। ग्रीवा में बाईं अक्षक के ऊपर ग्रीवा और बाईं ऊर्ध्व शाखा की शिराओं के संगम में जा मिलती है; जो लसीका उसमें होता है वह शिराओं के रक्त में जा मिलता है। महालसीकावाहिनी की लम्बाई १५ से १८ इंच तक होती है। इस नली में इन इन स्थानों से लसीका आता है:—दोनों निम्न शाखाएँ; उदर, वक्ष का अधिक भाग; बाईं ऊर्ध्व शाखा; ग्रीवा और शिर का बायाँ भाग।

दाहिनी ऊर्ध्वशाखा और ग्रीवा के दाहिने भागों से लसीका एक छोटी नली में इकट्ठा होता है। यह नली लसीका को ग्रीवा की दाहिनी ओर की शिराओं के रक्त में मिला देती है।

हम जो कुछ लसीका के विषय में लिख चुके हैं उससे विदित है कि वह रक्त से ही निकलता है और फिर रक्त ही में जा मिलता है।

जो लसीका क्षुद्र अन्त्र की दीवारों से आता है उसमें वसा बहुत होती है क्योंकि भोजन से प्राप्त हुई वसा लसीका केशिकाओं के द्वारा ही शरीर में पहुँचती है (देखो इस पुस्तक का दूसरा भाग, पोषण संस्थान)।

लसीका में कुछ श्वेत कण रहते हैं, इन कणों और रक्त के

"लसीकाणुओं" में कोई भेद नहीं होता। रक्त की भाँति लसीका में जमने की शक्ति है। उसका रंग रक्तवारि के रंग जैसा होता है; क्षुद्र अन्त्र की दीवारों से जो लसीका आता है उसका रंग अधिक वसा के कारण दूधिया सा होता है।

लसीका-ग्रन्थियाँ (चित्र १७०, १७१)

कक्षतल, वंक्षण और ग्रीवा में बहुत सी छोटी छोटी गुठलियों जैसी चीजें होती हैं; आरोग्यता में हम इनको टटोलने से अच्छी तरह स्पर्श नहीं कर सकते परन्तु जब रोगों के कारण ये बढ़कर बड़ी या सख्त हो जाती हैं तो ये सहज में टटोली जा सकती हैं। ये "लसीका-ग्रन्थियाँ" हैं। स्थानीय लसीकावाहिनियाँ इन ग्रन्थियों में से होकर जाया करती हैं। ये नलियाँ ग्रन्थि के एक सिरे या किनारे से जुड़ी रहती हैं, दूसरे किनारे या सिरे से एक नई नली आरम्भ होती है; जो लसीका पहली नली से इस ग्रन्थि के भीतर पहुँचता है वह दूसरी नली के द्वारा ग्रन्थि से बाहर निकलता है। (चित्र १७० में १, २) ग्रन्थियों का एक काम उन श्वेत कणों को बनाने का है जिनका वर्णन "क्षुद्र और वृहत् लसीकाणुओं" के नाम से हम पीछे कर चुके हैं। जब लसीका इन ग्रन्थियों में से होकर बहता है तो ये कण उसमें आ जाते हैं; और जब वह शिराओं के रक्त में मिलता है तो ये कण रक्त में पहुँच जाते हैं। लसीका-ग्रन्थियाँ विषनाशक वस्तुएँ भी बनाती हैं।

कक्षतल, वंक्षण और ग्रीवा को छोड़कर ये ग्रन्थियाँ और स्थानों में भी रहती हैं जैसे वक्ष और उदर में। महामारी (प्लेग, ताऊन) में इन्हीं ग्रन्थियों का प्रदाह होता है, इनके

चित्र १७० लसीका ग्रन्थि की रचना (Sharpey from Schafer's Histology)
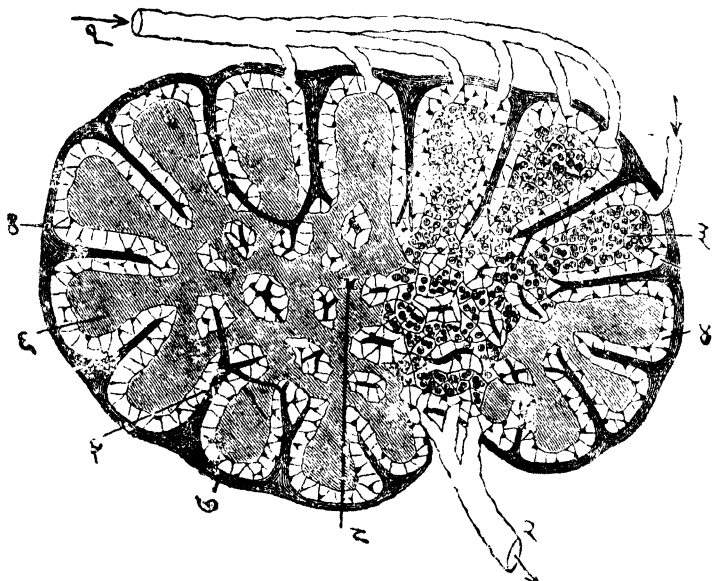
व्याख्या:— १ = इस लसीकावाहिनी द्वारा लसीका-ग्रन्थि में पहुँचता है। २ = इस नली द्वारा लसीका ग्रन्थि से फिर बाहर निकलता है। ३ = ग्रन्थि की सेलें। ४ = इन स्थानों में लसीका रहता है। ७ = ग्रन्थि कोष। ५ = सौत्रिक तंतु से निर्मित इन दीवारों द्वारा ग्रन्थि के बहुत से नन्हें नन्हें खंड हो जाते हैं जिनमें सेलें भरी रहती हैं। ६ = ग्रन्थि का एक खंड। ८ = ग्रन्थि का केन्द्रिक भाग।

चित्र १७१ वक्ष की लसीका-ग्रन्थियाँ

१ = टेंटुवे के आस पास रहने वाली लसीका-ग्रन्थियाँ। २ = अधर स्वरयांत्रिकी नाड़ी। ३ = टेंटुवा या महा वायु (या श्वास) प्रणाली या श्वासा। ४ = टेंटुवे और श्वास प्रणाली के पास की ग्रन्थियाँ। ५ = श्वास प्रणाली के पास की ग्रन्थियाँ। ६ = और ग्रन्थियां। ७ = फुप्फुसीया ग्रन्थियां। ८ = टेंटुवा और श्वास प्रणाली सम्बन्धी नीचे की ग्रन्थियां।

चित्र १७१—वक्ष की लसीका ग्रन्थियां
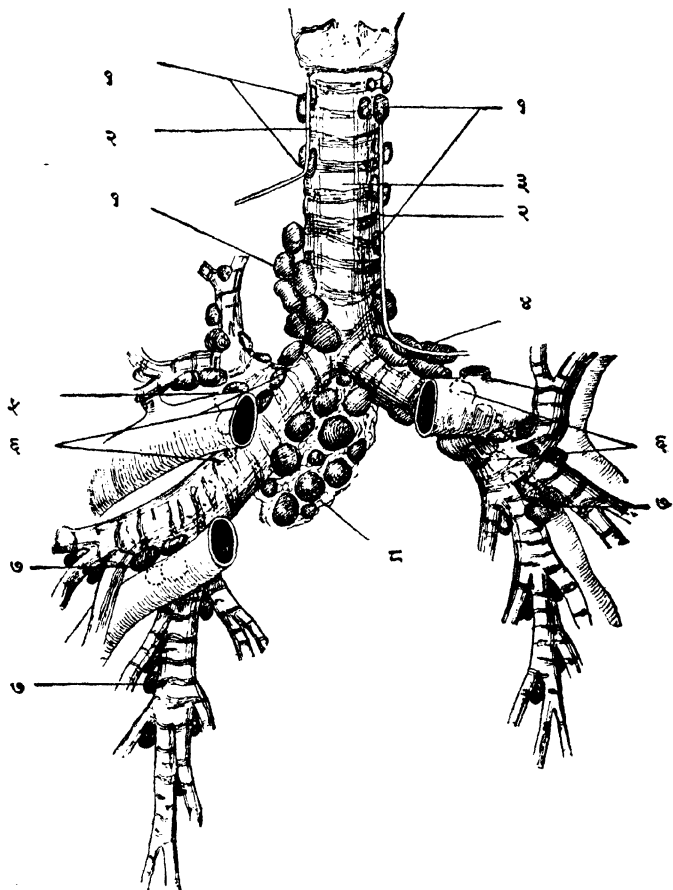
Sukiennikow—from Morris's Human Anatomy
by kind permission,

सूजने और पक जाने को ही बद या गिलटी का निकलना कहते हैं। पैर या टाँग में फोड़ा बनने से जंघासे (वंक्षण)की गिलटियाँ फूल जाया करती हैं; हाथ में ज़ख्म या फोड़े होने के कारण कोहनी और कक्षतल की गिलटियाँ फूल जाती हैं, कान में दर्द होने से कभी कभी कान के सामने की गिलटी फूल जाती है। फोड़ों या ज़ख्मों के कारण लसीका-ग्रन्थियों के सूज जाने को "ओलमा" या " उलम्बा" कहते हैं; फोड़े या ज़ख्म के अच्छे हो जाने पर इन ग्रन्थियों की सूजन भी जाती रहती है। कभी कभी गरदन में टेंटुवे के दोनों ओर की ग्रन्थियाँ सूजकर बड़ी हो जाती हैं, ये पककर पिलपिली भी हो जाया करती हैं,इस रोग को "बेल" या "कंठमाला" कहते हैं। फिरंग रोग (आतशक) में समस्त शरीर की लसीका-ग्रन्थियाँ बड़ी हो जाती हैं और छूने से कड़ी और सख्त मालूम होती हैं। वक्ष की लसीका-ग्रन्थियों के लिये देखो चित्र १७१

वृहत् धमनी (चित्र१७२)

बाएँ क्षेपक कोष्ठ से वृहत् धमनी का आरम्भ होता है। यह धमनी पहले ऊपर को जाती है, कोई दो इंच ऊपर को जाने के पश्चात बाईं ओर को मुड़ जाती है और फिर नीचे को जाती है और अब हृदय के पीछे रहती है। वक्ष के नीचे के भाग में पहुँच कर यह धमनी वक्षउदरमध्यस्थ पेशी के एक छिद्र में से होकर उदर में पहुँचती है। उदर में इस धमनी के पीछे रीढ़ रहती है और उसके सामने अंत्र (आंत)की गेंडलियाँ। उदर में कमर के चौथे कशेरुका के गात्र के सामने यह धमनी दो बड़ी शाखाओं में विभक्त होकर खतम हो जाती है। आरम्भिक भाग का व्यास १इंच से कुछ अधिक होता है अंतिम भाग का व्यास पौन इंच से अधिक नहीं होता।

चित्र १७२

(From Masse's Atlas)

पृष्ठ ३०१ के सम्मुख

चित्र १७२ की व्याख्या

ग्र = दाहिना ग्राहक कोष्ठ; त्त = दाहिना त्तेपक कोष्ठ; उ = उद्गामी महाधमनी

१ = हृदय
२ = दाहिनी हार्दिकी धमनी
३ = बाईं हार्दिकी धमनी
४ = मूल फुप्फुसीया धमनी
५ = महाधमनी की महराब
६ = कत्तीया धमनी
७ = दाहिनी मूल शिरोधोवर्तिनी (शिरोधीया) धमनी
७ = बाईं मूल शिरोधोवर्तिनी धमनी
८ = बाईं अत्तकाधोवर्तिनी(अत्तकाधरा) धमनी
९ = दाहिनी ओर अत्तकाधरा और शिरोधीया धमनियाँ महाधमनी की महराब की पहली शाखा से निकलती हैं ।
१० = मूल शिरोधीया धमनी की दो बड़ी शाखाएँ हो जाती हैं—अंतः-शिरोधीया और बहिःशिरोधीया
११ = चुल्लिका ऊर्ध्व धमनी
१२ = रासनिकी धमनी (दाहिना)
१३ = मौखिकी धमनी
१४ = अधो ओष्ठ्या धमनी
१५ = ऊर्ध्व ओष्ठ्या धमनी
१६ = अंतः उपांग की धमनी
१७ = (उपरितन) शांखिकी धमनी
१८,१९,२० = शांखिकी की शाखाएँ
२१ = गुद्दी की धमनी
२२ = ग्रीवा की व्यत्यस्त धमनी
२३ = चुल्लिकाधो धमनी
२४ = अंसोर्ध्व धमनी
२५ = काशेरुकी धमनी
२६ = अंतःस्तनीया धमनी
२७ = २६ की एक शाखा
२८ = चुल्लिका ग्रन्थि
२९ = नेत्रनिमीलनी पेशी
३० = शिरच्छदा पेशी (अगला भाग)
३१ = विषम चतुरस्रा पेशी
३२ = अंसच्छदा पेशी
३३ = उरश्छादनी बृहती पेशी
३४ = अंसकंठिका (अगला भाग)
३५ = अंसकंठिका (पिछला भाग)
३६ = काशेरुकी धमनी
३७ = अत्तकाधोवर्तिनी धमनी

वृहत् धमनी के तीन भाग माने जाते हैं :—

१. उद्गामी (ऊपर को जानेवाला भाग) जो दो इंच लम्बा होता है।

२. महराब या धमनी का मुड़ा हुआ भाग।

३. अधोगामी भाग जो कमर के चौथे कशेरुका तक चला जाता है।

वृहत् धमनी की शाखाएँ

उद्गामी भाग से दो शाखाएँ निकलती हैं जो हृदय का पोषण करने के कारण हार्दिकी धमनियाँ कहलाती हैं (चित्र १६१, १६२)

महराब से तीन बड़ी बड़ी शाखाएँ निकलती हैं। इनमें से पहिली सब से बड़ी होती है; थोड़ी दूर ऊपर को जाकर यह वक्ष के भीतर ही दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है; इनमें से एक शाखा दाहिनी ऊर्ध्व शाखा का पोषण करती है, दूसरी ग्रीवा के दाहिने भाग में चली जाती है और ग्रीवा और शिर के दाहिने भाग का पोषण करती है (चित्र १५६ में १, २, ३)।

महराब की दूसरी शाखा से ग्रीवा और शिर के बाएँ भाग का पोषण होता है। तीसरी शाखा बाईं ऊर्ध्व शाखा का पोषण करती है।

अधोगामी वृहत् धमनी से बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं। वक्ष में ये शाखाएँ उसमें रहने वाले अंगों का पोषण करती हैं जैसे फुप्फुस, अन्नप्रणाली, लसीका-ग्रन्थियाँ, वायुप्रणालियाँ; इन

चित्र १७३ की व्याख्या

१,२ = दाहिनी और बाईं हार्दिकी धमनियाँ
३, ४, ५ = महा धमनी की महराब की तीन बड़ी शाखाएँ
४ = बाईं शिरोधीया धमनी (मूलिया)
५ = बाईं अक्षकाधोवर्तिनी धमनी
६ = दाहिनी अक्षकाधोवर्तिनी धमनी
७ = दाहिनी शिरोधीया धमनी (मूलिया)
८ = अंतः शिरोधीया धमनी
९ = बहिः शिरोधीया धमनी
१० = काशेरुकी धमनी
११ = स्तनीया धमनी
१२ = कक्षीया धमनी
१३ = प्रगंडीया धमनी
१४ = बहिः प्रकोष्ठिका धमनी
१५ = अंतः प्रकोष्ठिका धमनी
१६ = कारतलिकी धमनी (महराब)
१७ = कारतलिकी धमनी (उपरितन महराब)
१८ = आंगुलीया धमनी
१९ = पर्शुकांतरिका धमनी
२० = वक्षउदर मध्यस्थ पेशी की धमनी
२१ = याकृती धमनी
२२ = बाईं आमाशयिकी धमनी
२३ = प्लैहिकी धमनी
२४ = वृक्किका धमनी
२५ = अंत्रोर्ध्व धमनी
२६ = आंडिकी धमनी
२७ = अंत्रोर्ध्व धमनी
२८ = मध्यत्रिक धमनी
२९ = श्रोणिमूलीया धमनी
३० = बहिः श्रोणिगा धमनी
३१ = अंतः श्रोणिगा धमनी
३२ = और्वी धमनी
३३ = जान्विकी धमनियाँ
३४ = जंघा पश्चिमगा धमनी
३५ = जंघा पुरोगा धमनी
३६ = जंघा पश्चिमगा धमनी
३७ = विवर्तनी धमनी
३८ = गौल्फी धमनी
३९ = पाद पृष्ठिका धमनी
४० = पादतलिकी धमनी
४१ = पादांगुलीया धमनी

चित्र १७४ की व्याख्या

इस चित्र में पर्शुकांतरिका पेशियां, धमनियां, शिराएँ और नाड़ियाँ दिखाई गई हैं; नाड़ियों का पिंगल मंडल से सम्बन्ध भी दर्शाया गया है।

४ = अंतः पर्शुकांतरिका पेशी

५ = पर्शुकांतरिका शिरा

६ = पर्शुकांतरिका धमनी

७ = पर्शुकांतरिका नाड़ी

८ = परिफुप्फुसीया कला

९ = पिंगला नाड़ी

१० = पर्शुकांतरिका शिरा

११ = " धमनी

१२ = अज़ाइगोस शिरा*

१३ = पिंगला गंड

*अंगरेज़ी शब्द
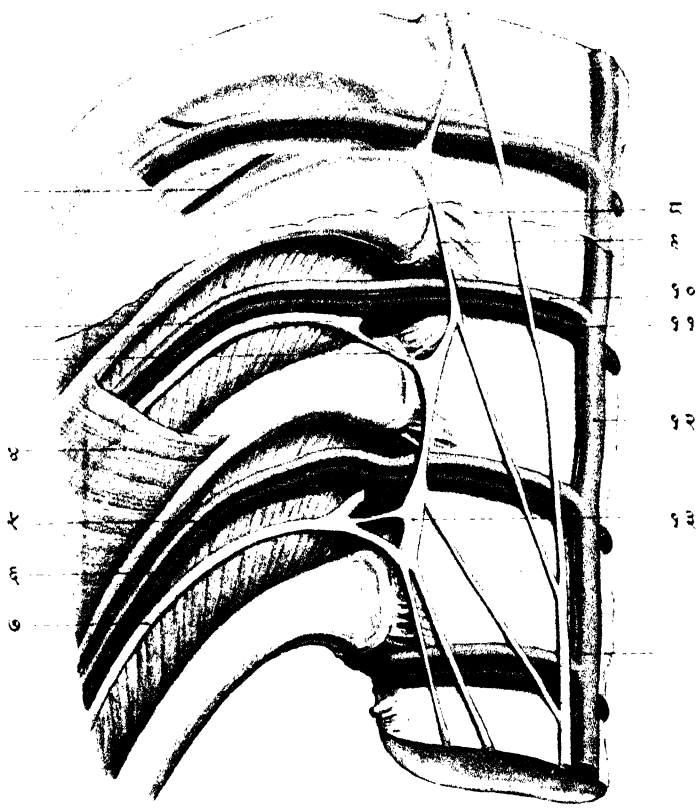
चित्र १७४

From Schultze—Lubosch's Topographische Anatomie

शाखाओं के अतिरिक्त नौ जोड़ धमनियों के और निकलते हैं; ये धमनियाँ पसलियों के बीच में रहती हैं और वक्ष की दीवारों का पोषण करती हैं (चित्र१७३, १७४)।

उदर में पहुँच कर यह धमनी बहुत सी शाखाएँ देती है जिनसे उदरस्थ अंगों का पोषण होता है जैसे आमाशय, यकृत्, प्लीहा, अंत्र, वृक्क, इत्यादि (१३३)।

प्रत्येक अंतिम शाखा की दो शाखाएँ हो जाती हैं जिनमें से एक वस्ति गह्वर में चली जाती है और वहाँ रहने वाले अंगों का पोषण करती है (चित्र१३३)।

दूसरी शाखा बड़ी होती है; यह वंक्षण से जाँघ में चली जाती है और निम्नशाखा का पोषण करती है।

ग्रीवा की धमनियाँ (चित्र १७२, १७५, १७६)

ग्रीवा में दो बड़ी धमनियाँ रहती हैं। एक टेंटुवे के दाहिनी ओर दूसरी बाईं ओर। टेंटुवे के इधर उधर अंगुली से दबा कर इनकी फड़क मालूम की जा सकती है। यह **शिरोग्रीया** या **शिरोधोवर्तिनी** धमनी है। ग्रीवा के ऊपर के भाग में हर एक धमनी की दो शाखाएँ हो जाती हैं। एक शाखा कुछ दूर ऊपर चढ़ने के पश्चात् कपाल की तली तक पहुँचती है, और एक छिद्र में से उसके भीतर घुस जाती है और मस्तिष्क का पोषण करती है। दूसरी शाखा कपाल के बाहर रहनेवाले अंगों का (जैसे चेहरा) पोषण करती है। इसकी दो शाखाओं की फड़क मालूम की जा सकती है:—एक तो कान के सामने कनपटी की धमनी की; दूसरी निम्नहनु के ऊपर समकोण से

चित्र १७५ (Esmarch)
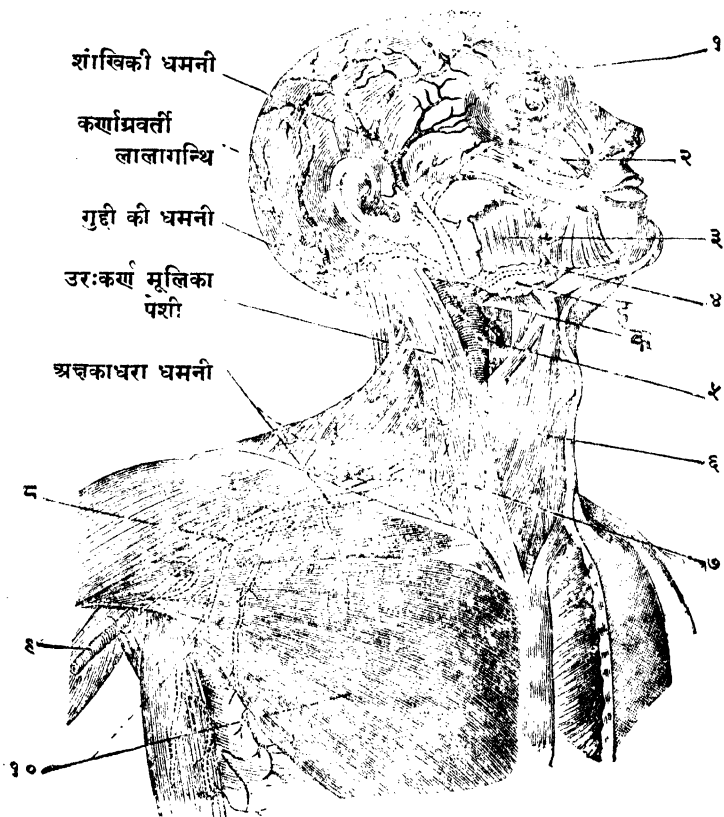
१ = नेत्रनिमीलनी पेशी; २ = ऊर्ध्वोष्ठगत चतुरस्रा पेशी; ३ = चर्वनी पेशी; ४ = मौखिकी धमनी; ५ = शिरोधोवर्तिनी धमनी की दो शाखाएँ हो रही हैं; ६ = उरः कंठिका; ७ = शिरोधोवर्तिनी धमनी ह = हन्वधोवर्ती लालाग्रन्थि; क = कंठिकास्थि; ८ = कक्षीया धमनी; ९ = प्रगंडीया धमनी; १० = उरश्छादनी बृहती पेशी ।

एक इंच आगे। पहली धमनी शांखिकी (उपरितन) कहलाती है और दूसरी मौखिकी।

ऊर्ध्वशाखा की धमनी (चित्र १७२,१७३,१७६,१७८)

दाहिनी ओर की धमनी वक्ष में महराब की पहली शाखा से निकलती है, बाईं सीधी महराब से निकलती है (चित्र १७२ में ८, ३७)। पहले ऊपर को ग्रीवा की ओर चढ़कर अक्षक तक पहुँचती है; यहाँ इससे कई शाखाएँ निकलती हैं जो ग्रीवा के नीचे के भाग का पोषण करती हैं; एक शाखा (काशेरुकी) ऊपर को जाती है और कपाल के भीतर पहुँच कर मस्तिष्क का पोषण करती है (देखो चित्र १७२ में २५)। अब यह धमनी अक्षक और पहली पसली के बीच में होकर कक्षतल या बग़ल में पहुँचती है; यहाँ भी बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं। कक्षतल से यह धमनी बाहु में आ जाती है; यहाँ वह वक्ष की ओर और प्रगंडास्थि के समीप रहती है; (चित्र १७५) बाहु को दबाकर उसकी फड़क मालूम की जा सकती है (चित्र १७५)। बाहु में कई शाखाएँ देकर यह धमनी कोहनी के सामने के भाग में आती है और यहाँ उसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं। ये दोनों शाखाएँ शेष ऊर्ध्वशाखा अर्थात् प्रकोष्ठ और हस्त का पोषण करती हैं।

एक शाखा अन्तः प्रकोष्ठास्थि के साथ साथ रहती है; दूसरी बहिः प्रकोष्ठास्थि के साथ साथ (चित्र १७८)। प्रकोष्ठ के ऊपर के भाग में मांस से ख़ूब ढके रहने के कारण ये धमनियाँ टटोली नहीं जा सकती। नीचे जाकर बहिः प्रकोष्ठिका धमनी

चित्र १७६ की व्याख्या

हाथ की धमनियाँ

१ = अस्थ्यांतरिका पुरोगा ध०
२ = बहिः प्रकोष्ठिका ,,
३ = बहिः मणिका पुरोगा ,,
४ = उपरितन पुरोगा ,,
५ = बहिः मणिका पश्चिमगा ,,
६ = बहिः प्रकोष्ठिका ,,
७ = पहली करभीया पश्चिमगा
८ = दूसरी करभीया पश्चिमगा
९ = अंगुष्ठीया विशेषा
१० = पहली करभीया पश्चिमगा की प्रदेशिनी शाखा
११ = प्रदेशिनी बहिःस्था ध०
१२ = आङ्गुलीया पश्चिमगा
१३ = आङ्गुलीया पुरोगा
१४ = आङ्गुलीया पुरोगा की पहली पश्चिमगा शाखा
१५ = आङ्गुलीया पुरोगा की दूसरी पश्चिमगा शाखा
१६ = आङ्गुलीया पुरोगा धमनियों का संगम
१७ = अंतः प्रकोष्ठिका ध०
१८ = अंतः मणिका पुरोगा
१९ = अंतः मणिका पश्चिमगा
२० = गंभीर अंतः प्रकोष्ठिका ध०
२१ = उपरितन महराब
२२ =
२३ = बंधनिका पश्चिमगा
२४ = करभीया पुरोगा
२५ = मूल आङ्गुलीया पुरोगा
२६ = करभीया पश्चिमगा
२७ = मूल आङ्गुलीया पुरोगा
२८ = बंधनिका पुरोगा

नोट :— गहरे रंग की धमनियाँ उपरितन हैं और हलके रंग की गम्भीर ।

हमारे शरीर की रचना—भाग १, पाँचवी आवृत्ति—प्लेट ३५

चित्र १७६

(From Morris's Human Anatomy by kind permission)

हमारे शरीर की रचना—भाग १, पाँचवी आवृत्ति—प्लेट ३५ चित्र १७७
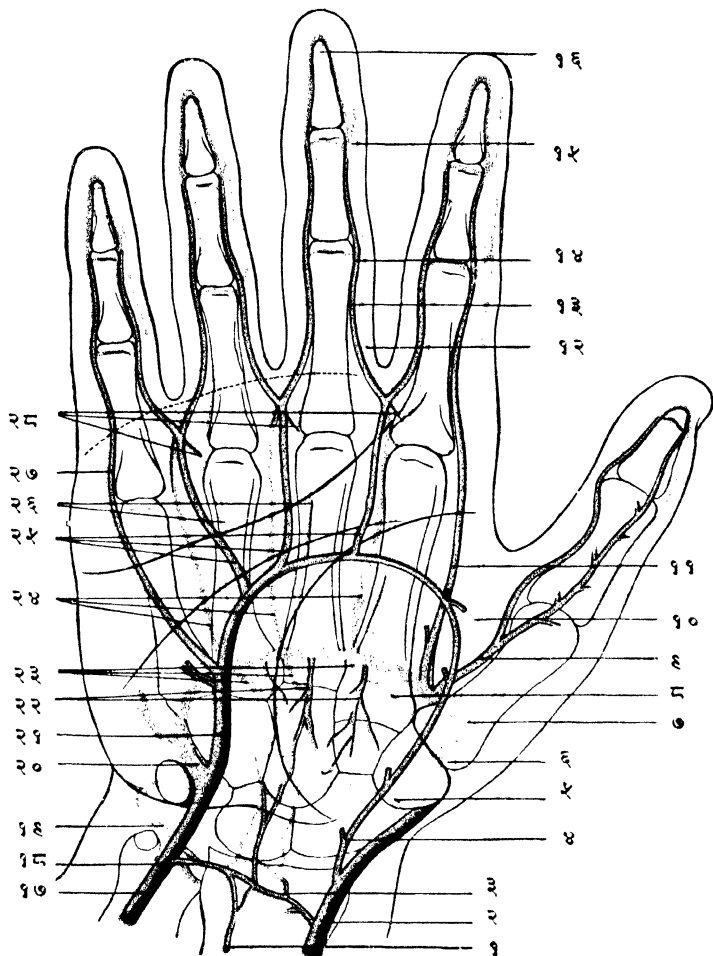
(From Morris's Human Anatomy)

चित्र १७७ की व्याख्या

पैर की धमनियाँ

१ = जंघा पुरोगा
२ = अंतः गौल्फी
३ = जंघा पश्चिमगा की गौल्फी शाखा
४ = जंघा पश्चिमगा और विवर्तनी का संयोग
५ = अंतः पादतलिकी
६ = अंतः प्रपाद
७ = धनुपाकारा
८ = गम्भीर पादतलिकी
९ = पहली पादपृष्ठ प्रपादीया
१० = पहली पादतल प्रपादीया
११ =
१२ = विवर्तनी
१३ = वेधनिका विवर्तनी
१४ = बाह्य गौल्फी
१५ = विवर्तनी पश्चिमगा
१६ = पादपृष्ठिका
१७ = बाह्य पादतलिकी
१८ = बाह्य कौर्ची
१९ = बाह्य पादतलिकी
२० = वेधनिका पश्चिमगा
२१ = कनिष्ठा की बाहरी ओर की पादतलिकी आङ्गुलीया
२२ = धनुपाकार धमनी की २, ३, ४, पादपृष्ठ प्रपादीया
२३ = २, ३, ४ पादतलिकी प्रपादीया
२४ = वेधनिका पुरोगा
२५ = तीसरी पादपृष्ठ प्रपादीया धमनी की शाखा जो कनिष्ठा के बाहरी ओर जाती है

केवल थोड़ी सी वसा और त्वचा से ही ढकी रहती है और कलाई के सामने अँगुली से दबाकर उसकी फड़क सहज में मालूम की जा सकती है। धमनीपरीक्षा में इसी धमनी से काम लिया जाता है। अंतःप्रकोष्ठिका धमनी भी टटोली जा सकती है परन्तु इतनी आसानी से नहीं क्योंकि वह अधिक ढकी रहती है।

हस्ततल में इन दोनों से बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं; कई शाखाओं के मेल से धमनियों की महराबें बन जाती हैं। इन महराबों से जो शाखाएँ निकलती हैं उनसे अँगुलियों का पोषण होता है। अँगुलियों के दोनों किनारों पर एक एक धमनी रहती है (रंगीन चित्र १७६)।

निम्न शाखा की धमनी (चित्र १७३, १७७, १७९)

यह धमनी उदर से निकलकर वंक्षण में पहुँचती है। वंक्षण के मध्य में जननेन्द्रियों से कुछ दूरी पर उसकी फड़क मालूम की जा सकती है। जाँघ के नीचे के भाग में पहुँच कर यह धमनी पीछे चली जाती है और जानु के पीछे होकर टाँग के ऊपर के भाग में पहुँचती है चित्र १४१ (जब जानु मुड़ता है अर्थात् जब टाँग जाँघ पर मुड़ती है तो जानु के पिछले भाग में एक गढ़ा पड़ जाता है; धमनी इसी स्थान में रहती है; इस गढ़े में ज़ोर से दबाकर उसकी फड़क मालूम की जा सकती है)। यहाँ उसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं; एक धमनी दोनों अस्थियों के बीच में होकर टाँग के सामने के भाग में आ जाती है; दूसरी टाँग के पिछले भाग का पोषण करती है। अगली धमनी शाखाएँ देती हुई पैर में पहुँचती है और यहाँ से पहली और दूसरी प्रपादास्थियों के बीच में हो कर पैर के तले में चली जाती है।

चित्र १८० बालक की ऊर्ध्व शाखा की धमनियों का एक्स-रे चित्र
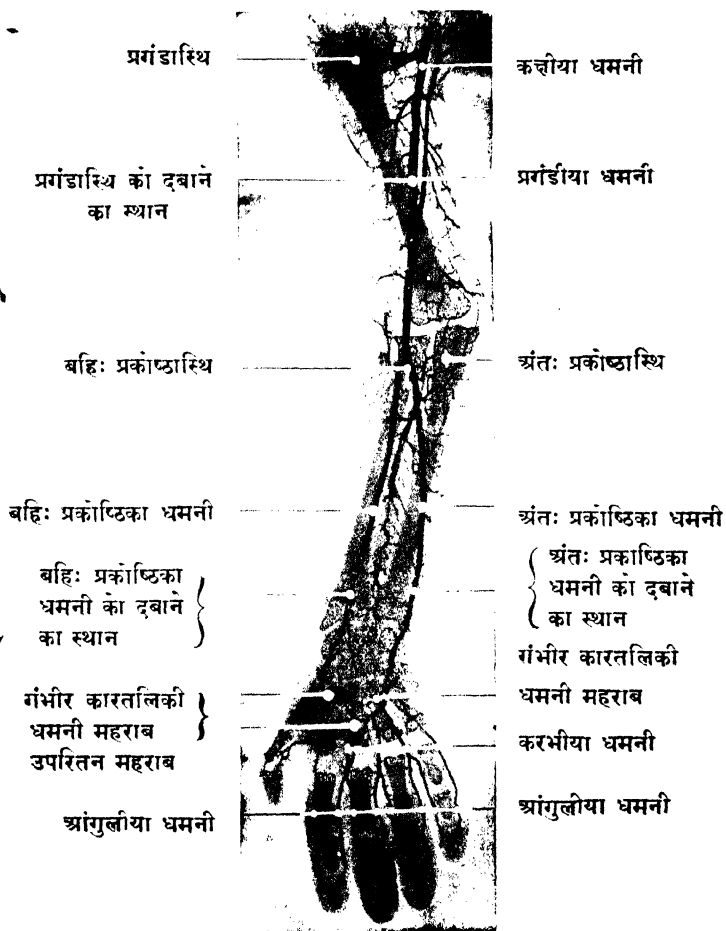
From Orrin's First Aid X—Ray Atlas of Arteries by permission

चित्र १७१ के सम्मुख

चित्र १८१ बालक की अधोशाखा की धमनियों का एक्स-रे चित्र
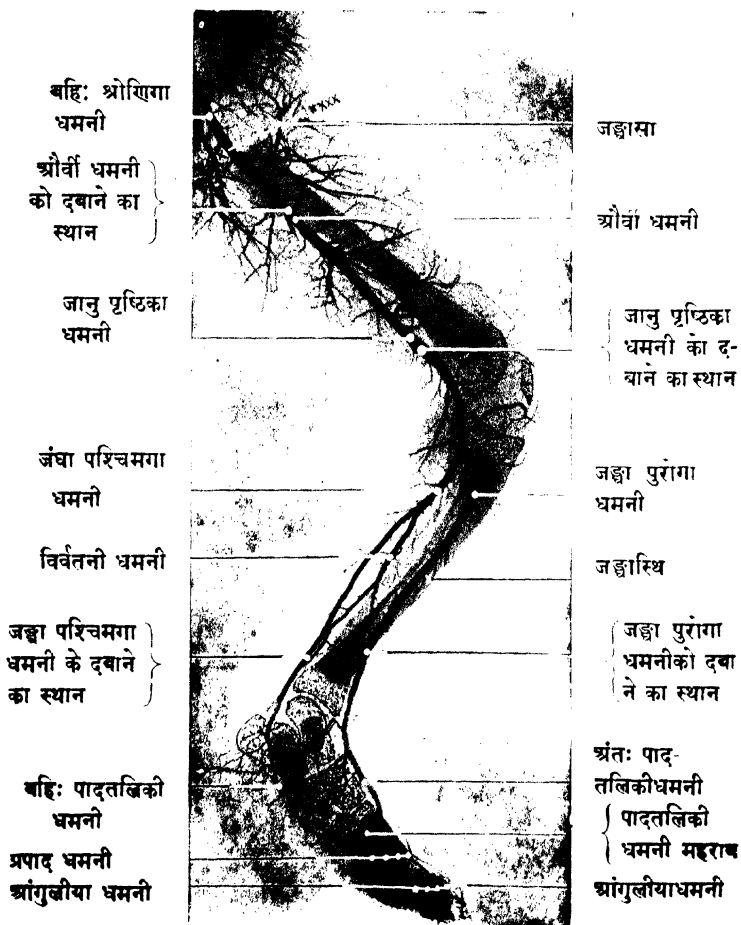
From Orrin's First Aid X—Ray Atlas of Arteries by permission

पृष्ठ ३११ के सम्मुख

पिछली धमनी पिंडली में बहुत सी शाखाएँ देती है और अंगुष्ठ की ओर के गट्टे के नीचे हो कर तले में पहुँचती है । इस गट्टे और एड़ी के बीच में इसकी फड़क मालूम की जा सकती है ।

तले में दोनों धमनियों के मेल से एक महराब बन जाती है जिससे पतली पतली शाखाएँ निकलती हैं; ये अंगुलियों का पोषण करती हैं (देखो रंगीन चित्र १७७) ।

धमनियों की नामकरण विधि

धमनियों के नाम बहुधा उन स्थानों और अंगों के पीछे रक्खे जाते हैं जिनका वे पोषण करती हैं जैसे चक्षु का पोषण करने वाली धमनी चाक्षुषी धमनी कहलाती है; ऐसे ही आमाशयिकी धमनी, फुप्फुसीया धमनी, हार्दिकी धमनी, पक्वाशयिकी धमनी, मौखिकी धमनी । इसी प्रकार अक्षकाधोवर्तिनी, कक्षीया, प्रगंडीया, प्रकोष्ठिका (अन्तः और बहिः) कारतलिकी, आंगुलीया; मूलश्रोणिगा, अंतःश्रोणिगा, बहिःश्रोणिगा, और्वी, नैतंबिकी, जंघापुरोगा, जंघापश्चिमगा, गौल्फी, कौर्ची; पादतलिकी, मूलशिरोधोवर्तिनी या शिरोधीया, काशेरुकी, कांठिकी, ताल्विकी, शांखिकी, हान्विकी, रासनिकी, शष्कुलीया; ग्रैवेयी, आश्रवी, स्वारयंत्रिकी, हार्दिकी, पशुकांतरिका, स्तनीया, आमाशयिकी, पक्वाशयिकी, काटिकी, याकृती, प्लैही, वृक्किका, आंडिकी, यौनी, गर्भाशयिकी, अंत्रोर्ध्व, अंत्राधः इत्यादि इत्यादि ।

धमनियों की संख्या

जब किसी बड़ी धमनी का वर्णन किया जाता है तो उसकी

चित्र १८२ की व्याख्या

१ = दाहिनी मूल शिरोधीया धमनी
२ = दाहिनी शिरोधीया शिरा
३ = दाहिनी लसीकावाहिनी
४ = दाहिनी दशमी नाड़ी
५ = शिरा
६ = ऊर्ध्व महाशिरा
७ = शिरा
८ = पर्शुका
९ = शिरा
१० = याकृती शिराएँ
११ = अधोगा महाशिरा
१२ = वक्षउदरमध्यस्थ पेशी की नीचे की दाहिनी धमनी
१३ = धमनी जिसकी याकृती, आमाशयिकी और प्लीहिकी नामक तीन शाखाएँ होती हैं
१४ = दाहिनी ओर की मध्य उपवृक्किका धमनी
१५ = दाहिना वृक्क
१६ = दाहिनी आण्डकी धमनी
१७ = दाहिनी मूत्रप्रणाली
१८ = कटिचतुरस्रा पेशी
१९ = जघन चूड़ा
२० = बाईं मूलशिरोधीया धमनी
२१ = बाईं दशमी नाड़ी
२२ = महालसीका वाहिनी
२३ = शिरा
२४ = बाईं अन्तकाधोवर्तिनी धमनी
२५ = बाईं स्वरयंत्राधः नाड़ी
२६ = अन्नप्रणाली
२७ = अन्नप्रणाली की धमनियाँ
२८ = शिरा
२९ = महालसीका वाहिनी
३० = वक्षउदरमध्यस्थ पेशी की बाईं धमनी
३१ = बाईं ओर की मध्य उपवृक्किका धमनी
३२ = लसीका-कोष
३३ = अंत्रोर्ध्व धमनी
३४ = बाईं आण्डकी धमनी
३५ = अंत्राधः धमनी
३६ = मूत्रप्रणाली

हमारे शरीर की रचना—भाग १ पाँचवी आवृत्ति—प्लेट ३८ चित्र १८२
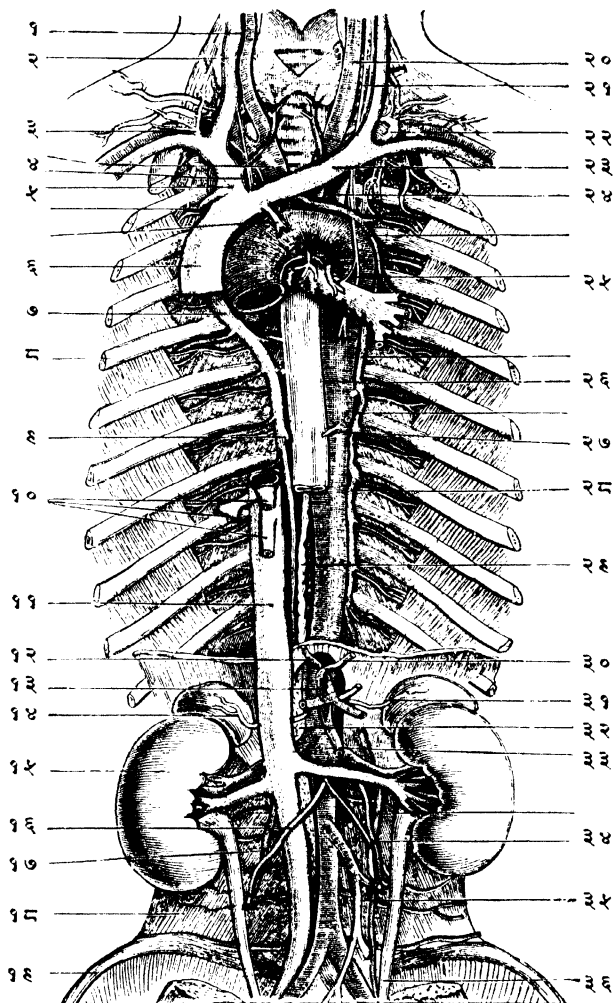
(From Morris's Anatomy—By permission)

पृष्ठ २२० के सम्मुख
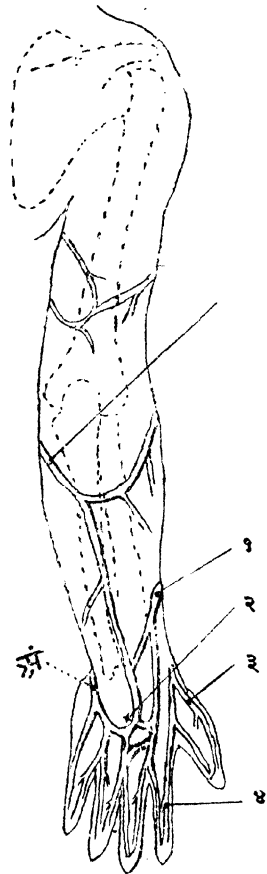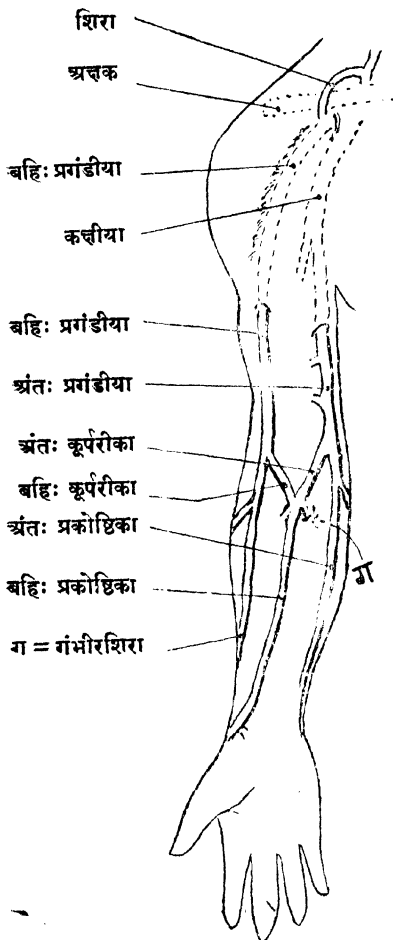
१ = अंतः प्रकोष्ठिका　२ = कर पृष्ठ शिरा महराब　३ = आंगुलीया शिरा

चित्र १८५ की व्याख्या

१ = पादांगुलीया शिरा
२ = उर्वंतः पार्श्विका शिरा
३ = गंभीर जंघिल शिरा
४ = जंघा बहि पार्श्विका शिरा
५ = जानु पृष्ठिका शिरा
६ = औवीं शिरा
७ = बाह्य श्रोणिगा शिरा
अ = अंतः श्रोणिगा ,,
८ = संयुक्ता (मूल) श्रोणिगा
९ = **अधोगा महाशिरा**
१० = आंडिकी या डिम्बिकी (दाहिनी)
१० = ,, ,,
११ = वृक्किका
१२ = अंत्रोर्ध्व शिरा
१३ = अंत्राधो ,,
१४ = प्लैही ,,
१५ = प्लीहा-क्लोम और अंत्राधो शिरा से मिली हुई शिरा
१६ = संयुक्ता शिरा
१७ = संयुक्ता शिरा
१८ = याकृती शिरा
१९ = हस्तांगुलीया शिरा (पृष्ठ की)
२० = हस्ततल की शिरा
२१ = बहिः प्रकोष्ठिका
२२ = अंतः प्रकोष्ठिका
२३ = बहिः कूर्परीका
म = मध्य प्रकोष्ठिका
२४ = अंतः कूर्परीका
ग = गंभीर शिरा
२५ = प्रगंडीया
२८ = कक्षीया
२९ = अक्षकाधोवर्त्ती
३३ = ऊर्ध्व शिरा कुल्या
३४ = उपरितन (मस्तिष्क की) शिरा
३५ = दाहिनीव्यत्यस्त (पार्श्विक) शिरा
३६ = अंतः श्रोधीया शिरा का आरंभ
३७, ४२ = गंभीर श्रोधीया शिरा
४३ = उपरितन श्रोधीया
३० = दाहिनी मूल श्रोधीया शिरा
३८ = अधो शिरा कुल्या
३९ = गंभीर शिरा
४० = सरल शिरा कुल्या
४१ = बाईं व्यत्यस्त शिरा कुल्या
४२ = बाईं गंभीर श्रोधीया
३१ = बाईं मूल श्रोधीया
३२ = **ऊर्ध्वगा महा शिरा**
३३ = वक्ष की दीवारों की शिरा
ह = हृदय की शिरा
फु = फुप्फुसीय शिराएँ

जिधर तीर की नोक है उधर को रक्त बहता है ।

शिराएं
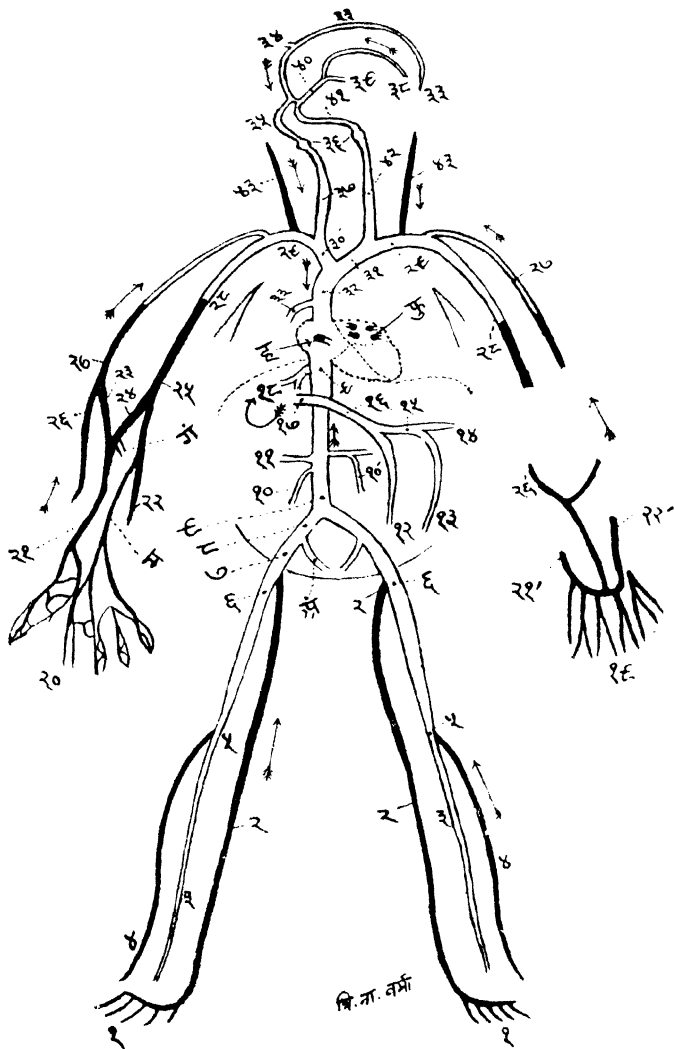
हमारे शरीर की रचना—भाग १, पाँचवी आवृत्ति—प्लेट ३९ चित्र १८६
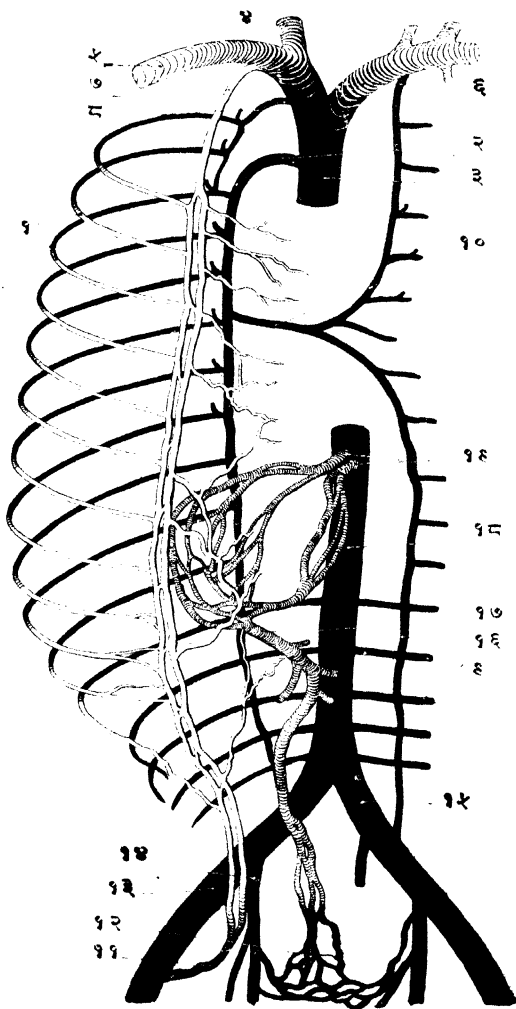
From Schultze-Lubosch's Topographische Anatomie

पृष्ठ ३२३ के सम्मुख

चित्र १८६ की व्याख्या

धड़ की शिराएँ

१ = पर्शुकांतरिका शि०; इनका रक्त एक शिरा में जाता है जो पीछे रीढ़ के पास रहती है और जिसको अज़ाइगोस शिरा (चित्र में २) कहते हैं।

२ = अज़ाइगोस* शिरा जो ऊर्ध्वगा महाशिरा में जाकर खुलती है

३ = ऊर्ध्वगा महाशिरा

४ = दाहिनी गम्भीर शिरोधीया शिरा

५ = दा० अक्षकाधोवर्ती

६ = बाईं मूल शिरोधीया।

७ = गम्भीर स्तनीया

८ = पर्शुकांतरिका उत्तमा

९ = काटिकी शिराएँ

१० = हेमी अज़ाइगोस* शिरा.

११ = उपरितन उदराधः (बाएँ)

१२ = सरलांत्रीय शिरा जाल (अर्श शिरा जाल)

१३ = दा० बाह्य श्रोणिगा

१४ = दा० अंतः श्रोणिगा

१५ = बा० मूल श्रोणिगा

१६ = ऊर्ध्वगा काटिकी

१७ = संयुक्ता शिरा

१८ = अधोगा महाशिरा

१९ = याकृती

---

*अंग्रेज़ी भाषा
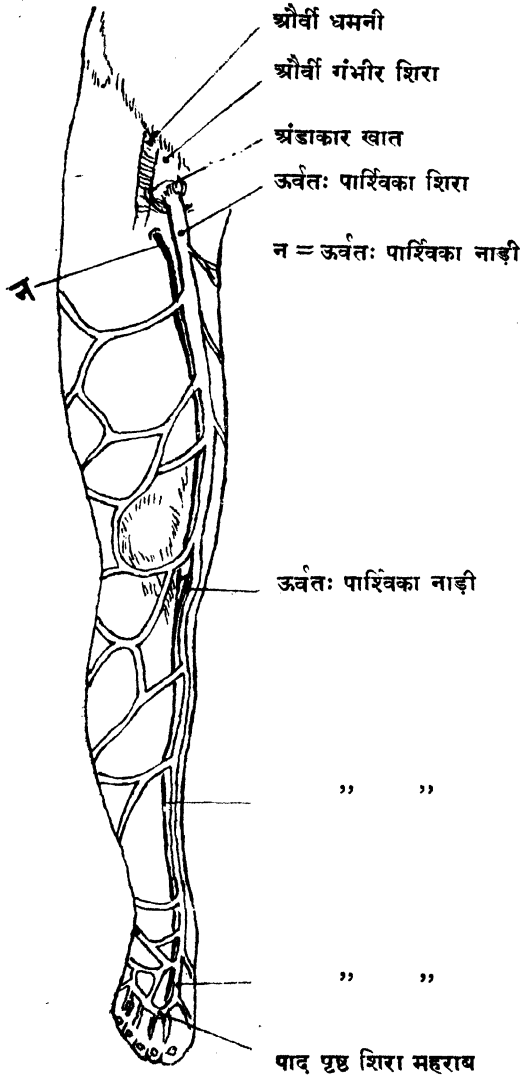
चित्र १८७ अधोशाखा की उपरितन शिरा

बड़ी बड़ी शाखाएँ गिनाई जाती हैं; छोटी छोटी शाखाएँ नहीं गिनी जातीं क्योंकि जब धमनी किसी अंग में प्रवेश करती है तो उससे अनेक शाखाएँ फूटती हैं जिनका गिनना असम्भव और व्यर्थ है। (देखो एक्स-रे चित्र १७८, १७९, १८०, १८१)

शिराएँ

जो रक्त किसी अंग में धमनी द्वारा जाता है वह शिरा द्वारा उससे बाहर निकलता है। बहुधा शिरा और धमनी पास पास रहती हैं; जिस स्थान पर धमनी अंग के भीतर घुसती है उसी स्थान से शिरा बाहर निकलती है। कभी कभी शिरा और धमनी दूर दूर रहती हैं। कहीं कहीं जो रक्त एक धमनी द्वारा अंग में जाता है वह एक से अधिक शिराओं द्वारा बाहर निकलता है। बड़ी बड़ी शिराएँ धमनियों के समान मांसादि से खूब ढकी रहती हैं। पतली या गोरी त्वचा से चमकती हुई नीली धारियाँ दिखाई दिया करती हैं; ये पतली पतली उपरितन शिराएँ होती हैं।

शिराओं के नाम बहुधा वही होते हैं जो उनके साथ की धमनियों के। शिराओं के लिये (देखो चित्र १८५, १८६, १८७)

——

अध्याय ११

श्वासोच्छ्वास संस्थान

शरीर में सेलों के टूटने फूटने और काम करने के समय भाँति भाँति की रासायनिक क्रियाओं के होने से अनेक प्रकार के पदार्थ बनते रहते हैं। इनमें से बहुत से पदार्थों के शरीर के भीतर रहने की कोई आवश्यकता नहीं है, कुछ पदार्थ तो ऐसे भी होते हैं कि यदि वे शरीर में अधिक देर तक रहें तो बहुत से विकारों के उत्पन्न होने की सम्भावना हो जाती है। इस कारण इन पदार्थों को बाहर निकालने का प्रबन्ध शरीर में किया गया है। कई इन्द्रियों का यह काम है कि जब रक्त उनमें जावे तो वे उसमें से हानिकारक पदार्थ निकाल लें और फिर इन पदार्थों को श्वास, मूत्र और पसीने द्वारा शरीर से बाहर पहुँचा दें।

रक्त को शुद्ध करने वाले मुख्य अंग ये हैं :—

१. फुप्फुस

२. वृक्क

३ त्वचा

इनके अतिरिक्त यकृत्, प्लीहा और अन्य कई ग्रन्थियाँ भी रक्त की शुद्धि करने में सहायता देती हैं।

फुप्फुसों द्वारा रक्त की शुद्धि

फुप्फुसों द्वारा शरीर से तीन चीजें बाहर निकलती हैं और एक चीज़ उसमें प्रवेश करती है। बाहर निकलने वाली चीज़ें ये हैं :—

चित्र १८८ फुप्फुस (सामने का भाग) (Bonamy's Atlas)
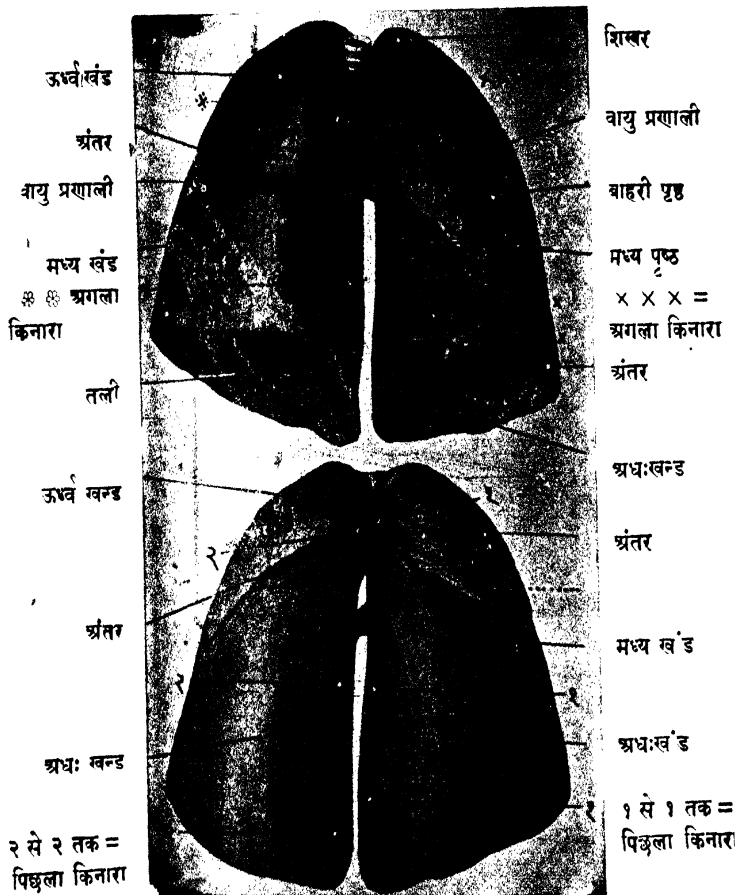
फुप्फुस (पिछला भाग)

पृष्ठ ३२६ के सम्मुख

चित्र १८६

चित्र १६०

दाहिना फुप्फुस अंतः पृष्ठ

चित्र १८९

१, १ = अन्नप्रणाली परिखा
२ = शिरा परिखा
३ = ऊर्ध्वखंड-अधरखंड अंतर
४ = अंतर (नं० ३ का अंत)
५ = ऊर्ध्व महाशिरा परिखा
६ = ऊर्ध्वखंड-मध्यखंड अंतर
७ = अनामिका धमनी परिखा
८ = फुप्फुस की तली जो नतोदर होती है
९ = परिफुप्फुसीया कला
१० = फुप्फुस-मूल बंधन
११ = शिरा
ग = लसीका ग्रन्थि; व = वायु प्रणाली
श = फुप्फुसीया शिरा; ध = फुप्फुसीया धमनी
शिखर से प तक = पिछला किनारा
शिखर से अ तक = अगला किनारा

बायाँ फुप्फुस अंतः पृष्ठ चित्र १९०
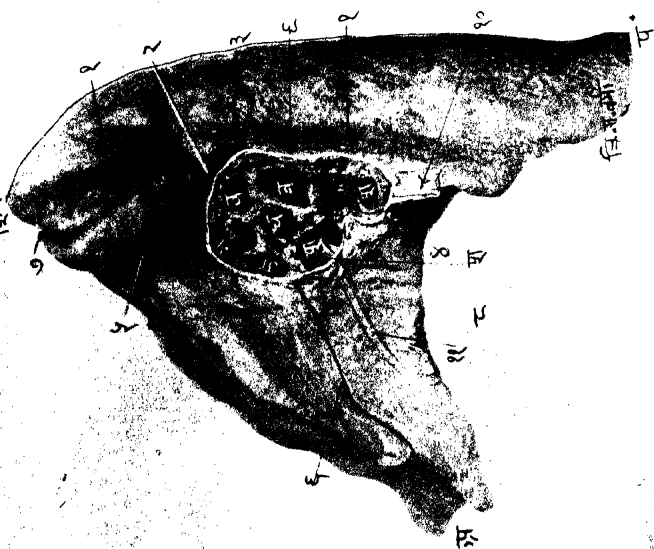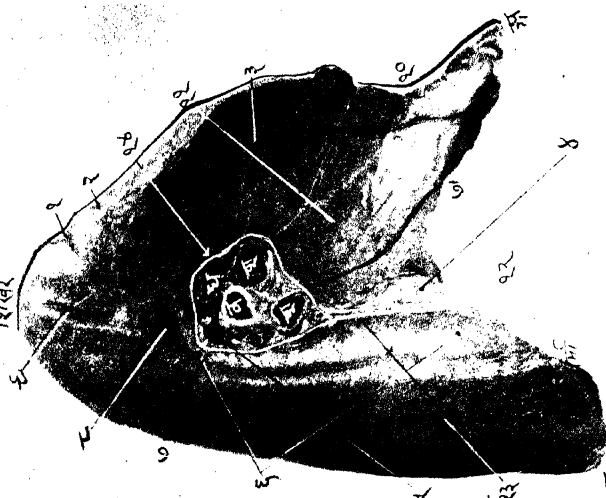
१ = अनामिका शिरा परिखा
२ = पर्शुका परिखा
३ = वक्षउदर मध्यस्थ नाड़ी परिखा
४ = यहाँ अन्न प्रणाली रहती है
५ = लसीका ग्रन्थि
६ = महाधमनी परिखा
७ = ऊर्ध्वखंड-अधरखंड अंतर
८ = महाधमनी की महराब की परिखा
९ = अक्षकाधोवर्तिनी धमनी परिखा
११ = यहाँ हृदय रहता है
१२ = फुप्फुस की तली
१३ = फुप्फुस बंधन
१४ = परिफुप्फुसीया धमनी
ध = फुप्फुसीया कला
व = वायु प्रणाली
श = फुप्फुसीया शिरा
शिखर से अ तक = अगला किनारा
शिखर से प तक = पिछला किनारा

१. कर्बनद्विओषित गैस
२. उड़नशील हानिकारक पदार्थ
३. जलीय बाष्प

जो चीज़ शरीर ग्रहण करता है वह ओषजन गैस है।

फुप्फुस या फेफड़ा (चित्र १८८, १८९, १९०)

फुप्फुस दो होते हैं। वे वक्ष (छाती) में हृदय के दाहिनी और बाईं ओर रहते हैं (चित्र १८८) दाहिना फुप्फुस बाएँ की अपेक्षा अधिक चौड़ा और भारी होता है। फुप्फुस कुछ कुछ गावदुमी या शंकाकृति होता है ; एक ओर पतला और कम चौड़ा होता है; दूसरी ओर मोटा और अधिक चौड़ा होता है। पतला और नोकीला भाग जिसको फुप्फुस का शिखर कहते हैं गरदन की ओर अक्षकास्थि के पीछे रहता है; मोटा और चौड़ा भाग जो तली या अधोभाग कहलाता है नीचे को उदर की ओर रहता है और उस परदे पर रक्खा रहता है जिसका नाम वक्षउदरमध्यस्थ पेशी है (देखो चित्र १९६, १९८)। इस परदे द्वारा वक्ष की कोठरी उदर की कोठरी से जुदा होती है (चित्र २०१); इसमें नलियों के आने जाने के लिये कई छिद्र होते हैं । दोनों फुप्फुसों की तलियाँ गहरी अर्थात् नतोदर होती हैं ; दाहिने फुप्फुस की तली बाएँ से अधिक गहरी होती है। फुप्फुसों का वह भाग जो वक्ष की दीवार से मिला रहता है उभरा हुआ और उन्नतोदर होता है ; हृदय के सम्मुख वाला भाग गहरा और नतोदर होता है । दाहिना फुप्फुस बाएँ से अधिक चौड़ा और भारी परन्तु कम ऊँचा होता है । दाहिने फुप्फुस में दो दरारें होती हैं (द १ द २ चित्र २०१) जिनसे उसके तीन खण्ड हो

जाते हैं, बाएँ फुप्फुस में केवल एक ही दरार होती है और उसके केवल दो ही खंड होते हैं। ये भाग आपस में जुड़े रहते हैं।

प्रौढ़ मनुष्य के फुप्फुस का रंग कुछ नीलाहट लिये हुए भूरा सा होता है (कुछ कुछ स्लेट का सा रंग समझिये)। जन्म से पहले (गर्भ में) फुप्फुस का रंग गहरा लाल होता है; नवजात बालक के फुप्फुस का रंग गुलाबी होता है।

फुप्फुस ऊपर से चिकने और चमकीले होते हैं और उन पर कुछ चित्तियाँ पड़ी रहती हैं (देखो, चित्र १८८, २०१) स्पर्श करने से वे मुलायम मालूम होते हैं। यदि आप फुप्फुस को अंगुलियों से दबायें तो वह स्पंज जैसा मालूम होगा और वायु भरे रहने के कारण धीमा धीमा कर कर जैसा शब्द भी सुनाई पड़ेगा। काटने पर फुप्फुस में स्पंज की भाँति बहुत से छोटे और बड़े छिद्र दिखाई देते हैं (चित्र १९३)। कटे हुए भाग को भींचें तो इन छिद्रों में से झागदार तरल निकलेगा। ये छिद्र रक्त और वायु की नलियों के मुख हैं।

भारतवासियों के दोनों फुप्फुसों का भार एक सेर के लगभग होता है; स्त्रियों में ज़रा इससे कुछ कम होता है। युरोपनिवासियों (जैसे अँग्रेज़) के फुप्फुसों का भार सवा सेर के क़रीब होता है।

स्वस्थ मनुष्य के फुप्फुस वायु से भरे रहने के कारण जल से हलके होते हैं; यदि (मृत) शरीर से निकालकर जल में डाल दिये जायें तो वे तैरेंगे। परन्तु न्युमोनिया (फुप्फुस प्रदाह) और क्षय रोग (तपेदिक, थाइसिस) में फुप्फुस के वे भाग जिनमें ये रोग हो कुछ ठोस हो जाते हैं और उनमें वायु नहीं रहती; इस कारण ये भाग पानी में तैरते नहीं (चित्र १९२)।

चित्र १६४ की व्याख्या

१ = अधोगामी महाशिरा का रास्त

२ = कंडरा का दाहिना भाग

३ = महाधमनी

४ = पेशी का दाहिना स्तंभ

५ = कटि लम्बिनी लघ्वी पे०

६ = कटि लम्बिनी बृहती पे०

७ = उदरच्छदा अंतःस्था पे०

८ = कटि चतुरस्रा पे०

९ = चौथा कटि कशेरुका

१० = दूसरे कटि कशेरुका का पार्श्व प्रवर्द्धन

११ = बाह्य कटि-पर्शुका महराब

१२ = बायाँ स्तंभ

१३ = अंतः कटि-पर्शुका महराब

१४ = पेशी का पर्शुकाओं से निकलने वाला भाग

१५ = कंडरा का बायाँ भाग

१६ = अन्न प्रनाली

१७ = कंडरा का बीच का भाग

१८ = पेशी का वक्षोऽस्थि से आरंभ होनेवाला भाग

चित्र १६४—वक्ष-उदर-मध्यस्था पेशी
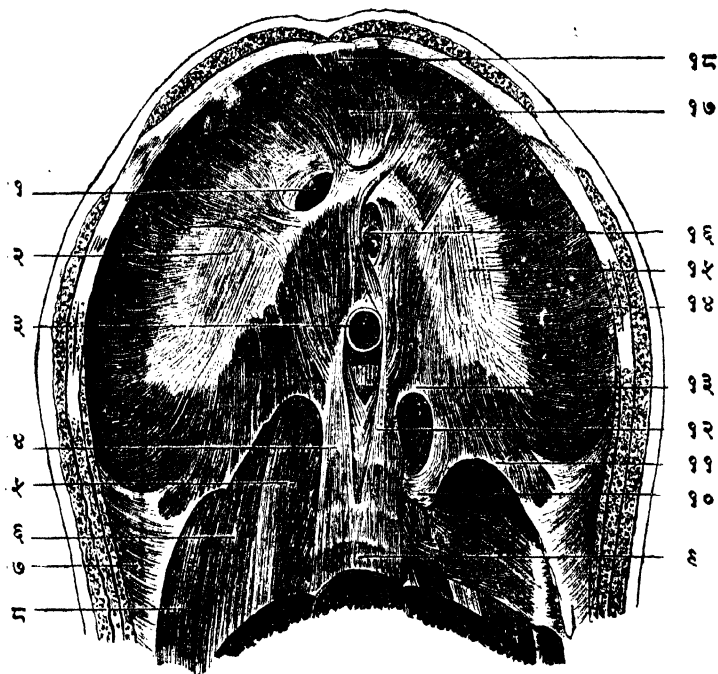
From Morris's Human Anatomy—by kind permission of Messrs P. Blakiston's Son & Co. Philadelphia.

चित्र १६५ की व्याख्या

वक्षःस्थल का व्यत्यस्त काट इस प्रकार काटा गया है कि छुरी वक्ष के पाँचवें और चौथे कशेरुकाओं के गात्रों के बीच में रहनेवाली कारटिलेज की चक्री में से होकर गुज़री। इस चित्र में यह स्पष्टरूप से दिखाई देता है कि फुप्फुस परिफुप्फुसीया कला से किस प्रकार ढके रहते हैं। इस कला की एक तह वक्ष की भीतरी दीवार से चिपटी रहती है, दूसरी तह फुप्फुस से; ये दोनों तहें फुप्फुस मूल पर पहूँचकर एक दूसरे से मिल जाती हैं।

देखो चित्र के बाहर : — १ = बाईं परिफुप्फुसीया कला जो वक्ष की दीवार पर पहुँचेगी; २, ३; ४ = वक्ष की भीतरी दीवार पर रहनेवाली परिफुप्फुसीया कला; ५ = फुप्फुस से चिपटी हुई कला; ६ = यहाँ पर फुप्फुस से चिपटी हुई कला, वक्ष की भीतरी दीवार पर रहनेवाली कला से मिल जाती है (जैसे १, २, ३, ४, ५, ६); १, २, ३, ४, = दाहिनी परिफुप्फुसीया कला। स्त = स्तनीया धमनी वा शिरा; न १ = वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी की बाईं नाड़ी; प २ = बाईं दूसरी पर्शुका कटी हुई; प ३ = बाईं तीसरी पर्शुका कटी हुई; प ४ = बाईं चौथी पर्शुका कटी हुई; ऊ = शिरा; स = स्कन्धास्थि कटी हुई; क = कशेरु पार्श्व प्रवर्द्धन; प ४ = चौथी पर्शुका मुण्ड; न ५ = मस्तिष्क की दशमी नाड़ी (बाईं); सु = सुषुम्ना; अ = अन्न प्रणाली; ल = महालसीका वाहिनी। प ४ = दाहिनी चौथी पर्शुका का मूण्ड। न ४ = अधः स्वरयांत्रिकी नाड़ी (दाहिनी); न ३ = दाहिनी दशमी मास्तिष्क नाड़ी ; ३, ४, २, १, = परिफुप्फुसीया कला ; ग = लसीका ग्रन्थि, अ प = पेशी; अ प = अंश पर्शुका पेशी, प ३, प २ = दाहिनी दूसरी और तीसरी पर्शुका कटी हुई ; अं = परिफुप्फुसीया कला की दोनों तहों के बीच का अंतर ; उ प २ = दूसरी उप पर्शुका।

चित्र के भीतर :—

अ, ध = अधोगा महाधमनी; १ = दाहिनी वायु प्रणाली; = यहाँ टेंटुवा कटा है ; २ = बाईं वायु प्रणाली; ऊ ध = ऊर्ध्वगा महा धमनी ; म श = ऊर्ध्व महाशिरा।

चित्र १६६ की व्याख्या

एक नौ दस वर्ष के लड़के की शव इस प्रकार काटी गई है कि छुरी दाहिनी मध्य वंक्षण रेखा में से होकर गुज़री। एक भाग में दाहिनी शाखा लगी रही; इस भाग के सम्मुख भाग का यह फोटो है।

४, ५, ६ = कटी हुई पर्शुकाएँ

७, ८ = कटी हुई उपपर्शुकाएँ

६, ७, ८, ६, १०, ११ = दाहिनी पर्शुकाएँ कटी हुई

१२, १३ = परिफुप्फुसीया कला (वह भाग जो वक्ष की दीवारों से लगा रहता है)

१४ = परिफुप्फुसीया कला वृक्क के पीछे भी कुछ दूर तक रहती है

१५ = परिफुप्फुसीया कला का वह भाग जो फुप्फुस से लगा रहता है

१६ = परिफुप्फुसीया कला

१७, १८, १६ = वक्षउदरमध्यस्थ पेशी

२१ = परिविस्तृत कला जो यकृत् पर चढ़ी हुई है

२२, २३ = उदर की अगली दीवार के पिछले पृष्ठ पर रहनेवाली परिविस्तृत कला (उदरक कला)

२४ = अंत्रच्छदा कला

२५, ३२ = वृहत् अंत्र की थैली

२६ = क्षुद्रांत्र और वृहत् अंत्र के बीच का कवाट। यहाँ क्षुद्रांत्र का वृहत् अंत्र से सम्बन्ध होता है।

२७ = उपांत्र का मुख

२८ = धमनी

२६ = जघनचूड़ा

३० = मांसावरक कला

३१ = श्लैष्मिक कला का झोल

३३ = त्रिक पृष्ठिका कला

३४ = परिवृक्क वसा

चित्र में श्रोणिपक्षिणी = जघनीया पेशी

३५ = जघनास्थि और कुकुन्दरास्थि के बीच का कारटिलेज

३६ = कुकुन्दरास्थि

प्रत्युत डूब जाते हैं। यदि समस्त फुप्फुस ख़राब हो गया हो तो वह सब का सब डूब जायगा (चित्र १९२)

फुप्फुस जल में तब ही तैर सकता है कि जब उसमें वायु भरी हो। जन्म से पहले अर्थात् गर्भकाल में बालक के फुप्फुसों के भीतर वायु नहीं रहती; इस समय बालक श्वास नहीं लेता और रक्त की शुद्धि भिन्न प्रकार से होती है। इस समय फुप्फुस का गुरुत्व पानी के गुरुत्व से अधिक होता है; पानी का गुरुत्व १००० माना जाय तो फुप्फुस का १०६८ के लगभग होगा। इस कारण इस समय का फुप्फुस जल में डूब जाता है। उन बच्चों के फुप्फुस जो मुर्दा पैदा होते हैं जल में नहीं तैरते कारण यह है कि उन्होंने जन्म होने के समय कोई श्वास नहीं लिया और वायु ने उनके फुप्फुसों में प्रवेश नहीं किया। यदि बच्चे ने पैदा होने के पश्चात् एक भी श्वास ले लिया है तो उसके फुप्फुस जल में न डूबेंगे; वे तैरते रहेंगे। फुप्फुस का जल में तैरना इस बात को सिद्ध करता है कि बच्चा पैदा होने के पश्चात् जिया है (या जीवित उत्पन्न हुआ है) उनका डूबना इस बात का साक्षी है कि बच्चा मृत उत्पन्न हुआ।

प्रत्येक फुप्फुस के ऊपर एक पतला सौत्रिक तंतु से निर्मित आवरण (वेष्ट) चढ़ा रहता है। यह झिल्ली दोहरी होती है; एक तह फुप्फुस के पृष्ठ से बिलकुल चिपटी रहती है दूसरी तह वक्ष की भीतरी दीवार से (जो पसलियों और पसलियों के अंतर में रहनेवाले मांस से बनती है)। इन दोनों तहों के सम्मुख पृष्ठ बहुत चिकने और चमकीले होते हैं और सदा ही तरल से कुछ भीगे रहते हैं। इन पृष्ठों के चिकने होने के कारण फुप्फुसों के फैलने के समय किसी प्रकार की

रगड़ नहीं होती । "पसली का दर्द" बहुधा इसी झिल्ली के प्रदाह से उत्पन्न होता है । इस झिल्ली को **फुप्फुसावरण** या **परिफुप्फुसीया** कला कहते हैं । परिफुप्फुसीया कला के लिये देखो (चित्र १९३, १९५, १९६, १९७, १९८, २०४) और इन चित्रों की व्याख्या । चित्र १९५, १९७ और २०४ में फुप्फुसों का हृदय से क्या सम्बन्ध है यह साफ़-साफ़ दिखाई देता है । चित्र १९६, और १९८ में फुप्फुसों का उदर के अंगों से क्या सम्बन्ध है साफ़-साफ़ मालूम होता है ।

श्वास मार्ग

नासिका के छिद्रों से लेकर फुप्फुस पर्यंत तक वायु के जाने और आने का जो रास्ता है उसका नाम श्वास मार्ग है । श्वास मार्ग के पाँच भाग हैं :—

१. नासिका की सुरंगें या बिल—वायु इन्हीं के द्वारा भीतर घुसती है ।

२. गला या कंठ—नासिका में वायु कंठ से जाती है ।

३. स्वरयंत्र—गले से वायु इस कोष्ठ में जाती है ।

४. टेंटुवा या श्वसनी–स्वरयंत्र से वायु इस नली में जाती है ।

५. वायु प्रणालियाँ—टेंटुवे से वायु इन नलियों में जाती है, इन नलियों की अनेक सूक्ष्म सूक्ष्म शाखाओं द्वारा जो फुप्फुसों के हर एक भाग में व्याप्त है वायु समस्त फुप्फुस में पहुँचती है ।

आपको आश्चर्य होगा कि श्वास मार्ग के भाग गिनाते हुए हमने "मुँह" को छोड़ दिया । कारण यह है कि मुह श्वास लेने के लिए नहीं है ; उसके द्वारा श्वास लेना अनुचित है । श्वास मार्ग के ५ भागों में से १, २, ३ का वर्णन इस पुस्तक के दूसरे भाग में मिलेगा ।

चित्र १६७ की व्याख्या

यह वक्ष का व्यत्यस्त काट है ; छुरी वक्ष के पाँचवें कशेरुका के गात्र में से होकर गुज़री है ।

देखो चित्र के बाहर :—

ह = हृदावरण ; १ = परिफुप्फुसीया कला का वह भाग जो हृदावरण से मिला रहता है ; २ = वक्ष की भीतरी दीवार से लगी हुई परिफुप्फुसीया कला ; ३ = दक्षिण ग्राहक कोष्ठ का शिखर ; थ = थाइमस ग्रन्थि का शेष भाग ; उप २ = दूसरी उपपर्शुका ; न २ = वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी की दाहिनी नाड़ी ; प ३ = तीसरी पर्शुका कटी हुई ; फ श = दाहिनी फुप्फुसीया शिरा ; पे = अंश पर्शुका पेशी ; प ४ = चौथी पर्शुका कटी हुई ; स = स्कन्धास्थि ; प ५ = पाँचवीं पर्शुका ; फ ध = फुप्फुसीया धमनी ; न ३ = अधः स्वरयांत्रिकी नाड़ी ; व प १ = वायु प्रणाली ; ल = महालसीका वाहिनी ; ५ = शिरा ।

सु = सुषुम्ना ; श = शिरा ; व प २ = बाईं वायु प्रणाली ; प ५ , प ४ ,प ३ = बाईं ओर की ५ वीं, ४ थी, ३ री पर्शुकाएँ; स = स्कन्धास्थि; १ २ = परिफुप्फुसीया कला;फ ध = फुप्फुसीया धमनी ; फ श = फुप्फुसीया शिरा ; ६, ७ = जब हम गहरा श्वास लेते हैं तो फुप्फुसों के अगले किनारे यहाँ तक आ जाते हैं ।

चित्र के भीतर :—

ऊ श = ऊर्ध्व महाशिरा ; ऊ ध = ऊर्ध्वगा महाधमनी ; ध = फुप्फुसीया धमनी का आरम्भ ; ग = ग्राहक कोष्ठ ; अ = अन्न प्रणाली ; अ ध = अधोगा महाधमनी ।

चित्र १६८ की व्याख्या

एक नौ दस वर्ष के लड़के की शव इस प्रकार काटी गई है कि छुरी बाईं मध्यवंक्षण रेखा में से होकर गुज़री। अब शरीर के दो भाग हो गए; एक भाग में अभी बाईं ऊर्ध्व शाखा लगी हुई है; यह फोटो इसके सम्मुख भाग का है।

१, २, ३ = वक्षउदरमध्यस्थ पेशी

४′, ५′, ६′, ७′, ८′ = चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं उपपर्शुकाएँ (कटी हुई)

७, ८, ९, १०, ११, १२ = सातवीं, आठवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं पर्शुकाएँ (कटी हुई)

बारहवीं पर्शुका बाएँ वृक्क के पीछे रहती है।

१३ = अंत्रच्छदा कला की अगली दो तहें १४, १५, १६ = अंत्रच्छदा कला

१७ = अंत्रच्छदा की पिछली दो तहें १८ = अनुप्रस्त बृहत अंत्र

अंत्रच्छदा कला = इसकी चार तहें होती हैं जिनमें थोड़ी बहुत वसा रहा करती है। मोटे मनुष्यों में वसा बहुत होती है। यह कला क्षुद्रांत्र को ढके रहती है। इस कला की अगली दो तहें (१३) ऊपर जाकर आमाशय के अगले और पिछले पृष्ठों को ढक लेती हैं; पिछली दो तहें (१७) अनुप्रस्त बृहत् अंत्र को ढक लेती हैं और फिर क्लोम तक पहुँचकर (१६) एक दूसरे से पृथक् हो जाती हैं (देखो क्लोम) नीचे की तह (२०) से ही क्षुद्रांत्र धारक कला बनती है।

२१, २२, २३ = उदर की अगली दीवार के पिछले पृष्ठ पर रहनेवाली परिविस्तृत (उदरक) कला

२४ = बृहत् अंत्र २५, २६ = परिफुप्फुसीया कला (फुप्फुस से लगा हुआ भाग)

२७, २८ = परिफुफुप्सीया कला (पसलियों से लगा हुआ भाग)

२८ = परिफुप्फुसीया कला वृक्क के पीछे भी रहती है २९, ३० = हृदय वेष्ट

३१ = परिफुप्फुसीया कला और हृदयवेष्ट मिले हुए हैं

३२ = अन्नप्रणाली का अंत (हृदय द्वार)

३३ = शिरा ३४ = कटी चतुरस्रा पेशी ३५, ३६, ३७ = कलाएँ

३५ और ३६ के बीच में = कटी चतुरस्रा पेशी

३६ और ३७ के बीच में = त्रिक पृष्ठिका पेशी

३८ = जघनचूड़ा (कारटिलेजकृत)

टेंटुवा या श्वसनी (चित्र १९९, २००, २०२)

सामने की तरफ़ ग्रीवा की मध्य रेखा में टटोलने से एक कड़ी और लम्बी चीज़ मालूम होती है। जब हम कोई चीज़ निगलते हैं तो यह ऊपर को उठती और फिर नीचे को गिरती हुई दिखाई देती है। इस अंग का ऊपर का मोटा और चौड़ा भाग **स्वरयंत्र** है। नीचे का शेष भाग जो वक्षोऽस्थि के पीछे हो कर छाती के भीतर चला जाता है टेंटुवा है (चित्र २००)।

टेंटुवे की लम्बाई ४½ इंच होती है और उसका व्यास १ इंच से कुछ कम। उसका छिद्र क़रीब क़रीब गोल होता है (उसका पीछे का भाग जो अन्न प्रणाली से मिला रहता है

चित्र १९९ टेंटुवे की रचना
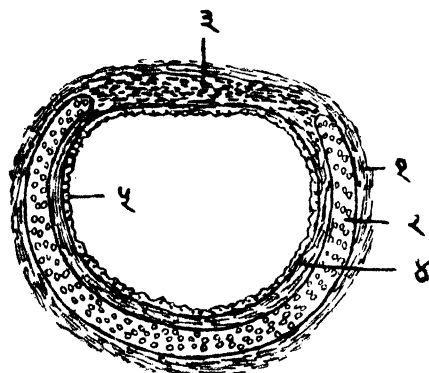
१—सौत्रिक तंतु ; २—कारटिलेज ; ३—मांस ; ४—सौत्रिक तंतु ; ५—श्लैष्मिक झिल्ली *

* श्लैष्मिक झिल्ली के लिये देखो अध्याय १४।

सपाट होता है अगला भाग गोल होता है) ; (देखो चित्र १९९)। ग्रीवा में टेंटुवे का ऊपर ही का भाग रहता है, नीचे का भाग वक्ष के भीतर रहता है।

टेंटुवे की दीवार कारटिलेजों से बनी होती है। कारटिलेज के छल्ले एक दूसरे के ऊपर रक्खे रहते हैं; इन छल्लों के मुँह पीछे से खुले रहते हैं और इसी स्थान पर टेंटुवा चपटा होता है। छल्लों की संख्या १६ से २० तक होती है (चित्र २००) कोई कोई छल्ला पिछले सिरे पर से फटा हुआ होता है ; कभी कभी ऊपर नीचे के दो छल्ले कुछ दूर तक एक दूसरे से जुड़े रहते हैं; सब छल्ले आपस में सौत्रिक तंतु द्वारा बँधे रहते हैं। कारटिलेज के दोनों पृष्ठों पर सौत्रिक तंतु की एक तह चढ़ी रहती है, पीछे जहाँ वे खुले रहते हैं सौत्रिक तंतु और अनैच्छिक (स्वाधीन) मांस की तह होती है; टेंटुवे का पिछला दबा हुआ और चपटा भाग इसी तह से बनता है। छल्लों के भीतरी पृष्ठ पर सौत्रिक तह के ऊपर श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है (देखो चित्र १९९)।

ग्रीवा में टेंटुवे के पीछे अन्न प्रणाली रहती है; उसके दाहिनी और बाईं ओर ग्रीवा की धमनियाँ, उसके सामने (ऊपर के भाग में) चुल्लिका ग्रन्थि और कई मांस पेशियाँ वसा और त्वचा रहती हैं। ग्रीवा के नीचे के भाग से टेंटुवा वक्षोऽस्थि के पीछे होकर वक्ष में पहुँचता है। अब अन्नप्रणाली उसके पीछे रहती है; और वृहत् धमनी की महराब उसके सामने और उसके बाईं ओर। वक्ष के चौथे या पाँचवें कशेरुका के सामने जाकर वह दो शाखाओं में विभक्त होकर खतम हो जाता है। ये शाखाएँ **वायु प्रणालियाँ** कहलाती हैं दाहिनी और बाईं (चित्र २००)।

चित्र २०२ टेंटुवे की सूक्ष्म रचना (अणुवीक्षण द्वारा)

(Schafer's Histology)
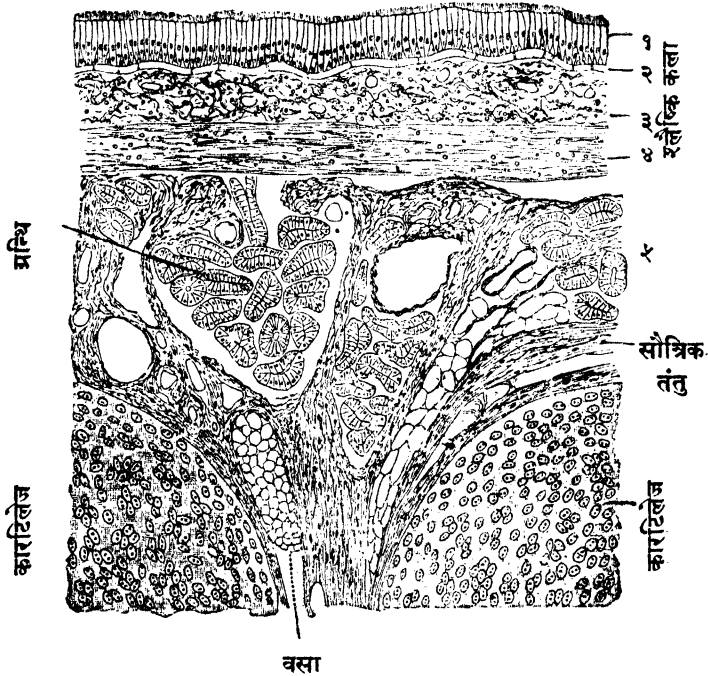
१ = सेलों की तह, इन सेलों के सिरों से बाल जैसे तार निकले रहते हैं। २ = झिल्ली। ३ = श्लैष्मिक कला का उपरितन भाग इसमें केशिकाएँ हैं। ४ = श्लैष्मिक कला का नीचे का भाग जो स्थितिस्थापक सौत्रिक तंतु से निर्मित है.। ५ = यहाँ बहुत सी ग्रन्थियाँ रहती हैं। यह काट लम्बाई के रुख है इस कारण दो छल्लों के कारटिलेज दिखाई देते हैं।

वायु प्रणालियाँ या श्वास प्रणालियाँ

इनकी दीवारें टेंटुवे की दीवार के समान सौत्रिक तंतु, कारटिलेज के छल्लों, श्लैष्मिक झिल्ली और स्वाधीन मांस से निर्मित हैं। दाहिनी वायु प्रणाली दाहिने और बाईं बाएँ फुप्फुस से संबन्ध रखती है। दाहिनी प्रणाली बाईं की अपेक्षा छोटी परन्तु अधिक चौड़ी होती है। दाहिनी की लम्बाई १ इञ्च बाईं की दो इञ्च होती है (चित्र २००)।

चित्र २०३ फुप्फुस खंडिका की रचना

(Furneaux's Physiology)
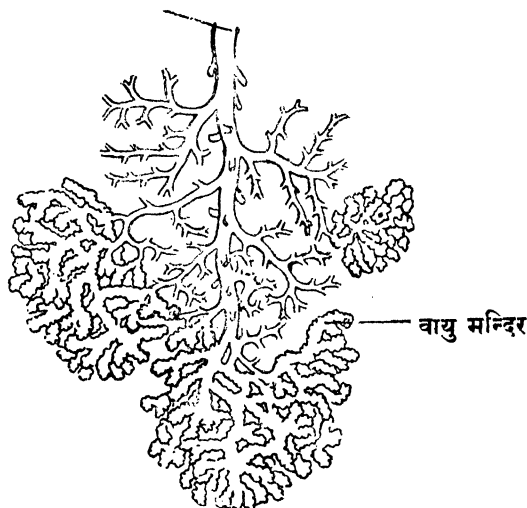
इस चित्र में वायु प्रणालिका की अनेक सूक्ष्म शाखाएँ और उनका वायु मंदिरों से संबंध दर्शाया गया है; प्रत्येक वायु मंदिर में बहुत से वायु कोष्ठ हैं।

सूक्ष्म वायु प्रणालियाँ (श्वास प्रणालिकाएँ)

फुप्फुस में घुसते ही श्वास प्रणाली की बहुत सी शाखाएँ हो जाती हैं; इन शाखाओं द्वारा वायु फुप्फुस के सब भागों में पहुँचती है। सब से नन्हीं शाखाएँ अणुवीक्ष्य होती हैं।

फुप्फुस की रचना (चित्र २०१, २०३)

फुप्फुस के अनेक छोटे छोटे अंश होते हैं जो आपस में सौत्रिक तंतु द्वारा जुड़े रहते हैं। प्रत्येक अंश या खंडिका को एक सूक्ष्म आकार और परिमाण का फुप्फुस समझना चाहिये। इस खंडिका से एक श्वास प्रणालिका लगी होती है; यह प्रणालिका कई कोठरियों से सम्बन्ध रखती है जिनका नाम **वायु मन्दिर** है। वायु मन्दिरों की दीवारें सेलोंसे बनी होती हैं। फुप्फुस के प्रत्येक अंश में रक्त और लसीका की सूक्ष्म नलियाँ और केशिकाएँ और नाड़ी सूत्र रहते हैं। ये सब चीजें—सूक्ष्म वायु प्रणाली, वायु मन्दिर, रक्त और लसीका की नलियाँ और केशिकाएँ और वात सूत्र आपस में सौत्रिक तन्तु की सहायता से इकट्ठी रहती हैं। ऐसे ऐसे सहस्रों खण्डिकाओं के आपस में मिले रहने से फुप्फुस बनता है।

वायु मन्दिर की रचना

जैसे एक बड़े मकान में छोटी छोटी कई कोठरियाँ होती हैं वैसे ही एक वायु मन्दिर में भी बहुत सी कोठरियाँ होती हैं; इन कोठरियों का नाम वायु कोष्ठ है (चित्र २०१)

वायु मन्दिर का आकार छोटे शहतूत से बहुत कुछ मिलता

है। यदि आप शहतूत को उसके ऊपर के दानों तथा डंठल समेत खोखला कल्पित करें तो आप को वायु मन्दिर का स्वरूप भलीभाँति समझ में आजायगा :—

शहतूत की खोखली डंठल = सूक्ष्म वायु प्रणाली
खोखला शहतूत = वायु मन्दिर
शहतूत के खोखले दाने = वायु कोष्ठ

इतनी बात याद रखनी चाहिये कि एक सूक्ष्म वायु प्रणाली के द्वारा वायु बहुधा एक से अधिक मन्दिरों में जाया करती है।

अनुमान है कि दोनों फुप्फुसों में वायु मन्दिरों की संख्या १६ से १८ करोड़ के लगभग होती है। यदि इन कोठरियों को खोल कर उनकी दीवारें पृथिवी पर बिछा दी जा सकें (जो असंभव है) तो इनका फैलाव (क्षेत्रफल) १३० से १५० बर्ग गज़ होगा ; यह समझना चाहिये कि ३६ फुप्फुसों के कोष्ठों की दीवारों का क्षेत्रफल १ एकड़ होता है।

वायु कोष्ठ

वायु कोष्ठ अर्धगोलाकार होते हैं। कोष्ठ की दीवार पतली और चपटी सेलों से बनती है ; सेलों के बाहर की तरफ़ पीले स्थितिस्थापक सौत्रिक तंतु की एक पतली तह रहती है और इस तह में रक्तकेशिका का जाल फैला रहता है। केशिका के रक्त और कोष्ठों की वायु के बीच में केवल केशिका और वायु कोष्ठ की पतली दीवारें होती हैं।

श्वास कर्म

वायु का फुप्फुसों के भीतर जाना और फिर बाहर निकलना

चित्र २०४ की व्याख्या

यह काट वक्ष के आठवें कशेरुका में से काटा गया है।

देखो चित्र के बाहर अपने दाहिने हाथ की ओरः—५', ७', १०', ११', ४', १२', ३', १३', २' = परिफुप्फुसीया कला ; म = बाएँ फुप्फुस का मध्य पृष्ठ ; न = वक्षउदर मध्यस्थ पेशी की बाईं नाड़ी; ४ प, ५ प, ६ प, ७ प, ८ प = पर्शुकाएँ; अ = अंसास्थि, ल = महालसीका वाहिनी; सु = सुषुम्ना; आ = सुषुम्नावरण ।

देखो चित्र के बाहर अपने बाएँ हाथ की ओर :—७, ५, ११, ४, १२, ३, २, ११ = दाहिनी परिफुप्फुसीया कला ; ४ प, ५ प, ६ प, ७ प, ८ प = पर्शुकाएँ; ह = हृदय; अ = अन्न प्रणाली सं = कशेरु पर्शु का संधि; श = शिरा ।

देखो चित्र के भीतर : —द, ब = दाहिनी ओर की परिफुप्फुसीया कला बाईं ओर की कला से मिली हुई है। द ग = दाहिना ग्राहक कोष्ठ; द च = दाहिना क्षेपक कोष्ठ; उ म श = ऊर्ध्व महा शिरा; ब च = बायां क्षेपक कोष्ठ; प = क्षेपक कोष्ठों के बीच का परदा; ब ग्र = बायां ग्राहक कोष्ठ; १, २ = दाहिनी फुप्फुसीया शिराएँ; ३, ४ = बाईं फुप्फुसीया शिराएँ; ध = महाधमनी ।

छोटा चित्रः—वक्ष की भीतरी दीवार की परिफुप्फुसीया कला फुप्फुस से चिपटी हुई कला से किस प्रकार मिल जाती है यह इस चित्र में साफ़ दिखाया गया है।

श्वास कर्म कहलाता है। श्वास कर्म में दो बातें होती हैं—

१. एक बार वायु नासिका में से होकर फुफ्फुसों के भीतर प्रवेश करती है जिसके कारण छाती फैल कर पहिले से बड़ी

चित्र २०५
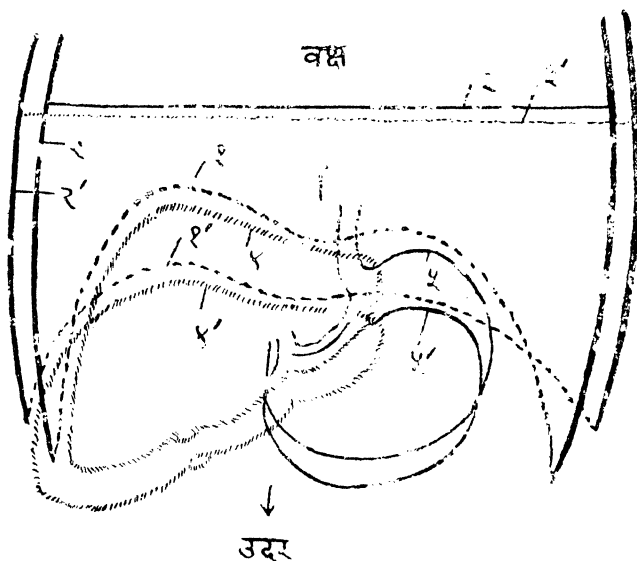
१, =१ वक्षउदरमध्यस्थ पेशी । २, २′ = वक्ष की दीवार । ३, ३ = वक्ष की चौड़ाई । ४, ४′ = यकृत । ५, ५′ = आमाशय ।

ऊच्छ्वास समय वक्षउदरमध्यस्थ पेशी संकोच कर के १ स्थान से उदर की ओर १′ स्थान पर आ जाती है जिसके कारण यकृत्, ४ स्थान से ४′ स्थान पर आ जाता है और आमाशय ५ से ५′ पर आ जाता है। वक्ष की दीवार २ से २′ स्थान पर चली जाती है जिसके कारण वक्ष की चौड़ाई ३ से ३′ हो जाती है।

हो जाती है। यह उच्छ्वास या अंत: श्वसन है।

२. फिर वायु नासिका से बाहर निकलती है; छाती पूर्व दशा को प्राप्त होती है फुप्फुस भी छोटे हो जाते हैं। यह क्रिया **प्रश्वास** या **बहिःश्वसन** कहलाती है।

एक उच्छ्वास और एक प्रश्वास से एक श्वास कर्म पूरा होता है।

जवान मनुष्य एक मिनट में १६-१७ श्वास लिया करता है।

उच्छ्वास :—जब वायु भीतर जाती है अर्थात् जब हम श्वास भीतर खींचते हैं तो वक्ष की समाई अधिक हो जाती है। वक्षउदरमध्यस्थ पेशी संकोच करती है और उदर की ओर दब जाती है; पेशी के दबाव से उदरस्थ अंग जैसे आमाशय, यकृत्, अंत्र नीचे को सरकते हैं जिसके कारण उदर की अगली दीवार उभर जाती है। पसलियाँ पर्शुकांतरिका तथा अन्य कई पेशियों के संकोच से ऊपर को उठती हैं पसलियों के साथ साथ उरोस्थि भी ऊपर को सामने की ओर उठती है। इन सब गतियों का परिणाम यह होता है कि वक्ष की समाई पहिले से अधिक हो जाती है। ज्यों ज्यों वक्ष की समाई बढ़ती है वायु फुप्फुसों में घुसती है, वायु मन्दिर पहले की अपेक्षा बड़े हो जाते हैं और सम्पूर्ण फुप्फुस का परिमाण पहले की अपेक्षा अधिक हो जाता है।

प्रश्वास:—अब वक्ष की समाई घटने लगती है और वह शीघ्र पूर्व दशा को प्राप्त होता है। पेशियाँ संकोच करना बन्द कर देती हैं। वायु मन्दिर छोटे हो जाते हैं उनमें से कुछ वायु निकल जाती है। सम्पूर्ण फुप्फुस का परिमाण घट जाता है।

यह न समझना चाहिए कि प्रश्वास कर्म में फुप्फुसों में वायु बिलकुल नहीं रहती। वास्तव में फुप्फुस उस समय भी वायु से भरे रहते हैं।

हमारे फुप्फुस हमेशा उतने नहीं फैलते जितने कि वे फैल सकते हैं; यदि हम श्वास ज़ोर से लें तो अधिक वायु प्रवेश करेगी; इसी तरह से ज़ोर से श्वास बाहर निकालने से अधिक वायु बाहर निकलती है। गहरा श्वास लेना अच्छा है।

श्वास की संख्या (प्रति मिनट)

साधारणतः स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में १६ से २० तक श्वास (साँस) लेता है। बचपन में यह संख्या अधिक होती है—नवजात बालक में ४४, पाँच वर्ष की आयु में २५, २६ के लगभग। शारीरिक परिश्रम से—जैसे व्यायाम, भागना, दौड़ना, खेल कूद—संख्या अधिक हो जाती है; खड़े रहने में लेटे रहने की अपेक्षा और दिन में रात की अपेक्षा श्वास जल्दी जल्दी आते हैं।

रोगों में श्वास की संख्या घट बढ़ जाती है। ज्वरों में श्वास जल्दी जल्दी आते हैं विशेष कर फुप्फुस के रोगों में जैसे फुप्फुस प्रदाह। मीठा तेलिया, क्लोरोफ़ौर्म, अफ़ीम जैसे ज़हरों से श्वास की संख्या घट जाती है।

स्वस्थ मनुष्य के हृदय के धड़कने (या नाड़ी फड़कने) की संख्या की श्वास की संख्या से यह निस्बत होती है:— ४, ५: १ अर्थात् जिस समय में मनुष्य एक श्वास लेता है उसी समय में हृदय चार या पाँच बार धड़कता है। फुप्फुस के रोगों में यह निस्बत नहीं रहती; ३ : १ या २ : १ हो सकती है।

श्वास जहाँ तक हो गहरा लेना चाहिये जिससे वायु फुप्फुसों के कोनों कोनों में भली प्रकार प्रवेश करे। जो लोग हलके श्वास लिया करते हैं उनके फुप्फुस पूरे तौर पर वायु से नहीं भरते।

यदि आप यह समझना चाहें कि फुप्फुस वायु से कैसे भर जाते हैं तो किसी मांस बेचनेवाले से बकरे के ताजे फुप्फुस लीजिये, फुप्फुस कहीं से कटे न हों और उनमें टेंटुवा भी लगा रहना चाहिये; अब आप इस टेंटुवे में बाइ-सिकिल के पहिये में हवा भरने वाले पंप की नली बाँध दीजिये और हवा भरना आरम्भ कीजिये। ज्यों ज्यों हवा भीतर जायगी फुप्फुस फूलने लगेंगे। थोड़ी हवा से कम फूलते हैं और उनके कोने और किनारे पिचके हुए दिखाई देते हैं। अधिक हवा पहुँचने पर वे ख़ूब बड़े हो जायँगे और उनके कोने और किनारे भी हवा से भरे मालूम होंगे। यदि आप पंप की नली टेंटुवे से अलग कर लें तो हवा बाहर निकल जायगी और फुप्फुस पिचक जायेंगे। बकरे के फुप्फुस और मनुष्य के फुप्फुस की बनावट एक जैसी होती है। परीक्षा करते समय इतनी बात याद रखनी चाहिये कि जब तक फुप्फुस छाती के भीतर रहते हैं उस वक्त वे छाती से बाहर निकले हुए बकरे के फुप्फुसों की भाँति कभी भी पूरे तौर से नहीं पिचकते।

वायु का संगठन (संयोगी तत्त्व)

उच्छ्वास और प्रश्वास वायु के संगठन में कुछ भेद होता है :—

अवयव*	उच्छ्वास वायु प्रति १०० भाग	प्रश्वास वायु प्रति १०० भाग
ओषजन	२०.८	१६.०
कबनद्विओषित	०·०४	४.०
नत्रजन	७८·८७	७८.८७
जलीय बाष्प	अंश मात्र	अधिक
हानिकारक पदार्थ	स्वच्छ वायु में कुछ नहीं	होते हैं

हानिकारक पदार्थों और जलीय वाष्प को छोड़कर बड़ा भेद दो गैसों के परिमाण में है। उच्छ्वास वायु में ओषजन अधिक और कर्बनद्विओषित गैस अंश मात्र होती है (१०००० भागों में कुल ४ भाग)। प्रश्वास वायु में इसके विपरीत होता है। और बातों का विचार न करते हुए जिस वायु में ओषजन अधिक होती है और क ओ$_2$ † कम वह वायु शुद्ध समझी जाती है। जिस वायु का सेवन किया जाय उसमें धूल मिट्टी, हानिकारक पदार्थ, रोगों के जन्तु न होने चाहियें।

ओषजन और कर्बनद्विओषित गैसों‡ के गुण

ओषजन जीवन के लिये एक परमावश्यक चीज़ है। उसके

* वायु में "आर्गन" नामक गैस भी होती है; वायु के १०० भागों में ०·९४ भाग के लगभग इस गैस के होते हैं।

† कर्बनद्विओषित का संकेत है।

‡ वायु रूप में रहने वाला पदार्थ "गैस" कहलाता है।

बिना कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। ओषजन बिना चीजें जल भी नहीं सकतीं। लकड़ी, कोयले, लेम्पादि के जलने के लिये ओषजन आवश्यक है।

कर्बनद्विओषित गैस प्राणियों के लिये ज़हरीला असर रखती है। यदि किसी कोठरी में केवल यही गैस भरी हो तो उसमें कोई भी प्राणी जीवित न रह सकेगा। यदि हम इस गैस से भरे हुए बरतन में जलती हुई बत्ती रख दें तो वह तुरंत बुझ जायगी। बनस्पतियों के लिये यह गैस ज़हरीली नहीं है। चूने का स्वच्छ पानी इस गैस से मिल कर दूधिया हो जाता है; यदि आप एक गिलास में चूने का निथरा पानी लें और फिर उस पानी में नली द्वारा फूँकें तो वह पानी शीघ्र दूधिया हो जायगा।

फुप्फुसों द्वारा रक्त शुद्धि

हमारे शरीर में सेलों के टूटने फूटने और भाँति भाँति की रासायनिक क्रियाओं के होने से कर्बनद्विओषित नामक गैस बनती रहती है। इस गैस का स्वभाव ज़हरीला है। जिस रक्त में यह अधिक परिमाण में होती है उसका रंग स्याही मायल होता है यह स्याही मायल रक्त शरीर के सब भागों से इकट्ठा होकर हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में दो महाशिराओं द्वारा पहुँचता है। हृदय से फुप्फुसीया धमनी द्वारा यह रक्त दोनों फुप्फुसों में जाता है और उन केशिकाओं में पहुँचता है जो वायु कोष्ठों की दीवारों में रहती हैं। यहाँ इस रक्त में से बहुत सी कर्बन द्विओषित गैस बाहर निकल जाती है और उसकी जगह ओषजन आ जाती है।

गैसों के कुछ स्वाभाविक गुण

रक्त शुद्धि समझाने से पहले हम आपको गैसों के कुछ स्वाभाविक गुणों से परिचित करना चाहते हैं:—

१. 'क' और 'ख' दो कोठरियाँ हैं। 'क' में ओषजन नामक गैस है और 'ख' में क ओ$_2$ गैस है। दोनों कोठरियों के बीच में एक ऐसा परदा लगा है जिसमें से गैसें गुज़र सकती हैं।

यदि हम कुछ समय पश्चात् इन दोनों कोठरियों की गैसों की परीक्षा करें तो मालूम होगा कि न तो 'क' में केवल ओषजन ही है और न 'ख' में केवल क ओ$_2$ प्रत्युत हर एक कोठरी में दोनों गैसें हैं। कुछ ओषजन 'क' से 'ख' में चली गई और कुछ क ओ$_2$ 'ख' से 'क' में चली आई। हर एक कोठरी में दोनों गैसों का मिश्रण है।

गैसों का यह एक स्वाभाविक गुण है कि वे इधर उधर फैलना चाहती हैं यदि उनको ऐसा करने में रुकावट न मिले। ओषजन को 'क' से 'ख' में जाने के लिए कोई रुकावट न मिली इस कारण वह 'ख' में चली गई। ऐसे ही क ओ$_2$ 'ख' से 'क' में चली आई।

२. 'क' में क ओ$_2$ वा ओषजन का मिश्रण है; ११ भाग

क ओ$_2$ के हैं और ५ भाग ओषजन के। 'ख' में भी इन्हीं गैसों का मिश्रण है परन्तु गैसों का परिमाण भिन्न है; यहाँ ९ भाग क ओ$_2$ के हैं और ७ भाग ओषजन के। कुछ समय पश्चात् इन कोठरियों में यह मिश्रण इस हिसाब से न रहेगा। जो गैस एक कोठरी में अधिक परिमाण में है उसका कुछ भाग उस कोठरी में चला जायगा जहाँ उस का परिमाण कम है। परिणाम यह होगा कि कुछ समय पीछे दोनों गैसें दोनों कोठरियों में बराबर बराबर परिमाण में मिलेंगी।

गैसों का यह दूसरा स्वाभाविक गुण है कि जिस स्थान में वे अधिक परिमाण में हों वहाँ से वे उस स्थान में चली जाती हैं जहाँ उनका परिमाण कम है।

इन दोनों गुणों को याद रखते हुए देखिये कि फुप्फुसों में क्या होता है।

रक्तशुद्धि (चित्र १९३)

हम पीछे बतला चुके हैं कि केशिका के रक्त और वायु कोष्ठों की वायु के बीच में केवल केशिका और वायु कोष्ठों की पतली दीवारें हैं। आप यह समझिये कि फुप्फुस में दो कोठरियाँ हैं एक में रक्त है (=केशिकाएँ), दूसरी में वायु भरी है (=वायुकोष्ठ)। इन दोनों के बीच में एक परदा लगा है (=केशिका तथा वायु-कोष्ठों की दीवारें)। यह परदा ऐसा है कि उसमें से गैसें आ जा सकती हैं। केशिका के रक्त में क ओ$_2$ वा ओषजन दो गैसें हैं; वायुकोष्ठ की वायु में भी ये दोनों गैसें हैं केवल भेद इतना है कि ओषजन वायु कोष्ठों में अधिक होती है और क ओ$_2$ रक्त में अधिक होती है।

गैसों के उपर्युक्त गुणों के अनुसार ओषजन वायु कोष्ठ में से रक्त में प्रवेश करती है और क ओ $_2$ रक्त से निकल कर वायु कोष्ठ में आ जाती है। इस प्रकार फुप्फुस में गैसों की अदला बदली हो जाती है।

गैसों की अदला बदली केवल उनके ऊपर बतलाये हुए गुणों पर ही निर्भर नहीं है। कोष्ठों की सेलों में भी यह स्वाभाविक शक्ति है कि वे क ओ $_2$ को रक्त से लेकर वायु में मिला दें और वायु से ओषजन ग्रहण करके उसको रक्त में पहुँचा दें।

इन दोनों विधियों से रक्त में क ओ $_2$ बहुत कम हो जाती है और उसमें ओषजन अधिक आ जाती है।

वायुकोष्ठों की वायु में नत्रजन गैस भी होती है; इस गैस का अंश मात्र ही रक्त में पहुँचता है क्योंकि शरीर को इस वस्तु की गैस के रूप में आवश्यकता नहीं और वायुकोष्ठों की सेलें इसको ग्रहण नहीं करतीं।

रक्ताणुओं में एक रंग रहता है जिसका नाम **कणरञ्जक** है। यह एक प्रकार की प्रोटीन है; इसमें लोहा भी होता है। यह रंग ओषजन से रासायनिक प्रीति रखता है। और ओषजन से मिल कर वह **ओषितकणरञ्जक** बन जाता है। जिस रक्त में ओषितकणरञ्जक रहता है और क ओ $_2$ कम होती है उसका रंग लाल होता है, जिसमें केवल कणरञ्जक होता है और क ओ $_2$ अधिक होती है उसका रङ्ग स्याही मायल होता है।

जितनी ओषजन फुप्फुस में ~~रक्त~~ ग्रहण करता है, उसका

अधिक भाग कणरञ्जक से मिल जाता है; शेष भाग रक्त वारि में घुल जाता है।

संक्षेप:—फुप्फुसों में हृदय के दाहिने क्षेपक कोष्ठ से स्याही मायल रक्त आता है; इसमें ओषजन कम और क ओ $_2$ अधिक होती है। फुप्फुसों से हृदय के बाएँ ग्राहक कोष्ठ में जो रक्त जाता है उसका रंग लाल होता है; इसमें ओषजन अधिक होती है और क ओ $_2$ कम।

फुप्फुसों में केवल इन गैसों ही की अदला बदली नहीं होती प्रत्युत कुछ जल भी वाष्प रूप में वायु के द्वारा शरीर से बाहर निकलता है। प्रश्वास वायु में उच्छ्वास वायु की अपेक्षा अधिक जलीय वाष्प होती है। वाष्प के अतिरिक्त कुछ उड़नशील विषैले पदार्थ भी वायु द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

———

अध्याय १२

मूत्रवाहक संस्थान

इस संस्थान के ये अंग हैं:—

१. वृक्क या गुर्दे	(दो)
२. मूत्र प्रणाली	(दो)
३. मूत्राशय	(एक)
४. मूत्रमार्ग	(एक)

वृक्क या गुर्दे

जिस अंग का काम मूत्र बनाने का है उसका नाम वृक्क या गुर्दा है। हमारे शरीर में दो वृक्क हैं एक दाहिना दूसरा बायाँ।

ये इन्द्रियाँ उदर में उसकी पिछली दीवार से लगी हुई रीढ़ के दाहिनी और बाईं ओर रहती हैं (चित्र २०६) उनके सामने अंत्र की गेंडलियाँ पड़ी रहती हैं। हर एक गुर्दे के पीछे १२ वीं पसली रहती है (देखो चित्र ६४)। वृक्क का आकार (परिमाण नहीं) लोबिये के बीज जैसा होता है; उसकी लम्बाई ४ इञ्च, और चौड़ाई २॥ इञ्च और मोटाई १ इञ्च होती है। भार २ छटाँक से कुछ कम होता है। उसका रंग बैंगनी होता है।

वृक्क के दो पृष्ठ होते हैं एक सामने का दूसरा पीछे का; दो किनारे होते हैं एक रीढ़ के पास रहता है दूसरा उससे परे रहता है; दो सिरे होते हैं। दोनों पृष्ठ उभरे हुए (अर्थात

उन्नतोदर) होते हैं। रीढ़ की ओर का किनारा लोबिये के काले तिल वाले किनारे की भाँति बीच में से दबा हुआ (नतोदर) होता है; दूसरा किनारा उन्नतोदर (उभरा हुआ) होता है और रीढ़ की ओर वाले किनारे से अधिक लम्बा होता है। ऊपर का सिरा नीचे के सिरे से अधिक मोटा और चौड़ा होता है और उसके ऊपर एक छोटा सा **उप वृक्क** नामक अंग रक्खा रहता है (चित्र २०६)।

जिस स्थान पर रीढ़ की ओर के किनारे में गढ़ा होता है वहीं से वृक्क की धमनी भीतर घुसती है और शिरा बाहर आती है; यहीं मूत्र प्रणाली का फूला हुआ प्रारंभिक अंश उससे जुड़ा रहता है (चित्र २०६, २०७)।

वृक्क के ऊपर सौत्रिक तंतु से निर्मित एक झिल्ली चढ़ी रहती है; इसको **वृक्क कोष** कहते हैं (चित्र २०८ क)। वृक्क के चारों ओर विशेषकर उसके पीछे वसा रहती है।

यदि हम वृक्क को चाकू से लम्बाई के रुख़ एक किनारे से दूसरे किनारे तक काटें तो कटा हुआ भाग सब का सब एक जैसा दिखाई न देगा । उसका प्रान्तस्थ (पृष्ठों के पास का) भाग मध्यस्थ (बीच के) भाग की अपेक्षा हलके रंग का होता है। मध्यस्थ भाग कई मीनार जैसे भागों में विभक्त है; इन मीनारों की शिखरें मूत्र प्रणाली की ओर रहती हैं और उनकी तलियाँ पृष्ठों की ओर (चित्र २०७, २०८, २०९)। इन मीनारों के शिखरों में अनेक छोटे छोटे छिद्र होते हैं, ये छिद्र वृक्क की बड़ी बड़ी नलियों के मुख हैं।

वृक्क
चित्र २०८ मूत्रवाहक संस्थान
धमनी
मूत्र प्रनाली
मीनार
क
नाभि
मांस
वसा
मूत्राशय
त्वचा
संधि
शुक्र प्रनाली
बाल
उपस्थ
अंड
अंड कोष
त्वचा
मूत्रबहिर्द्वार

क = वृक्क कोष
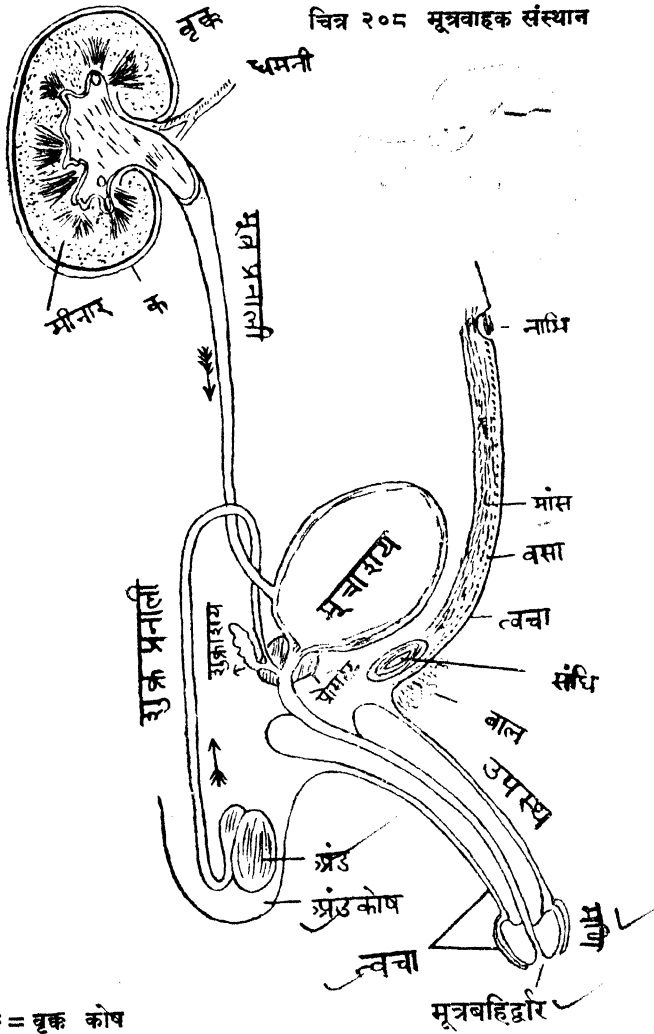
वृक्क की सूक्ष्म रचना (चित्र २०९,२१०)

वृक्क वास्तव में अनेक पतली पतली नलियों का समूह है। ये नलियाँ लम्बी तो बहुत होती हैं परन्तु चौड़ी बहुत कम। इन नलियों के अतिरिक्त उसमें धमनियाँ, शिराएँ, केशिका, लसीकावाहिनियाँ और वात सूत्र होते हैं। ये सब चीज़ें कुछ सौत्रिक तंतु द्वारा इकट्ठी रहती हैं। वृक्क के सब से बाहर के भाग में (पृष्ठ के नीचे) अनैच्छिक मांस की एक पतली तह होती है।

नलियों की बनावट (चित्र २०९, २१०)

नली का प्रारम्भिक भाग मोटा और गोलाकार होता है और वृक्क के प्रान्तस्थ (बाहरी) भाग में रहता है। यह फूला हुआ सिरा बीच में से दबा रहता है और इस गढ़े में रक्त-केशिका का झुंड रहता है (चित्र २१० में क) केशिका का झुंड नली की दीवार के बाहर है। यदि आप इस फूले हुए भाग को एक छिद्र वाली पोली रबड़ की गेंद के समान मान लें, तो आपको यह समझने में कि केशिका का झुंड फूले हुए भाग में होते हुए कैसे नली की दीवार के बाहर है, कोई कठिनता न होगी। छिद्र नीचे करके आप गेंद को ऊपर से अँगुली से दबाइये ; गेंद में एक गढ़ा पड़ जायगा और अँगुली का सिरा रबड़ से ढक जायगा। यद्यपि आप की अँगुली गेंद की दीवार से ढकी हुई है तथापि वह वास्तव में गेंद के बाहर है। इसी प्रकार केशिका का यह झुण्ड नली की दीवार से ढके रहने पर भी उसके बाहर ही है ; मालूम ऐसा होता है कि उसके भीतर है।

चित्र २०६
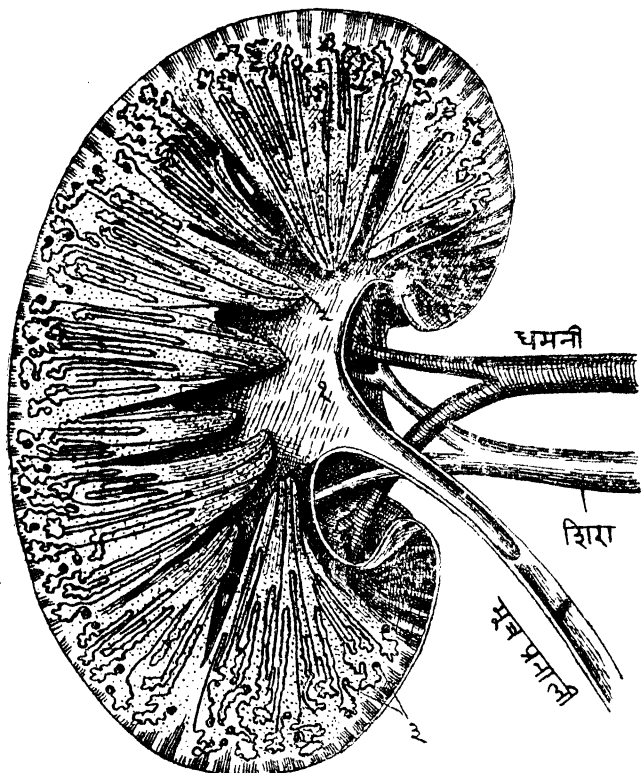
१ = मूत्र प्रणाली का चौड़ा भाग । २ = मीनारों के छिद्र जिनमें से मूत्र निकल कर मूत्र प्रणाली में जाता है । ३ = नलियों के फूले हुए सिरे ।

नली का लम्बा भाग:—नली फूले हुए भाग से आरम्भ होकर कई मोड़ तोड़ खाने के पश्चात् एक दूसरी नली से जा

चित्र २१० वृक्क की एक नली
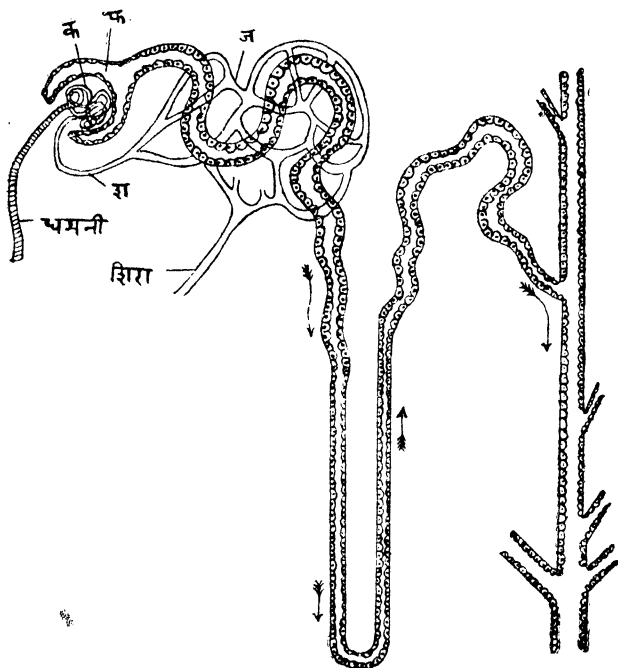
मिलती है जो इसी प्रकार मोड़ खाती हुई वृक्क के किसी और भाग से आई है। इस तरह कई नलियों के मिलने से एक बड़ी नली बन जाती है (चित्र २१०)। ये बड़ी नलियाँ अन्य बड़ी नलियों से जा मिलती हैं। जिस प्रकार छोटे छोटे नालों वा नदियों के आपस में मिलने से एक बड़ी नदी बन जाती है वैसे ही छोटी छोटी नलियों से बड़ी बड़ी नलियाँ

बन जाती हैं। वृक्क की मीनारें इन्हीं बड़ी नलियों के समूह हैं; पतली नलियों के प्रारंभिक फूले हुए सिरे और मुड़े हुए भाग मीनारों के बाहर प्रान्तस्थ भाग में रहते हैं। मीनारों के शिखरों में जो छिद्र होते हैं वे बड़ी बड़ी नलियों के मुख हैं; मूत्र इन्हीं छिद्रों से निकल कर मूत्र प्रणाली में पहुँचता है।

नलियों के फूले हुए सिरों की दीवारें पतली पतली चपटी सेलों से बनती हैं; इन सेलों के बाहर एक बहुत पतली झिल्ली रहती है। नली के शेष भाग की दीवार में कई प्रकार की सेलें होती हैं और ये सेलें भी एक पतली झिल्ली के सहारे रक्खी रहती हैं। जहाँ जहाँ नली मोड़ खाती है वहाँ सेलें मोटी होती हैं। बड़ी बड़ी नलियों की बनावट ऐसी ही है।

वृक्क द्वारा रक्त की शुद्धि

वृहत् धमनी की दो शाखाओं द्वारा रक्त दोनों गुर्दों में पहुँचता है। भीतर पहुँचकर इस धमनी की अनेक शाखाएँ हो जाती हैं, एक शाखा प्रत्येक नली के फूले हुए भाग में जाती है; इसी के द्वारा रक्त केशिका के झुंड में पहुँचता है। केशिका की दीवारों में से रक्त का कुछ जलीय अंश चू जाता है और यह तरल नली की दीवार में से होकर उसके भीतर पहुँच जाता है। नली का फूला हुआ सिरा फ़िल्टर (छन्ने) का सा काम देता है। जिस प्रकार काग़ज़ या कपड़े के छन्ने में से जल इत्यादि द्रव छन आते हैं उसी प्रकार सेलों से निर्मित इन छन्नों में से रक्त का कुछ द्रव भाग छन जाता है; परन्तु एक बड़ा भेद यह है कि वृक्क का छन्ना जीवित है। जो काम यह कर सकता है वह काग़ज़ का छन्ना नहीं कर सकता।

आपको याद होगा कि रक्त में प्रोटीनें वा शकर पदार्थ होते हैं; आरोग्यता में वृक्क के छन्नों में से ये पदार्थ (प्रोटीन, शकर) छनकर नली के भीतर नहीं पहुँच सकते ; परन्तु काग़ज़ या कपड़े में से जल में घुले हुए पदार्थ सब छन जाते हैं। प्रोटीनों और शकर के फूले भागों की दीवारों में से न गुज़र सकने के कारण उस जल में जो छनकर नली के भीतर पहुँचता है ये पदार्थ नहीं होते परन्तु उसमें रक्त के कुछ लवण अवश्य आ जाते हैं।

केशिका के झुण्ड से रक्त एक नली द्वारा (चित्र २१०.श) बाहर निकलता है। इस नली द्वारा अब रक्त उन केशिकाओं में पहुँचता है जो जाल रूप में नली के शेष भाग के चारों ओर फैली हुई हैं। ये केशिकाएँ नली की सेलों से मिली रहती हैं। (देखो चित्र २१० में ज)। नली की मोटी मोटी सेलों में यह स्वाभाविक शक्ति है कि वे उस लसीका में से जो उनके पास चू जाता है यूरिया, यूरिक अम्लादि पदार्थ लेलें और फिर उनको नली के भीतर पहुँचा दें । नली के भीतर पहुँच कर ये पदार्थ उस तरल में जो ऊपर से (या पीछे से) फूले भाग से आता है घुल जाते हैं। यह तरल जिसमें निकम्मे और हानिकारक पदार्थ घुले रहते हैं पतली पतली नलियों में बहता हुआ बड़ी बड़ी नलियों में पहुँचता है जो मीनारों में रहती हैं। मीनारों के शिखरों के छिद्रों में से निकल कर यह तरल मूत्र प्रणाली के प्रारंभिक चौड़े भाग में पहुँचता है। इस तरल का नाम मूत्र है (चित्र २०७, २०८) । वृक्कों में धमनियों द्वारा जो रक्त आता है उसमें यूरिया, यूरिक अम्लादि पदार्थ अधिक होते हैं ; वृक्कों से शिराओं द्वारा जो रक्त लौटकर जाता है उसमें ये

मूत्रमार्ग (चित्र २०८, २११, २१२, २१३)

स्त्री वा पुरुष दोनों में मूत्राशय के सब से नीचे के भाग से एक और नली का आरम्भ होता है जिसको **मूत्रमार्ग** कहते हैं।

पुरुष में (प्रौढ़ावस्था में) इस नली की लम्बाई कोई ७ या ८ इंच के लगभग होती है। प्रारम्भिक १ या १½ इञ्च भाग के चारों ओर **प्रोस्टेट** नामक एक ग्रन्थि रहती है या यों कहो कि मूत्रमार्ग का प्रारम्भिक भाग इस ग्रन्थि में होकर जाता है (चित्र २१२, २१३)। प्रोस्टेट से आगे यह नली शिश्न के नीचे के भाग में रहती है। शिश्न की मणि (या शिश्न-मुंड) में जो छिद्र होता है वह इसी नली का छिद्र है। इस छिद्र का नाम **मूत्रबहिर्द्वार** है। इस नली में से शुक्र भी निकलता है। सूज़ाक में इस नली की श्लैष्मिक झिल्ली का प्रदाह (वरम) हो जाता है।

चित्र २१२ की व्याख्या

१ = मूत्राशय ;	७ = शुक्राशय;
२ = उदर कला ;	८ = शिश्न मूल ग्रन्थि ;
३ = कारटिलेज की चक्री ;	९ = प्रोस्टेट ग्रन्थि ;
४ = सरलांत्र;	१० = मूत्रदंडिका ;
५ = शुक्रप्रनाली	११ = मूत्रमार्ग
६ = मूत्र प्रनाली ;	१२ = शिश्न दंडिका ;

स्त्रियों में मूत्रमार्ग की लम्बाई केवल १½ इंच होती है। स्त्रियों में प्रोस्टेट अंग नहीं होता और यह नली योनि की अगली दीवार से जुड़ी रहती है। इसका छिद्र योनि के छिद्र से भिन्न है और उससे ½ इंच ऊपर होता है। (चित्र २११)।

चित्र २१३
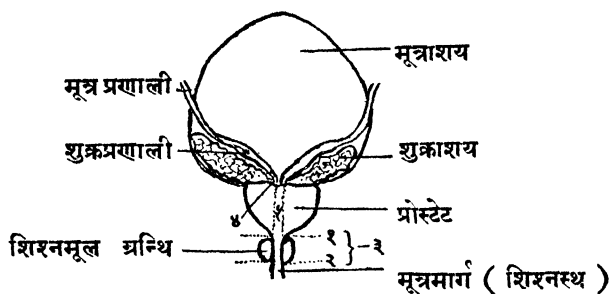
४ = मूत्रमार्ग का प्रोस्टेट में रहनेवाला भाग

मूत्रबहिर्द्वार से मूत्र हर समय क्यों नहीं टपका करता ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जहाँ मूत्रमार्ग का आरम्भ होता है वहाँ मूत्राशय की दीवार का मांस संकोच करके छिद्र को हमेशा बन्द रखता है। जब हम मूत्र त्यागना चाहते हैं तब मांस ढीला पड़ जाता है और रास्ता खुल जाता है; मूत्राशय से निकल कर मूत्र मूत्रमार्ग में पहुँचता है और बाहर निकलता है। कभी कभी रोगों के कारण मांस भली प्रकार संकोच नहीं कर सकता; तब मूत्र बूँद बूँद टपका करता है।

मूत्र

निरोगी मनुष्य चौबीस घन्टे में १¼—१½ सेर के लगभग मूत्र

पदार्थ कम होते हैं।

मूत्र प्रणाली (चित्र २०८, २०९, २१०)

मूत्र प्रणालियाँ दो हैं—एक दाहिनी दूसरा बाईं, ये नलियाँ स्वाधीन मांस और सौत्रिक तन्तु से निर्मित हैं [illegible] ६। सुस्थता में पृष्ठों पर श्लैष्मिक झिल्ली लगी [illegible] प्रतिक्रिया अम्ल होती १० [illegible] कोई २३ छटाँक जल होता है; शेष १ छटाँक भर (या कुछ कम) वे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो उस जल में घुले रहते हैं। इस १ छटाँक में से दो तीन तोले के क़रीब यूरिया* होता है ; शेष भाग में यूरिक अम्ल वा अन्य कई प्रकार के लवण होते हैं ।

सुस्थता में मूत्र में न प्रोटीन होती है और न शकर। मधुमेह रोग में मूत्र में शकर निकलने लगती है। उसका गुरुत्व अधिक हो जाता है और मात्रा भी बढ़ जाती है । प्रोटीन || का मूत्र में निकलना वृक्क प्रदाह या अन्य किसी रोग का साक्षी है।

---

* यूरिया का मूत्र में कम या अधिक होना भोजन पर भी निर्भर है। जो लोग अधिक प्रोटीन खाते हैं उनके मूत्र में कम प्रोटीन खानेवालों की अपेक्षा अधिक यूरिया रहता है। माँस भक्षण करनेवाली जातियों (माँस में रोटी, चाँवल की अपेक्षा अधिक प्रोटीन होती है) के मूत्र में उन जातियों के मूत्र की अपेक्षा जो माँस नहीं खातीं अधिक यूरिया होता है। यूरोप निवासियों के मूत्र में हिन्दुओं के मूत्र से अधिक यूरिया होता है। यूरिया वा और लवणों के कम होने से गुरुत्व भी कम होता है।

|| या अलब्युमेन (Albumen)

मूत्र परीक्षा

मूत्र परीक्षा में ये ये बातें देखी जाती हैं:—

१—रंग ।

२—गंध ।

३—गाढ़ा है या पतला ; उसमें कोई चीज़ बैठी हुई तो नहीं है । स्वच्छ है या अस्वच्छ ।

४—दिन-रात के मूत्र की मात्रा ।

५—प्रतिक्रिया ।

६—जो लवण उसमें सामान्यतः घुले रहते हैं उनमें से किसी की मात्रा अधिक या न्यून तो नहीं है ।

७—मूत्र में प्रोटीन, शकर, रक्त, पित्त, राद तो नहीं है ।

८—उसमें कोई विशेष रासायनिक पदार्थ तो नहीं हैं ।

९—उसमें कोई रोगाणु (बकटीरिया) या कीट तो नहीं हैं ।

———

अध्याय १३

त्वचा की रचना (चित्र २१४, २१५, २१६)

त्वचा के दो भाग होते हैं:—

१—ऊपर का पतला भाग या **उपचर्म** ।

२—उपचर्म के नीचे का मोटा भाग या **चर्म** ।

उपचर्म

यह त्वचा का वह भाग है जो उबलते हुए द्रवों (वा कई औषधियों) के लगने से चर्म से अलग हो जाता है; इसके और चर्म के बीच में तरल के इकट्ठा होने से फफोला या छाला बन जाता है।

उपचर्म कई प्रकार की सेलों से निर्मित है। ये सेलें एक दूसरे के ऊपर कई तहों (स्तरों) में बिछी रहती हैं। ऊपर की सेलें नीचे की सेलों की अपेक्षा बहुत पतली और चपटी होती हैं। नीचे की तहों की सेलें मोटी और मुलायम होती हैं; ऊपर की सख़्त होती हैं। श्याम वा पीले वर्ण की जातियों की उपचर्म की नीचे वाली मोटी सेलों के भीतर एक रंग रहता है; गोरी जातियों में कोई रङ्ग नहीं होता।

प्रति दिन उपचर्म की ऊपर की सेलें घिस घिस कर गिरती रहती हैं और नीचे की सेलें उनकी जगह आ जाती हैं।

उपचर्म की मोटाई सब स्थानों में एक सी नहीं होती; हथे-

लियों, पाँव के तलुओं वा पीठ की उपचर्म और स्थानों की अपेक्षा अधिक मोटी होती है।

त्वचा के इस भाग में रक्तकेशिका नहीं होती; इसका पोषण उस लसीका से होता है जो नीचे चर्म में रहता है।

चर्म

त्वचा का यह भाग उपचर्म से अधिक मोटा और मज़बूत होता है; पैर के तलुओं, हथेलियों, कमर वा पीठ की चर्म शरीर में सब से मोटी होती है ; पलकों, अंडकोष वा शिश्न की चर्म बहुत पतली होती है।

चर्म में सेलों के अतिरिक्त सौत्रिक तन्तु, रक्त या लसीका-वाहिनियाँ वा वातसूत्र भी होते हैं। उसमें दो प्रकार की ग्रन्थियाँ और बालों की जड़ें रहती हैं। चर्म स्थितिस्थापक होती है।

चर्म के ऊपर के भाग में (उपचर्म के नीचे) नन्हे नन्हे उभार* या कंगूरे होते हैं ; ये उभार सौत्रिक तन्तु वा रक्त-केशिकाओं के झुण्ड हैं (चित्र २१६ में ६) हथेलियों वा तलुओं की त्वचा में ये उभार मोटे होते हैं और इनसे समांतर मुण्डेरें बन जाती हैं, अंगुलियों के शङ्ख और चक्र इन्हीं कंगूरों की मुण्डेरों वा रेखाओं से बनते हैं। आजकल काली स्याही से अंगुलियों के छाप जो लिये जाते हैं वे इन्ही कंगूरों की क़तारों के छाप होते हैं (कंगूरों के ऊपर की चर्म भी उभरी होती है)। यह बात सिद्ध हो गई है कि किसी एक मनुष्य की अंगुलियों के छाप दूसरे मनुष्यों की अंगुलियों के छापों से नहीं मिलते ; एक मनुष्य के हस्ताक्षर दूसरे मनुष्य के

* चर्म प्रवर्द्धन।

चित्र २१५ अंगूठों के छाप

हस्ताक्षरों से मिल सकते हैं; परन्तु अंगुलियों के छापों में कुछ न कुछ भेद बहुधा अवश्य रहता है। इन छापों से अपराधियों की पहचान करने में बड़ी सहायता मिलती है; कभी कभी घातकों का भी पता लग जाता है। चित्र २१५ में तीन विविध मनुष्यों के बाँए अंगूठों के छाप हैं; प्रत्येक छाप के नीचे छाप दो गुना बढ़ा कर दिखाया गया है। मुंडेरें और उन के बीच के अंतर साफ़ साफ़ दिखाई देती हैं।

त्वचा की ग्रन्थियाँ

त्वचा में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ रहती हैं:—

(१) वे जिनमें तेल जैसी चिकनी वस्तु बनती है।

(२) वे जो पसीना बनाती हैं।

दोनों प्रकार की ग्रन्थियाँ चर्म में रहती हैं।

तेल की ग्रन्थियाँ (२१४, २१६)

ये नन्ही नन्ही थैलियाँ हैं जिनकी दीवारों की सेलें एक चिकनाईदार वस्तु बनाती हैं। प्रत्येक थैली से एक छोटी सी नली निकलती है जिसमें से होकर यह वस्तु बालों की जड़ों में पहुँचती है, (चित्र २१४ में 'म' के ऊपर जो थैली है वह तेल की ग्रन्थि है) और बालों को चिकना और चमकदार बनाती है। त्वचा भी इसी वस्तु के कारण चिकनी सी रहती है। टटरी और चेहरे की त्वचा में और स्थानों की अपेक्षा अधिक ग्रन्थियाँ रहती हैं; ये ग्रन्थियाँ हथेलियों और पैर के तलुओं में नहीं पाई जातीं।

साबुन से स्नान करने से यह चिकनी वस्तु धुल जाती है और हमारे बाल और त्वचा रूखे से और पहले से कम चमकदार मालूम होने लगते हैं। चेहरे की (विशेष कर नाक

के पास) त्वचा कभी कभी अधिक चिकनी मालूम होने लगती है; इसका कारण इस वस्तु का अधिक बनना है।

पसीने या घर्म की ग्रन्थियाँ (चित्र २१४ में प; चित्र २१६)

ये चर्म के सब से नीचे के भाग में रहती हैं। हर एक ग्रन्थि वास्तव में एक नली है जिसका नीचे का सिरा बंद होता है। इस नली का ऊपर का भाग सीधा होता है; नीचे का भाग सर्प की भाँति गेंडली मारे रहता है। नली की दीवारें सेलों से बनती हैं जो एक पतली झिल्ली पर रक्खी रहती हैं; इस झिल्ली के बाहर सहारे के लिये कुछ सौत्रिक तंतु रहता है; मुड़े हुए भाग में सेलों और सौत्रिक तंतु की तह के बीच में कुछ स्वाधीन मांस भी होता है। ग्रन्थि के चारों ओर केशिका का जाल रहता है। ग्रन्थि की सेलें चुए हुए लसीका में से कुछ जल, यूरिया वा कई प्रकार के लवण ले लेती हैं। यह तरल जिसमें ये सब पदार्थ घुले रहते हैं **पसीना** या घर्म कहलाता है। उपचर्म में बहुत से छोटे छोटे छिद्र होते हैं; ये पसीने की नलियों के मुख हैं। पसीना नलियों में बहता हुआ इन छिद्रों द्वारा शरीर से बाहर निकलता है।

कक्षतल (बग़ल) और वंक्षण (जंघासा) की त्वचा में ये ग्रन्थियाँ बड़ी बड़ी होती हैं। हथेलियों और पैर के तलुओं में इनकी संख्या और स्थानों की अपेक्षा अधिक होती है। अनुमान है कि हथेली की एक वर्ग इञ्च त्वचा में कोई २८०० पसीने के छिद्र होते हैं, संपूर्ण शरीर में २४००००० (२४ लाख) के लगभग ग्रन्थियाँ होती हैं।

चित्र २१६ त्वचा की रचना (Warwick and Tunstall)
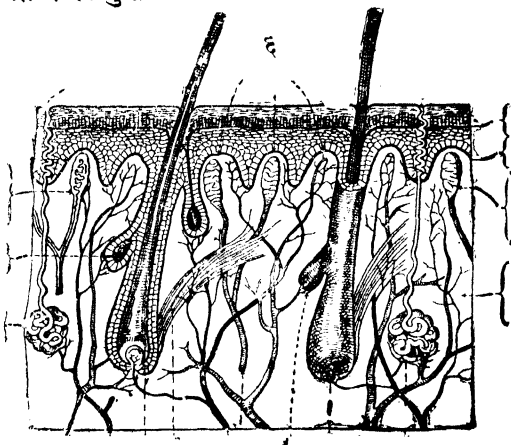
२ = लोमोत्थापिका (मांस) ३ = रक्तवाहिनी ४ = तैल की ग्रन्थि ५ = लोमकूप ६ = चर्म के उभार या मेंढ़ें ।

पसीना या घर्म या स्वेद

पसीने में क़रीब क़रीब वही पदार्थ होते हैं जो मूत्र में जैसे यूरिया वा कई प्रकार के लवण परन्तु ये चीज़ें बहुत थोड़ी थोड़ी होती हैं। इन पदार्थों के अतिरिक्त उसमें उपचर्म की गिरी हुई सेलें, ज़रा सी वसा और तनक सी प्रोटीन होती हैं।

पसीने की प्रतिक्रिया अम्ल* होती है और उसमें एक

* जब पसीना बहुत आता है तो प्रति क्रिया क्षारीय हो जाती है।

विशेष प्रकार की गन्ध आया करती है। उसका गुरुत्व १००५ होता है और स्वाद नमकीन। ग्रीष्म ऋतु में और व्यायाम करने से पसीना अधिक निकलता है; शीत ऋतु में और कम परिश्रम करने से पसीना कम आता है। जब मूत्र अधिक आता है (जैसे वर्षा और शीत ऋतुओं में) तब पसीना कम बनता है, और जब मूत्र कम आता है (जैसे ग्रीष्म ऋतु में) तब पसीना अधिक निकलता है।

सुस्थता में पसीने में दुर्गन्ध नहीं आती; उसमें कोई विशेष प्रकार का रंग भी नहीं होता। कई औषधियों के सेवन से पसीने की मात्रा अधिक या न्यून हो जाती है। अधिक जल पीने से भी अधिक पसीना आता है।

लोम या **बाल** (चित्र २१४ में ल; चित्र २१६)

बाल त्वचा से ही निकलते हैं। तीन स्थानों को छोड़कर थोड़े बहुत बाल शरीर के हर एक भाग में रहते हैं; हथेलियों, तलुओं और शिश्न के अगले भाग की त्वचा में बाल नहीं होते।

बालों की लम्बाई, मोटाई और रंग सब जातियों में एक जैसा नहीं होता, एक ही मनुष्य में किसी स्थान के बाल मोटे और लम्बे होते हैं; किसी स्थान के पतले और छोटे; पलकों की त्वचा के बाल बहुत ही नन्हे नन्हे होते हैं; सिर के बाल बहुत लम्बे होते हैं; पलकों के किनारों के बाल (**पक्ष्मन्, बरौनी**), विटप देश, मूँछ और डाढ़ी के बाल मोटे होते हैं।

बाल का कुछ भाग त्वचा से बाहर निकला रहता है और कुछ उसके भीतर रहता है। जो भाग भीतर रहता है उसको बाल की जड़ कहते हैं। जिस गढ़े में बाल की जड़

रहती है उसका नाम लोमकूप है; लोमकूप के नीचे के भाग की दीवारें सेलों की कई तहों से बनती हैं और इन सेलों के बाहर सौत्रिक तंतु की तह रहती है। इस कूप या थैली से एक ओर कुछ अनैच्छिक मांस लगा रहता है; (चित्र २१६ में २) चिकनाईदार वस्तु बनाने वाली ग्रन्थियों का कूप से सम्बन्ध रहता है (चित्र २१४ 'म' के ऊपर)। बाल की जड़ का नीचे का सिरा मोटा और श्वेत रंग का होता है।

बाल की रचना

बाल के दो भाग होते हैं:—

(१) मध्यस्थ भाग (बीच का भाग) जो गोलाकार सेलों से बनता है।

(२) बहिःस्थ भाग जो बीच के भाग के चारों ओर रहता है। इसमें लम्बी लम्बी सूत्राकार सेलें होती हैं। सेलों के भीतर एक रंग रहता है। श्वेत बालों में रङ्ग नहीं रहता।

बाल की जड़ त्वचा में कुछ तिर्छी रहती है, जिधर को जड़ का झुकाव होता है उधर लोमकूप की दीवार से स्वाधीन मांस की एक पतली पट्टी लगी रहती है (चित्र २१४ में म)। इस मांस के संकोच से जड़ सीधी हो जाती है और बाल जो पहले मुड़ा हुआ था अब खड़ा हो जाता है। शीत या भय के प्रभाव से बालों का खड़ा हो जाना इसी मांस के संकोच के कारण होता है।

अधिक रंज फ़िकर और निर्बलता से और वृद्धावस्था में बालों का रंग श्वेत या धूसर हो जाता है; कई कारणों से

जैसे ख़राब तेलों के लगाने से या चिकनाईदार वस्तु बनाने वाली ग्रन्थियों के रोगों से बाल जवानी में गिरने भी लगते हैं। जब तक बालों की जड़ें ख़राब नहीं हुई हैं तब तक औषधियों के प्रयोग से गिरे हुए बालों का फिर उग आना संभव होता है। अस्तुरे की रगड़ से (हजामत बनाने से) बाल जल्दी जल्दी बढ़ते हैं कारण यह कि रगड़ से त्वचा में रक्त अधिक आता है और बालों का पोषण अच्छा होता है; जो लोग प्रति दिन हजामत बनाते हैं उनकी डाढ़ी के बाल दूसरे ही दिन बढ़े हुए मालूम होने लगते हैं।

नख

हाथ और पैर की हर एक अँगुली के अन्तिम पोर्वे में एक एक नख या नाख़ून रहता है। नख अपने नीचे के चर्म से ख़ूब चिपटा रहता है और उसके पिछले और इधर उधर के किनारे त्वचा की घाई में घुसे रहते हैं। नख का अधिक भाग स्वच्छ होता है और उसमें से चर्म के रक्त का रंग चमका करता है; पिछला थोड़ा सा भाग अस्वच्छ और श्वेत होता है। जब किसी कारण शरीर में रक्त कम हो जाता है (रक्तहीनता में) तो नखों का रंग फीका पड़ जाता है; वे श्वेत से दिखाई देने लगते हैं; हृदय और फुफ्फुस के रोगों में उनका रंग नीला सा हो जाता है। नख में उपचर्म की तरह रक्त की नलियाँ नहीं होतीं; उसका पोषण चर्म के लसीका से ही होता है।

नख वास्तव में उपचर्म ही है जिसकी सेलें अधिक सख़्त हो गई हैं; उसके नीचे और स्थानों की तरह चर्म रहता है जिसमें बहुत से मोटे मोटे उभार या प्रवर्द्धन होते हैं।

त्वचा के काम

१—त्वचा से सब शरीर ढका हुआ है; उससे मांसादि कोमल चीज़ों की रक्षा होती है। त्वचा के नीचे रहनेवाली चीज़ों को उस वक्त तक कोई हानि नहीं पहुँच सकती जब तक कि उसको भी हानि न पहुँचे। वह रोगोत्पादक जंतुओं और विषों को शरीर के भीतर घुसने से रोकती है; जब त्वचा कहीं से कट जाती है तब जंतु और ज़हर शरीर में आसानी से प्रवेश कर सकते हैं।

२—त्वचा हमारी **स्पर्शेन्द्रिय** है; उसके द्वारा हमको शीत, उष्णता, पीड़ा और दबाव का ज्ञान होता है।

३—त्वचा से पसीने द्वारा हमारे शरीर से कुछ मलिन पदार्थ निकलते हैं; इसलिये वह एक रक्तशोधक अंग है।

४—त्वचा से ज़रा सी कर्बनद्विओषित गैस शरीर से बाहर निकलती है और थोड़ी सी ओषजन उसमें प्रवेश करती है; इस तरह वह ज़रा सा फुप्फुस जैसा भी काम करती है। मनुष्य में जितनी क ओ$_२$ गैस फुप्फुसों द्वारा शरीर से बाहर आती है उसका $\frac{१}{१५०}$ से $\frac{१}{२००}$ भाग तक त्वचा से भी निकलती रहती है। जिन जानवरों की त्वचा पतली होती है (जैसे मेंढक) उनमें मोटी त्वचा वाले जानवरों की अपेक्षा अधिक क ओ$_२$ त्वचा द्वारा बाहर निकलती है।

५—त्वचा शरीर के तापक्रम को स्थिर रखने में भी सहायता देती है। जब किसी कारण (जैसे ज्वरों में या अधिक व्यायाम करने से) शरीर में अधिक उष्णता उत्पन्न होती है तो त्वचा की रक्तवाहिनियाँ फैलकर पहले से अधिक चौड़ी हो जाती हैं और

उनमें अधिक रक्त बहता है; इस कारण त्वचा पहले की अपेक्षा अधिक गरम और लाल हो जाती है। त्वचा से इस उष्णता का कुछ भाग आस पास की चीज़ों में चला जाता है। पसीना भी ज़्यादा निकलता है; इस पसीने का जल रूप से वाष्प रूप में परिवर्तन होने के लिये भी उष्णता की आवश्यकता है, यह उष्णता त्वचा से ही मिलती है। इस तरह से कुछ आस पास की चीज़ों में जाकर और कुछ पसीने से वाष्प बनाने में काम आकर बहुत सी अनावश्यक उष्णता त्वचा द्वारा शरीर से बाहर निकल जाती है और तापक्रम बहुत ज़्यादा बढ़ने नहीं पाता।

शीत ऋतु में जब उष्णता को शरीर के भीतर रखने की आवश्यकता होती है त्वचा की रक्तवाहिनियाँ कुछ सिकुड़ी हुई रहती हैं और पसीना भी कम आता है; इस कारण शरीर से अधिक उष्णता बाहर नहीं जा सकती और उसका तापक्रम बहुत कम नहीं हो सकता। जाड़ों में त्वचा से अधिक उष्णता के निकलने को रोकने के लिये ही ऊन वा रुई के कपड़े पहनने की आवश्यकता होती है क्योंकि ये चीज़ें उष्णता की सुचालक नहीं हैं।

———

अध्याय १४

श्लैष्मिक झिल्ली या कला

जिस प्रकार शरीर का बाहरी पृष्ठ त्वचा से ढका हुआ है उसी प्रकार जितने पोले अंग हैं उनके भीतरी पृष्ठों पर एक विशेष प्रकार की त्वचा लगी हुई है; गाल और ओष्ठों के भीतरी पृष्ठों पर जो लाल लाल चीज़ चमकती है वह एक विशेष प्रकार की त्वचा है। अन्नमार्ग के भीतरी पृष्ठ पर मुख से लेकर मलद्वार पर्यन्त; श्वासमार्ग में नासिका से सूक्ष्म वायु-प्रणालियों तक; मूत्रप्रणाली, मूत्राशय, मूत्रमार्ग में; डिम्ब प्रणाली, गर्भाशय और योनि में यह विशेष प्रकार की त्वचा रहती है।

पोले अंगों के भीतरी पृष्ठों को ढाँकनेवाली त्वचा सदा कुछ भीगी रहा करती है; जिस तरल से यह भीगी रहती है उसमें एक लेसदार पदार्थ होता है जिसका नाम **श्लेष्म** है। यह पदार्थ उस त्वचा में नहीं होता जिसका वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है। इस श्लेष्म के कारण पोले अंगों के भीतरी पृष्ठों पर रहनेवाली त्वचा को **श्लैष्मिक झिल्ली** या कला कहते हैं।

श्लैष्मिक कला की रचना (चित्र २०२)

इस झिल्ली की रचना त्वचा जैसी होती है। जैसे त्वचा के दो भाग होते हैं एक ऊपर का जिसमें सेलों की कई तहें

होती है दूसरा नीचे का जो सौत्रिक तंतु से निर्मित है, वैसे ही इस झिल्ली के भी दो भाग होते हैं:—

१—ऊपर का भाग जो सेलों की एक या एक से अधिक तहों से बनता है। सेलें भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न प्रकार की होती हैं; कहीं पतली और चपटी होती हैं : कहीं लम्बी और स्तम्भाकार; कहीं पृष्ठ की सेलों से सूक्ष्म सूक्ष्म तार निकले रहते हैं जो सदा हिलते रहते हैं (चित्र २०२ में १)।

२—सेलों की तह या तहों के नीचे सौत्रिक तंतु की तह रहती है। सूत्र दोनों प्रकार के होते हैं—श्वेत और पीले। सूत्रों के बीच में रस बनानेवाले नन्हे नन्हे यंत्र होते हैं जिनको ग्रन्थियाँ कहते हैं। इस भाग में रक्त वा लसीका केशिका के जाल और बात सूत्र भी रहते हैं। कहीं कहीं सौत्रिक तंतु वा केशिका के झुण्डों से छोटे छोटे उभार भी बन जाते हैं; इन उभारों या कंगूरों के कारण श्लैष्मिक झिल्ली के पृष्ठ पर नन्हे नन्हे दाने दिखाई देने लगते हैं (जैसे जिह्वा के पृष्ठ पर)।

श्लैष्मिक झिल्ली का पृष्ठ श्लेष्ममय रस से तर रहता है यह श्लेष्म या तो पृष्ठ की सेलों में बनता है या सौत्रिक तंतु में रहनेवाली सूक्ष्म ग्रन्थियों में।

श्लेष्म एक श्वेत रंग का लेसदार पदार्थ होता है; रसायन विद्या के अनुसार वह एक भाँति की प्रोटीन है। कफ़ और आम इस पदार्थ के दूसरे नाम हैं। खाँसी में जो कफ़ निकलता है उसका अधिक अंश श्लेष्म ही होता है; यह श्वास मार्ग की श्लैष्मिक झिल्ली में बनता है। आमातिसार में जो आम निकलती है उसका भी अधिक अंश श्लेष्म ही होता है; यह आँतों

की झिल्ली में बनता है; जुकाम (प्रतिष्याय) में नाक से जो शिंघाणक (सिनक) निकलता है वह भी श्लेष्म ही है।

श्लैष्मिक झिल्ली और त्वचा की रचना में भेद

(चित्र २०२ और २१६)

१—श्लैष्मिक झिल्ली त्वचा से कोमल और पतली होती है।

२—उपचर्म की सेलों में रङ्ग रहता है, इस झिल्ली की सेलों में कोई रङ्ग नहीं होता। रक्त के चमकने के कारण श्लैष्मिक झिल्ली लाल दिखाई दिया करती है।

३—झिल्ली में श्लेष्म बनता है, त्वचा में नहीं बनता।

४—त्वचा में बाल होते हैं और पसीने की ग्रन्थियाँ होती हैं; झिल्ली में ये चीजें नहीं होतीं। झिल्ली में भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न प्रकार की ग्रन्थियाँ रहती हैं।

ओष्ठ की बनावट

१—सब से बाहर त्वचा रहती है।

२—त्वचा के नीचे वसा होती है।

३—वसा के नीचे मांस है।

४—मांस के नीचे अर्थात् ओष्ठ के भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक झिल्ली रहती है।

गाल की बनावट (चित्र २१७)

१—सब से बाहर त्वचा।

२—त्वचा के नीचे वसा होती है।

३—वसा के नीचे मांस।

आशयों की बनावट

इनकी दीवारें माँस से बनी होती हैं; जब माँस कम होता है तो दीवारें पतली होती हैं जैसे आमाशय और अंत्र की; माँस अधिक होने से दीवारें मोटी हो जाती हैं जैसे गर्भाशय की। माँस के नीचे अर्थात् आशय के भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक झिल्ली रहती है। माँस के बाहर एक पतली झिल्ली होती है। किसी किसी आशय की दीवार में कुछ वसा भी रहती है (जैसे हृदय की दीवार में)।

प्रणालियों और मार्गों की बनावट

मार्गों की दीवारें कहीं कहीं अस्थि और कारटिलेज से बनती हैं जिनके भीतरी पृष्ठों पर श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है जैसे नासिका और टेंटुवे में (जो श्वास मार्ग के भाग हैं)। बहुत से मार्गों और प्रणालियों की बनावट आशयों जैसी होती है।

ग्रन्थि

ग्रन्थि उस अंग या यंत्र को कहते हैं कि जिसका काम कोई रस बनाने का होता है; बनने के पश्चात् यह रस उस स्थान में पहुँच जाता है जहाँ उसकी आवश्यकता होती है। यकृत (जिगर) एक ग्रन्थि है जिसमें पित्त बनता है; यह रस पित्त प्रणाली द्वारा अंत्र या आंत में चला जाता है। ऐसे ही वृक्क

(गुर्दा) भी ग्रन्थि है जिसका काम मूत्र बनाने का है; मूत्र की शरीर में कोई आवश्यकता नहीं होती; मूत्रमार्ग द्वारा वह शरीर से बाहर चला जाता है। अंड शुक्र (वीर्य) बनानेवाली ग्रन्थि है; आमाशय वा अंत्र की दीवार में रहनेवाली सूक्ष्म सूक्ष्म ग्रन्थियों में पाचक रस बनता है।

जब वह स्थान जहाँ कि उस रस की जो ग्रन्थि में बनता है आवश्यकता होती है ग्रन्थि से दूर होता है तो उस ग्रन्थि के उस स्थान तक एक नली लगी रहती है; यह नली उस विशेष रस की प्रणाली कहलाती है; यकृत और क्षुद्र अंत्र के बीच में पित्त-प्रणाली लगी रहती है; अंड से शुक्र प्रणाली, वृक्क से मूत्र प्रणाली लगी रहती है। परन्तु जब वह रस किसी विशेष स्थान के लिये नहीं बनता प्रत्युत सम्पूर्ण शरीर के लिये बनता है तब किसी प्रणाली की आवश्यकता नहीं होती; यह रस ग्रन्थि के लसीका या रक्त में मिल जाता है और रक्त द्वारा शरीर के सब अंगों में पहुँचता है। प्रणालियों के हिसाब से ग्रन्थियाँ दो प्रकार की होती हैं।

१—प्रणाली सहित।

२—प्रणाली विहीन।

यह न समझना चाहिये कि जिन ग्रन्थियों में प्रणालियाँ हैं वे ऐसी वस्तुएँ नहीं बनातीं जिनकी सम्पूर्ण शरीर में आवश्यकता नहीं होती। नहीं नहीं इन प्रणाली सहित ग्रन्थियों में भी कुछ ग्रन्थियाँ ऐसी हैं जो दो प्रकार की वस्तुएँ बनाती हैं एक वह जिसकी विशेष स्थान में आवश्यकता होती है, दूसरी वह जो रक्त के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करती है। क्लोम वा अंड, ऐसी ही ग्रन्थियाँ हैं।

ग्रन्थियों का आकार, परिमाण व रचना

ग्रन्थियाँ बड़ी और छोटी सब ही प्रकार की होती हैं; यकृत् प्लीहा, वृक्क, क्लोम बड़ी बड़ी 'ग्रन्थियाँ हैं; अंड, डिम्ब-ग्रन्थि, उप वृक्क, लसीका ग्रन्थियाँ, थाइमस इत्यादि छोटी छोटी ग्रन्थियाँ हैं। बहुत सी ग्रन्थियाँ अणुवीक्ष्य होती हैं अर्थात् इतनी सूक्ष्म होती हैं कि बिना अणुवीक्षण के दिखाई नहीं देतीं।

ग्रन्थि वास्तव में एक सेल समूह होता है। अणुवीक्ष्य ग्रन्थियाँ पृथक् पृथक् सेल समूह होते हैं; बड़ी ग्रन्थियाँ अणु-वीक्ष्य ग्रन्थियों के समूह होते हैं।

सेल समूह जिन से ग्रन्थियाँ बनती हैं कई प्रकार के होते हैं; सेलें इस प्रकार रक्खी रहती हैं कि उनके बीच में एक छोटा सा स्थान रह जाता है जिसमें वह रस जो वे बनाती हैं इकट्ठा होता रहता है:—

(१) कुछ ग्रन्थियाँ नली जैसी होती हैं, लम्बी अधिक और चौड़ी कम; नली का एक सिरा खुला रहता है दूसरा बन्द होता है। खुला सिरा ग्रन्थि का मुख कहलाता है। सेलों के बाहर रक्त वा लसीका केशिका रहती हैं। जिन पदार्थों की नली की सेलों को रस बनाने के लिये आवश्यकता होती है वे चुए हुए लसीका से मिल जाते हैं। ये ग्रन्थियाँ **नलाकार** ग्रन्थियाँ कहलाती हैं। आमाशय और अंत्र की श्लैष्मिक झिल्ली में सहस्रों नलाकार ग्रन्थियाँ रहती हैं (चित्र २१९ में १) कभी कभी कई नलियाँ एक दूसरे से मिली रहती हैं (चित्र २१९ में २)। कभी कभी नली बहुत लम्बी होती है और उसका नीचे का भाग सर्प

की तरह गेंडली मारे रहता है ; पसीने की ग्रन्थियाँ इसी प्रकार की होती हैं (चित्र २१९ में ३)।

(२) कुछ ग्रन्थियाँ थैली जैसी होती हैं। ये **कोष्ठाकार** ग्रन्थियाँ कहलाती हैं (चित्र २१९ में ४) कभी कभी कई थैलियों या कोष्ठों के एक दूसरे से जुड़े रहने से एक बड़ी

चित्र २१९ ग्रन्थियाँ
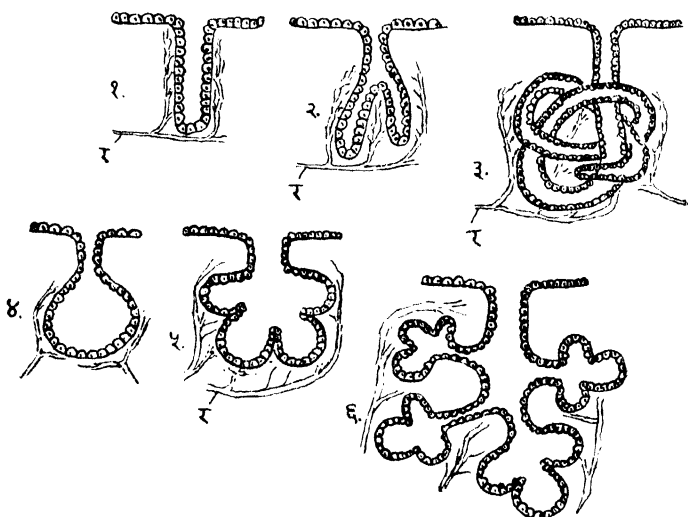
र = रक्तवाहिनियाँ

थैली बन जाती है (चित्र २१९ में ५) क्लोम इस प्रकार की ग्रन्थियाँ का समूह है ; थूक की ग्रन्थियाँ भी ऐसी ही होती हैं।

(३) कुछ ग्रन्थियाँ न नली जैसी होती हैं और न कोष्ठ जैसी। इनमें बहुत सी सेलें पास पास रहती हैं ; सेलों के बीच

में कहीं कहीं अन्तर रहता है; रस इस रास्ते में चला जाता है। ऐसे ऐसे बहुत से सेल समूह होते हैं और इन समूहों से एक पिंड बन जाता है। **यकृत्** और लसीका ग्रन्थियों की रचना ऐसी ही होती है।

मुख्य ग्रन्थियों के नाम और उनके स्थान

१—**यकृत्**। यह ग्रन्थि उदर में वक्षउदरमध्यस्थ पेशी के नीचे रहती है; अधिक भाग दाहिनी ओर रहता है। इस में पित्त बनता है जो पित्तप्रणाली द्वारा क्षुद्र अंत्र के पक्वाशय नामक भाग में पहुँच कर भोजन को पचाता है। इस ग्रन्थि का भार १½ सेर के लगभग होता है (चित्र ९)।

२—**क्लोम**। यह ग्रन्थि उदर में रीढ़ के सामने आमाशय और अंत्र के पीछे रहती है। इसका रस एक नली द्वारा पक्वाशय में जाता है और भोजन को पचाता है। इसका भार १½ छटाँक के लगभग होता है।

३—**वृक्क**। इनका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

४—**अंड** या **शुक्र ग्रन्थियाँ**। ये दो होते हैं और केवल पुरुष में रहते हैं स्त्री में नहीं। इनमें शुक्र या वीर्य बनता है। शुक्र पहले शुक्रप्रणाली द्वारा शुक्राशय में जाता है; वहाँ से मैथुन के समय मूत्र मार्ग (शिश्न द्वारा) में होकर बाहर निकलता है। इन ग्रन्थियों में एक ऐसी वस्तु भी बनती है जो रक्त द्वारा संपूर्ण शरीर में पहुँचती है और अंगों को पुष्ट बनाती है (देखो पुस्तक का दूसरा भाग)।

५—**दुग्ध ग्रन्थि** या **स्तन**। स्तन स्त्री वा पुरुष दोनों

में होते हैं परन्तु दुग्ध केवल स्त्रियों में ही बनता है; स्त्री के स्तन पुरुषों से अधिक बड़े होते हैं। स्तन वृन्त में बहुत से छिद्र होते हैं; दुग्ध इन्हीं छिद्रों से निकला करता है।

६—**लाला ग्रन्थियाँ या थूक की ग्रन्थियाँ**। हर एक मनुष्य में छः ग्रन्थियाँ होती हैं तीन दाहिनी और तीन बाईं। इनमें थूक बनता है जो एक प्रकार का पाचक रस है। यह नलियों द्वारा मुँह में जाता है।

७—**चुल्लिका ग्रन्थि**। यह ग्रन्थि ग्रीवा में स्वरयंत्र के सामने रहती है। यह ग्रन्थि कभी कभी रोगों के कारण बहुत बड़ी हो जाती है। इसमें प्रणाली नहीं होती; इसका रस रक्त द्वारा शरीर के सब भागों में पहुँचता है।

८—**थाइमस** ❀। यह ग्रन्थि बच्चों में होती है और वक्षोऽस्थि के ऊपर के भाग के पीछे रहती है। युवावस्था (१४-१५ वर्ष) के पश्चात् ज्यों ज्यों बालक बड़ा होता है यह ग्रन्थि छोटी होती जाती है। प्रौढ़ावस्था (२०-२५ वर्ष) में यह बहुत ही छोटी हो जाती है। इसमें कोई प्रणालो नहीं होती।

९—**उपवृक्क**। ये दो ग्रन्थियाँ वृक्कों के ऊपर के सिरों पर रहती हैं। इनमें नलियाँ नहीं होतीं।

१०—**प्लीहा या तिल्ली**। यह उदर में बाईं ओर रहती है; कोई प्रणाली नहीं होती। ज्वरों में विशेष कर मलेरिया ज्वर (मौसिमी बुख़ार) और काला अज़ार में यह बहुत बड़ी हो जाया

❀ अंग्रेज़ी भाषा का शब्द।

करती है। स्वस्थ मनुष्य में इसका भार पाँच छटाँक के लगभग होता है।

११—**लसीका ग्रन्थियाँ**। इनका वर्णन पीछे किया जा चुका है।

१२—**प्रोस्टेट** *। यह पुरुषों ही में होती है। मूत्राशय के नीचे रहती है। कोई प्रणाली नहीं होती। इसका रस मूत्रमार्ग में पहुँच कर शुक्र से मिल जाता है।

१३—**डिम्ब ग्रन्थियाँ**। ये दो ग्रन्थियाँ स्त्रियों ही में होती हैं; वस्तिगह्वर में गर्भाशय के इधर उधर रहती हैं। इनमें डिम्ब या अंडे बनते हैं जो डिम्बप्रणाली द्वारा गर्भाशय में चले जाते हैं। शुक्रकीट और अंड के संयोग से गर्भस्थिति होती है। इन ग्रन्थियों में एक ऐसी चीज़ भी बनती है जो सीधी रक्त में मिल जाती है।

(ग्रन्थियों के लिये देखो हमारे शरीर की रचना भाग २)

---

* अंग्रेज़ी भाषा का शब्द।

कोष

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी या पाश्चात्य भाषा
धातु	१	Metals
सृष्टि	१	World; Creation
सजीव	१	Living
चैतन्य	१	,,
निर्जीव	१	Non-living
जड़	१	,,
लताएँ	१	Creepers
वनस्पतिवर्ग	२	Vegetable kingdom
प्राणिवर्ग	२	Animal kingdom
विभाग	२	Division
यंत्र	२	Instrument
अणुवीक्षण	३	Microscope
सूक्ष्मदर्शक	३	,,
चक्षुताल	३	Eyepiece
वस्तुताल	३	Objective
मंच	३	Stage
शीशा	३	Mirror
पट्टी	३	Slide
कमानी	३	Spring
अंतर	४	Distance
प्रकाश	४	Light
किरणें	४	Rays
चक्षु	४	Eye

वैज्ञानिक	४	Scientist
सूक्ष्म	४	Minute
जीवधारी	४	Living object
ह्वेल	५	Whale
बिन्दु	५	Dot; point
बकटेरिया*	५	Bacteria
रोगोत्पादक	५	Disease producing
जंतु	५	Organisms
सेल, सेलें*	५	Cell; Cells
आकार	६	Shape
परिमाण	६	Size
संख्या	७	Number
जातियाँ	७	Classes
एक सेलयुक्त जीवधारी	७	Unicellular animals
बहु सेलयुक्त जीवधारी	७	Multicellular animals
प्राणियों	७	Animals
सेल-समूह	७	Cell mass
अमीबा*	८	Amœba
मिथ्या पाद	८	Pseudopodium (falsefoot)
शून्यस्थान	८	Vacuole
मींगी	८	Nucleus
जीवन मूल	८	Protoplasm
व्यास	८	Diametre

स्वच्छ	८	Clear; transparent
गाढ़े	८	Thick; viscid
जीवोज	९	Protoplasm
धुंधली	९	Opaque
चैतन्य केन्द्र	९	Nucleus
रासायनिक	९	Chemical
प्रोटीन*	९	Protein
कर्बन	९	Carbon
उद्‌जन	९	Hydrogen
नत्रजन	९	Nitrogen
ओषजन	९	Oxygen
गन्धक	९	Sulphur
स्फुर	९	Phosphorus
मूलतत्व	९	Elements
मौलिक	९	Elements
संयोजित पदार्थ	९	Compound
यौगिक	९	Compound
प्रागुक्त	९	Above said
लवण	९	Salts
लोहा	९	Iron
विश्लेषण	९	Analysis
चैतन्यता	१०	Life
पांखे	१०	Fins
आकृति	१०	Contour
क्षण	१०	Moment

रेखा	१०	Line
गोलाकार	१०	Spherical
चाल	११	Movement
पोषणकारक	११-१२	Nourishing
दुष्पच	१२	Indigestible
मलिन	१२	Impure
कर्बनद्विओषिद	१२	Carbondioxide
दरार	१२	Fissure
स्पर्श इन्द्रिय	१२	Organ of touch
शीत	१२	Cold
उष्णता	१२	Heat
पीड़ा	१२	Pain
यौवन	१३	Youth
क्रियाओं	१३	Activities
लक्षण	१३	Signs
कारण	१५	Cause
प्रभाव	१५	Effect
कार्य	१५	Act
बाह्य	१५	External; foreign
उत्तेजना	१५	Stimulus
बल	१५	Force
परिवर्त्तन	१५	Change
उत्तेज्य	१५	Irritability; Capacity of responding
पौष्टिक	१६	Nutritious

समीकरण	१६	Asssimilation
एकीकरण	६१	Assimilation
वृद्धि	१६	Growth
बर्धन शक्ति	१६	Growth
उत्पादन शक्ति	१७	Reproduction
फुफ्फुसों	१७	Lungs
गुरदों	१७	Kidneys
त्वचा	१७	Skin
मलोत्सर्जन	१७	Excretion
अणुमींगी	१८	Nucleolus
आरों	१८	Spokes
आकर्षण गोला	१८	Attraction sphere
श्रम विभाग	२०	Division of labour
कार्य विभाग	२०	Division of work
रचना विभेदन	२०	Differentiation of structure
रचना भेद	२०	Difference in structure
सपाट	२१	Squamous; flat
स्तंभाकार	२१	Columnar
घनाकार	२१	Cubical
बेलनाकार	२१	Cylindrical
अन्नमार्ग	२१	Digestive canal
कंठ	२१	Throat; pharynx
टेंटुवे	२१	Trachea
वायु प्रणालियों	२१	Bronchi

लोमश सेल	२१	Hair cell
गोलाकार	२१	Spherical
तर्काकार	२१	Spindleshaped
सौत्रिक तंतु	२१	Fibrous tissue
मर्कटाकार सेल	२२	Spider cell
सूची	२२	Pyramid
सूच्याकार	२२	Pyramidal
मस्तिष्क	२२	Brain
शुक्रकीट	२२	Spermatozoon
मांस	२२	Muscle
कारटिलेज*	२२	Cartilage
मसाला	२३	Cementing material
भिल्ली	२३	Membrane
स्तरें	२३	Layers
लोथड़े	२३	Masses
वसामय भिल्ली	२३	Fatty membrane
स्थिति स्थापक	२३	Elastic
तरल	२४	Fluid
अंग	२४	Organ
जंघा	२५	Leg
हृदय	२५	Heart
ठोस	२५	Solid
यकृत	२५	Liver
पोले	२५	Hollow
मूत्राशय	२५	Urinary bladder

शुक्राशय	२५	Vesiculae seminales
आमाशय	२५	Stomach
गर्भाशय	२५	Uterus
नलियाँ	२५	Tubes
राज्य शासन	२५	Government; Administration
उत्तरदाता	२५	Responsible
संस्थान	२५	System
पोषण संस्थान	२५	Digestive system
रक्तवाहक संस्थान	२५	Circulatory system
रक्तसंचालक संस्थान	२५	Circulatory system
सहव्यापार	२५	Cooperation
अस्थि संस्थान	२५	Osseous system
संधि संस्थान	२६	Joints; Syndesmology
माँस संस्थान	२६	Muscular systen
रक्त	२६	Blood
श्वासोच्छ्वास संस्थान	२६	Respiratory system
मूत्रवाहक संस्थान	२६	Urinary system
वात या नाड़ी संस्थान	२६	Nervous system
विशेष ज्ञान इन्द्रियाँ	२६	Special senses
उत्पादक संस्थान	२६	Reproductive system
ग्रीवा	२७	Neck
धड़	२७	Trunk
शाखा	२७	Extremity

ऊर्ध्व शाखाएँ	२७	Upper extremities
निम्न शाखाएँ	२७	Lower extremities
अधो शाखाएँ	२७	" "
स्तन	२७	Breasts; mamma
वक्षः स्थल	२७	Thorax
शिश्न	२७	Penis
भग	२७	Vulva
उदर	२७	Abdomen
नेत्र	२८	Eye
नासिका	२८	Nose
भ्रु	२८	Eyebrow
मस्तक	२८	Forehead
ललाट	२८	Forehead
कपोल	२८	Cheek
ऊर्ध्व ओष्ठ	२८	Upper lip
ऊर्ध्व हनु	२८	Upper jaw
अधो ओष्ठ	२८	Lower lip
निम्न हनु	२८	Lower jaw
दन्त	२८	Tooth; dent
प्रौढ़ावस्था	२८	Adult age
चिबुक	२८	Chin
कूर्च	२८	Beard
मसूड़े	२९	Gums
तालु	२९	Palate
कठिन तालु	२९	Hard palate

कोमल तालु	२९	Soft palate
अलिजिह्वा	२९	Uvula
शुंडिका	२९	Uvula
महराब	२९	Arch
कंठ	२९	Pharynx; throat
नकने	२९	Nares
स्वरयंत्र	२९	Larynx; voicebox
शंखदेश	२९	Temple
गुद्दी	३०	Nape of neck
मन्या	३०	Nape of neck
शीर्ष	३०	Top of head
मस्तिष्क	३०	Brain
कंठिकास्थि	३०	Hyoid bone
टेंटुवा	३०	Trachea
अन्न प्रणाली	३०	Oesophagus; gullet
फड़क	३०	Throbbing; pulsation
कृकाटिका	३१	Back of neck
रीढ़	३१	Spine
उरस्थल	३१	Thorax
भुजा	३१	Arms
अत्तक	३१	Clavicle; collarbone
स्तन वृंत्	३१	Nipple
चूचुक	३१	Mammilla
वक्षोऽस्थि	३१	Breastbone; sternum
पृष्ठ देश	३१	Back

खवे	३१	Shoulderblade regions
हृदय	३२	Heart
वात सूत्र	३२	Nerve fibres
लसीका ग्रन्थियाँ	३२	Lymph glands
वस्ति गह्वर	३२	Pelvic cavity
कपाल	३२	Cranium
काशेरूकी नली	३२	Vertebral canal
वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी	३३	Diaphragm muscle
कौड़ी देश	३३	Epigastric region
नाभि	३३	Navel
जनन इन्द्रियाँ	३३	Generative organs
भग संधि	३३	Symphysis pubis
कमर	३३	Loins
कटि देश	३३	Lumbar region
मैथुन	३३	Coitus
अंडकोष	३३	Scrotum
वृषण	३३	Scrotum
अंड	३३	Testicle
योनि द्वार	३४	Vaginal opening
मल द्वार	३४	Anus
चूति	३४	Anus
अंत्र	३४	Intestine
क्लोम	३४	Pancreas
प्लीहा	३४	Spleen

वृक्क	३४	Kidney
शुक्र	३४	Semen
वीर्य	३४	Semen
डिम्ब ग्रन्थियाँ	३४	Ovaries
स्कन्ध	३५	Shoulder
बाहु	३५	Arm
प्रगंड	३५	Arm
कक्ष	३५	Axilla
कक्षतल	३५	Armpit; axilla
कूर्पर	३५	Elbow
प्रकोष्ठ	३५	Forearm
अग्र बाहु	३५	Forearm
हस्त	३५	Hand
हस्त तल	३५	Palm
करतल	३५	Palm
अंगुष्ठ	३५	Thumb; Hallux
कनिष्ठा	३५	Little finger
प्रदेशिनी	३५	Index finger
तर्जनी	३५	Index finger
अनामिका	३५	Fourth or ring finger
मध्यमा	३५	Middle finger
पोर्वे	३५	Phalanges
नख	३५	Nail
करभ	३५	Back of hand
घुटना	३७	Knee

ऊरु	३७	Thigh
वंक्षण	३७	Groin; Inguinal region
धमनी	३७	Artery
चूतड़	३७	Fold of nates
कूल्हा	३७	Hip
नितंब	३७	Hip
जानु	३७	Knee
पाली	३७	Knee cap; patella
चपनी	३७	Knee cap; patella
जंघा	३७	Leg
पद	३८	Foot
टखना	३८	Ankle
गुल्फ	३८	Malleolus
पार्ष्णि	३८	Heel
पाद तल	३८	Sole
पत्रे	३८	Layers; sections
शस्त्रों	३८	Instruments
व्यवच्छेद विद्या	३८	Anatomy
शवच्छेद विद्या	३८	Science of dissection
छेदन शास्त्र	३८	Anatomy
व्यवच्छेदक	३८	Anatomist
इन्द्रिय व्यापार शास्त्र	३९	Physiology
अमुक	३९	So & so
चीरा	३९	Incision
चिमटी	४०	Forceps

प्रत्युत	४०	On the other hand
कला	४०	Membrane
नाड़ी सूत्र	४०	Nerve fibre
मांस आवरक कला	४१	Fascia of muscle
परिभाषा	४१	Terminology
मांस पेशी	४१	Muscle
पेशी	४१	Muscle
वातरज्जु	४२	Nerve
नाड़ी	४२	Nerve
अस्थ्यावरक	४२	Periosteum
अस्थिवेष्ट	४२	Periosteum
मज्जा	४२	Bonemarrow
व्यत्यस्त	४३	Transverse; Cross
काट	४३	Section
तंतु	४४	Tissue; tissues
मांस तंतु	४४	Muscular tissue
वात तंतु	४४	Nervous tissue
आज्ञा	४४	Order
सूचनाएँ	४४	Information; news
बंधक तंतु	४५	Connective tissue
वसामय सौत्रिक तंतु	४५	Adipose tissue
खनिज	४५	Mineral
तरुण अस्थि	४५	Immature or young bone
पृष्ठाच्छादक तंतु	४५	Epithelial tissue
तल	४५	Surface

कंकाल	४७	Skeleton ✓
अस्थिपंजर	४७	Skeleton ✓
स्तन धारी	४८	Mammals ✓
ज़िराफ	४७	Giraffe ✓
ललाटास्थि	४८	Frontal bone
अधोहन्वस्थि	४८	Lower jaw ✓
प्रगंडास्थि	४८	Humerus ✓
बहि:प्रकोष्ठास्थि	४८	Radius ✓
अंत: प्रकोष्ठास्थि	४८	Ulna ✓
स्कंधास्थि	४८	Scapula ✓
जंघास्थि	४८	Tibia ✓
अनुजंघास्थि	४८	Fibula ✓
नितंबास्थि	४८	Os innominatum ✓
पर्शुका	४८	Rib ✓
कशेरु	४८	Spine ✓
करभास्थि ✓	४८	Metacarpal ✓
ऊर्वस्थि	४८	Femur ✓
दृढ़ता	५२	Firmness ✓
कपर	५३	Skull
करोटि	५३	Skull
पृष्ठवंश	५३	Vertebral column ✓
मेरु दंड	५३	Spinal column ✓
धूसर	५४	Grey ✓
विरुप	५४	Irregular ✓
नामकरणविधि	५४	Nomenclature ✓

देश	५४	Region
ऊरु	५४	Thigh
प्रवर्द्धन	५५	Process
कण्टक	५५	Spine; Pointed process
अर्बुद	५५	Protruberance; projection
कूट	५५	Process
पिण्डक	५५	Tuberosity
तीरणिका	५५	Raised line
खात	५५	Depression; Fossa
पीठ	५५	Depression
उलूखल	५५	Deep depression
परिखा	५५	Groove
स्थालक	५५	Facet
शिर	५५	Head
शिखरक	५५	Apex like process, Trochanter
अधोभाग	५५	Lower portion or base
छेद	५५	Deep groove; Notch
भंग	५५	Notch
शोफ	५५	Small projection
उद्भेद	५५	Small projection
ग्रीवा	५६	Neck
गात्र, पिंड	५६	Body; corpus
धारा	५६	Border
कोण	५६	Angle

तुंड	५६	Beak like process
कोटर	५६	Air sinus (of bones)
दूरस्थ	५६	Distal
समीपस्थ	५६	Proximal
बंधन	५६	Ligament
अंसकूट	५७	Acromion process
अक्षकाधरा पेशी	५७	Subclavius muscle
बल	५७	Curvature
उर:कर्ण मूलिका पेशी	५७	Sterno-cleido-mastoid-muscle
उरस्या बृहती पेशी	५७	Pectoralis major muscle
कशेरु अंस अक्षका पेशी	५७	Trapezius muscle
अंसाच्छादनी पेशी	५७	Deltoideus muscle
शंकु प्रवर्द्धन	५८	Conoid process
अक्षक पर्शुका बंधन	५८	Costo-clavicular ligament
माध्यमिक	५९	Medial
स्कंधास्थि	५९	Scapula
अंस प्राचीरक	६१	Spine of scapula
प्राचीरकोर्ध्व खात	६१	Supraspinatous fossa
प्राचीरकाध: खात	६१	Infraspinatous fossa
प्राचीरकोर्ध्वा पे०	६१	Supraspinatous muscle
प्राचीरकाधोगा पे०	६१	Infraspinatous muscle
अंसाधरा	६१	Subscapularis muscle
ऊर्ध्व धारा	६१	Superior border

वंशानुगाधारा	६१	Vertebral border
कक्षानुगा धारा	६१	Axillary border
अंस तुण्ड	६१	Corocoid process
अर्ध गोलाकार	६२	Hemispherical
अंस पीठ	६२	Glenoid cavity
महा पिण्डक	६२	Greater tuberosity
लघु पिण्डक	६२	Lesser tuberosity
पिण्डकांतरिका परिखा	६२	Intertubercular sulcus
द्विशिरस्का पे०	६२	Biceps muscle
कंडरा	६२	Tendon
बेलनाकार	६२	Cylindrical
त्रिपार्श्विक	६२	Prismatic ; triangular
आन्तरार्बुद	६२	Medial epicondyle
बाह्यार्बुद	६२	Lateral epicondyle
अंत:प्रकोष्ठिका नाड़ी	६२	Ulnar nerve
महा पिण्डक चूड़ा	६३	Crest of greater tuberosity
लघु पिण्डक चूड़ा	६३	Crest of lesser tuberosity
अंसार्बुद	६३	Deltoid tuberosity
चंचु खात	६४	Coronoid fossa
कंदली	६४	Capitulum
डमरुक	६४	Trochlea
बहि:प्रकोष्ठास्थि खात	६४	Radial fossa
चंचु प्रवर्द्धन	६४	Coronoid process
कूर्पर खात	६४	Olecranon fossa

कूर्पर कूट	६४	Olecranon process
आंतरार्बुदिक तीरणिका	६४	Medial supracondylar ridge
बाह्यार्बुदिक तीरणिका	६४	Lateral supracondylar ridge
अग्र धारा	६४	Anterior border
मध्य धारा	६४	Medial border
बाह्य धारा	६४	Lateral or outer border
अग्र बाह्य	६४	Anterc-external
अग्र आन्तर	६४	Antero-internal
पाश्चात्य	६४	Dorsal or posterior
अन्तः प्रकोष्ठिका नाड़ी परिखा	६५	Groove for ulnar nerve
कपालिका	६६	Olecranon process
अन्तर्मणिक	६६	Styloid process of ulna
बहिः प्रकोष्ठार्बुद	६६	Radial tuberosity
बहिर्मणिक	६६	Styloid process of radius
प्रकोष्ठ	६७	Forearm
कलाई	६७	Wrist; carpus
मध्य रेखा	६७	Middle line
अंतरीय	६७	Internal; medial
अन्तः	६७	Internal; medial
बाह्य	६७	External; lateral
बहिः	६७	External; lateral
बहिः प्रकोष्ठास्थि	६७	Radius

अन्तः प्रकोष्ठास्थि	६७	Ulna
द्विशिरस्कार्बुद	६७	Bicipital tuberosity
अंत: प्रकोष्ठिकाभंग	६७	Ulnar notch
अस्थ्यान्तरिक कला	६९	Interosseous membrane
प्रगंडीय भंग	६९	Humeral notch (semi-lunar notch)
बहि: प्रकोष्ठिकाभंग	७०	Radial notch
समकोण	७०	Right angle
समत्रिकोण	७१	Equilateral triangle
आपेक्षिक	७१	Relative
स्थिति	७१	Position
समांतर	७१	Parallel
नौकाकृति	७२	Navicular
चतुर्थीचन्द्राकार	७२	Lunate; semilunar
त्रिकोण	७२	Triquetral; cuneiform
मटराकार	७२	Pisiform
वर्त्तुलक	७२	Pisiform
वृहत् बहुकोण	७२	Greater multangular (Trapezium)
क्षुद्र बहुकोण	७२	Lesser multangular (Trapezoid)
शिरोधारी	७२	Capitate (Os magnum)
वक्रास्थि	७२	Hamate (Unciform)
फण धर	७२	Hamate (Unciform)
नौकार्बुद	७२	Tubercle of navicular

मणि बन्ध	७५	Radio-carpal joint
पार्श्व	७६	Sides
करभास्थि	७७	Metacarpal
अंगुल्यस्थि	७७	Phalanx
पर्व	७७	Phalanx
नितंबास्थि	७८	Os innominatum
त्रिक	७८	Sacrum
विटप संधि	७८	Symphysis pubis
भग संधि	७८	Symphysis pubis
जघनास्थि	७९	Ilium bone
भगास्थि	७९	Pubis bone
कुकुन्दरास्थि	७९	Ischium bone
जघन चूड़ा	७९	Iliac crest
पुरोर्ध्व कूट	७९	Antero-superior spine
पुराधः कूट	७९	Antero-inferior spine
वंक्षणोलूखल	७९	Acetabulum
कुकुन्दर पिण्ड	७९	Ischial tuberosity
उत्तर शृङ्ग	८०	Superior ramus
अधर शृङ्ग	८०	Inferior ramus
भग कंटक	८०	Pubic spine
कुकुन्दर भंग	८०	Lesser sciatic notch
कुकुन्दर कंटक	८०	Ischial spine
उलूखल खात	८०	Acetabular fossa
तारुण्यावस्था	८०	Puberty
विटपदेश	८०	Pubic region

गुदास्थि	८०	Coccyx
गह्वर	८०	Cavity
कोख	८२	Iliac region
जघन	८२	Iliac region
अग्र तीरणिका	८३	Anterior line
पाश्चात्य तीरणिका	८३	Posteror line
अधो तीरणिका	८३	Inferior line
पश्चिमोर्ध्व कूट	८३	Posterosuperior spine
पश्चिमाधः कूट	८३	Posteroinferior spine
गृध्रस्या भंग	८३	Sciatic notch
उलूखल भंग	८३	Acetabular notch
गवाक्ष	८३	Obturator foramen
जघनार्बुद	८३	Iliac eminence
कंकतिकार्बुद	८३	Pectineal eminence
जघन खात	८४	Iliac fossa
धनुराकार तीरणिका	८४	Arcuate line
गवाक्ष परिखा	८४	Obturator groove
नितंब तल	८५	Gluteal surface
नैतंबिका महती पे०	८५	M. Gluteus maximus
नैतंबिका मध्यस्थापे०	८५	M. Gluteus medius
नैतंबिका लध्वी पे०	८५	M. Gluteus minimus
महा शिखरक	८७	Trochanter major
भग कोण	८७	Pubic angle
जघन त्रिक संधि	८७	Ilio-sacral joint
कटि त्रिक संधि	८७	Lumbc-sacral joint

जघनीया पे०	८८	M. Iliacus
त्रिक स्थालक	८८	Auricular surface
लघु शिखरक	८९	Trochanter minor
जान्वस्थि स्थालक	८९	Patellar surface
आन्तर ऊर्वार्बुद	८९	Medial condyle
बाह्य ऊर्वार्बुद	८९	Lateral condyle
उप ऊर्वार्बुद	८९	Epicondyle
विश्लेषित तीरणिका	८९	Linea aspera
उप पर्शुका	९१	Costal cartilage
अनुजंघास्थि	९१	Fib[illegible]
आन्तर जंघार्बुद	९१	Medial condyle of tibia
बाह्य जंघार्बुद	९१	Lateral condyle of tibia
जंघा कण्टक	९१	Inter condyloid eminence
पश्चिम शिखरांत-रिक तीरणिका	९२	Inter trochanteric crest
अग्र शिखरांतरिक तीरणिका	९२	Inter trochanteric line
जानु पृष्ठ स्थान	९२	Popliteal space
अर्बुदांतरिक स्थान	९२	Inter condyloid fossa
चतुरस्रा अर्बुद	९२	Quadrate tubercle
अर्धचन्द्राकार	९३	Semilunar
जंघा प्रवर्द्धन	९३	Tibial tuberosity
अन्तर्गुल्फ	९३	Medial malleolus
बहिर्गुल्फ	९३	Lateral malleolus
टखना	९५	Ankle

पार्ष्णि	९५	Heel
कूर्चास्थियाँ	९५	Tarsal bones
गुल्फास्थि	९५	Talus (astragalus)
अण्डाकार	९५	Oval
गुल्फ खात	९५	Sulcus tali
गुल्फ प्रवर्द्धन	९६	Sustentaculum tali
पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा पे०	९६ ९६	M. Flexor hallucis longus
घनास्थि	९६	Cuboid
नौकाकृति	९६	Navicular
नतोदर	९६	Concave
उन्नतोदर	९६	Convex
त्रिपार्श्विक	९७	Cuneiform
प्रपाद	९७	Tarsus
शलाकाकार	९७	Rodshaped
पुच्छास्थि	१००	Coccyx
गुदास्थि	१००	Coccyx
चंचु	१००	Coccyx
कशेरु कण्टक	१०१	Spinous process
पाश्चात्य प्रवर्द्धन	१०१	Spinous process
स्थालक	१०१	Facet
चक्री	१०२	Disc
पार्श्व प्रवर्द्धन	१०२	Transverse process
संधि प्रवर्द्धन	१०२	Articular process
चक्र मूल	१०३	Pedicle

प्रवर्द्धन	१०३	Process
अनुप्रस्थ	१०३	Transverse
सुषुम्णा	१०४	Spinal cord
धमनी परिखा	१०५	Groove for artery
दंतवत् प्रवर्द्धन	१०५	Dens; odontoid process
त्रिक पत्र	१०८	Ala
त्रिक छिद्र	१०८	Sacral foramen
विकास	१०९	Evolution
उरोऽस्थि	१११	Sternum
अक्षक संधि स्थालक	११२	Facet for articulation with clavicle
ऊर्ध्व खंड	११२	Episternun
मध्य खंड	११२	Meso-sternum
अग्र खंड	११२	Xiphi-sternum
पर्शुकांतर	११४	Inter costal space
उप पर्शुका	११५	Costal cartilage
महालसीका वाहिनी	११७	Thoracic duct
समस्थ	११८	Horizontal
पार्श्वकास्थि	११८	Parietal bone
अन्तस्तल	१२०	Inner surface
नेत्रच्छदि फलक	१२०	Orbital plate
अश्रु ग्रन्थि खात	१२०	Lacrimal fossa
वायु कोटर	१२०	Air sinus
शिरा कुल्या परिखा	१२०	Groove for venous sinus
जतूकास्थि	१२०	Sphenoid bone

गंडास्थि	१२०	Malar bone
ब्रह्म रन्ध्रम	१२१	Anterior fontanelle
अधिपति रन्ध्रम	१२१	Posterior fontanelle
पूर्व विवर	१२१	Anterior fontanelle
पश्चात् विवर	१२१	Posterior fontanelle
नवजात	१२१	New born
पुरोर्ध्व कोण	१२२	Antero-superior angle
पुराधः कोण	१२२	Antero- inferior angle
पश्चिमोर्ध्व कोण	१२२	Postero-superior angle
पश्चिमाधः कोण	१२२	Postero-inferior angle
पार्श्व शिरा कुल्या परिखा	१२२	Sulcus for transverse or lateral sinus
ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या परिखा	१२२	Sulcus for superior sagi-ttal or longitudinal sinus
शिरा कुल्या संगम	१२२	Confluence of sinuses; Torcular Herophili
द्वादशी नाड़ी सुरंगा	१२२	Hypoglossal canal
आलम्ब कूट	१२३	Occipital condyle
शङ्खास्थि	१२४	Temporal bone
हनुसन्धि स्थालक	१२४	Glenoid fossa
हनु मुण्ड	१२४	Condyle of mandible
गंड प्रवर्द्धन	१२४	Zygomatic process
शङ्ख चक्र	१२४	Squamous portion of temporal bone
शिफा प्रवर्द्धन	१२५	Styloid process

कर्णान्तर द्वार	१२५	Internal acoustic meatus
अश्म कूट	१२५	Petrous portion
अग्र तालुखात	१२६	Anterior palatine fossa
कर्तनक दंत उलूखल	१२६	Alveolus of incisor tooth
भेदक दंत उलूखल	१२६	Alveolus of canine tooth
अग्र चर्वणक दंत उलूखल	१२६	Alveolus of bicuspid tooth
पश्चिम चर्वणक दंत उलूखल	१२६	Alveolus of molar tooth
चरण खात	१२६	Pterygoid fossa
जतूका चरण	१२६	Pterygoid process
चरण तालु सुरंग	१२६	Pterygo-palatine canal
शिरोधीया धमनी सुरंग	१२६	Carotid canal
अंडाकार छिद्र	१२६	Foramen ovale
कोण छिद्र	१२६	Foramen spinosum
संध्यर्बुद	१२६	Eminentia articulata
विवर	१२६	Fissure; gap
कर्ण बहिर्द्वार	१२६	External acoustic meatus
शिफा छिद्र	१२६	Stylomastoid foramen
गोस्तन प्रवर्द्धन	१२६	Mastoid process
द्विगुम्फिका खात	१२६	Digastric fossa
अनुकूट प्रवर्द्धन	१२६	Jugular process
मन्यातीर्णिका	१२६	External occipital crest

मन्याबुर्द	१२६	External occipital protruberance
कंठकर्णी नाली	१२६	Eustachian tube
अंतः फलक	१२६	Medial pterygoid lamina
नासा फलकास्थि	१२६	Vomer
तालु छिद्र	१२६	Palatine foramen
नासा पश्चिम द्वार	१२६	Posterior nares
तितलीस्वरूपास्थि	१२७	Sphenoid bone
लघु पक्ष	१२७	Lesser wing
बृहत पक्ष	१२७	Greater wing
झर्झरास्थि	१२७	Ethmoid bone
बहुछिद्रास्थि	१२७	Ethmoid bone
शिखर कंटक	१२८	Crista galli
चालनी पटल	१२८	Cribriform plate
पार्श्व पिंड	१२९	Lateral mass
मध्य फलक	१२९	Lamina perpendicularis
मध्य शुक्तिका	१२९	Middle turbinate
अधो हन्वस्थि	१३०	Superior maxilla
हनु मण्डल	१३१	Body of mandible
हनु कूट	१३१	Ramus of mandible
दंतोलूखल	१३१	Alveolus of tooth
गुप्त छिद्र	१३२	Foramen cœcum
जतूका कंटक	१३२	Sphenoidal spine
दृष्टि नाड़ी परिखा	१३२	Optic groove
जतूकललाट संधि	१३२	Spheno-frontal suture

पक्षांतराला	१३२	Superior orbital fissure
ऊर्ध्व अक्षिगूहाविवर	१३२	Superior orbital fissure
लघुपक्ष कूट	१३२	Anterior clinoid process
वृत्त रन्ध्र	१३२	Foramen rotundum
जतूक शंखास्थि संधि	१३२	Spheno-temporal suture
मध्य मात्रिका नाड़ी परिखा	१३२	Groove for middle meningeal artery
शंख पार्श्व संधि	१३२	Temporo-parietal suture
सरल शिरा कुल्या परिखा	१३२	Groove for straight sinus
अश्म शिरा कुल्या	१३२	Petrosal sinus
छदि कूट	१३२	Posterior clinoid process
ललाट ध्रुव	१३२	Frontal pole
ओधीया धमनी विवर	१३२	Foramen lacerum
अश्म कूट-शंख चक्र संधि	१३२	Petro-squamous suture
पंचम नाड़ी गंड	१३२	Gasserion ganglion
गंभीर शिरोधिया शिरा विवर	१३२	Fissure for internal jugular vein
ब्रहत् म.स्तिष्क खात	१३२	Cerebral fossa
लघु मस्तिष्क खात	१३२	Cerebellar fossa
हनु कुन्त	१३३	Coronoid process
हनु मुण्ड	१३३	Condyle of mandible
लौर	१३३	Lobule of ear

कर्ण पाली	१३३	Lobule of ear
नासास्थि	१३४	Nasal bone
नासावंश	१३४	Bridge of nose
अश्रवस्थि	१३५	Lacrimal bone
अधो शुक्तिका	१३५	Inferior turbinate
अधो सीपाकृति	१३५	Inferior turbinate
ऊर्ध्व शुक्तिका	१३६	Superior turbinate
मध्य शुक्तिका	१३६	Middle turbinate
अंकुश	१३६	Hamular process
तालु फलक	१३६	Palatine process
ताल्वस्थि	१३९	Palatine bone
कपोलास्थि	१४०	Malar bone
गण्डास्थि	१४०	Malar bone
रकाबास्थि	१४१	Stapes
शूर्मिकास्थि	१४१	Incus
मुद्गरास्थि	१४१	Malleus
कर्णाजली	१४१	External acoustic meatus
कर्ण पटह	१४१	Tympanic membrane
मध्य कर्ण	१४१	Middle ear
कंठ कर्णी नाली	१४१	Eustachian tube
कर्ण शष्कुली	१४१	Pinna
अर्द्ध चक्राकारानाली	१४१	Semicircular canal
कोकला	१४१	Cochlea
अक्षि गूहा	१४२	Orbital cavity
कंठिकास्थि	१४२	Hyoid bone

बृहत् शृङ्ग	१४३	Greater cornu
लघु शृङ्ग	१४३	Lesser cornu
* कारटिलेज	१४४	Cartilage
उपास्थि	१४४	Cartilage
तरुणास्थि	१४४	Cartilage (young bone)
धूसर श्वेत	१४५	Greyish white
मज्जा	१४५	Bone marrow
अस्थि वल्क	१४६	Cortex of bone
अस्थ्यावरक	१४६	Periosteum
रासायनिक संगठन	१४७	Chemical composition
हाईड्रोक्लोरिक अम्ल	१४७	Hydrochloric acid
अभिद्रव हरिक	१४७	Hydrochloric acid
पन्ना	१४९	Section
सूत्रमय कारटिलेज	१५१	Fibro-cartilage
सूत्रविहीनकारटिलेज	१५१	Hyaline cartilage
लेसदार	१५१	Viscid
जेलाटीन *	१५१	Gelatine
प्रतिनिधि	१५१	Representative
स्वरयंत्रच्छद	१५२	Epiglottis
* कैलशियमफास्फेट	१५२	Calcium phosphate
*कैलशियम कार्बोनेट	१५२	Calcium carbonate
*कैलशियम क्लोराइड	१५२	Calcium chloride
अस्थिविकाश केन्द्र	१५२	Centre of ossification
संयोग	१५३	Union
उदय	१५३	Appear; appsarance

केन्द्र	१५५	Centre
ऐक्स-रे यंत्र	१५६	X-ray apparatus
त्रिकोण कारटिलेज	१५७	Triangular cartilage
अंत: मणिकबन्ध	१५७	Ulnar collateral ligament
बाह्य मणिकबन्ध	१५७	Radial collateral ligament
परिपक्व	१५८	Fully developed or mature
अस्थि मध्य	१६०	Diaphysis
अस्थि अंत	१६०	Epiphysis
समीप अस्थि अंत	१६०	Proximal epiphysis
दूर अस्थि अंत	१६०	Distal epiphysis
प्राचीन	१६१	Ancient
अर्वाचीन	१६१	Modern
कंडरा	१६१	Tendon
स्कन्ध सन्धि	१७१	Shoulder joint
कफोणि सन्धि	१७१	Elbow joint
चल	१७१	Movable
चेष्टावन्त	१७१	Movable
अचल	१७१	Fixed; immovable
स्थिर	१७१	Fixed; immovable
अचेष्ट	१७१	Immovable
बहुचेष्टावन्त	१७२	Freely movable
अल्प चेष्टावन्त	१७२	Partially movable
बंधन कोष	१७३	Capsule
तुंड प्रगंडिका बंधन	१७३	Coraco-humeral ligament
तुंड कूटिका बंधन	१७३	Coraco-acromial ligament

अंतरीय कफोणि बन्धन	१७४	Ulnar collateral ligament
तिर्यक तंत्र	१७४	Oblique cord
बाह्य कफोणि बन्धन	१७४	Radial collateral ligament
चक्रवत् बन्धन	१७४	Annular ligament
बन्धन	१७५	Ligament
सन्धि बन्ध	१७५	Ligament
सन्धि कोष	१७५	Capsule of joint
बन्धन कोष	१७५	Capsule
स्नैहिक कला	१७५	Synovial membrane
स्नेह	१७५	Synovial fluid
वंक्षण सन्धि	१७६	Hip joint
जानु सन्धि	१७७	Knee joint
जान्वस्थि स्थालक	१७७	Patellar surface
अर्द्ध चन्द्राकार स्थालक	१७७	Semi lunar facet for patella
अनुजंघास्थि स्थालक	१७७	Medial tibial surface
पश्चिमव्यत्यस्त बंधन	१७७	Posterior cruciate ligament
पुरः व्यत्वस्त बंधन	१७७	Anterior cruciate ligament
अनुप्रस्थ बंधन	१७७	Transverse ligament
बाह्य अर्द्धचन्द्राकार कारटिलेज	१७७	Lateral meniscus
जंघानुगाजानुबंधन	१७७	Tibial collateral ligament

जान्वस्थि बन्धन	१७७	Ligamentum patellae
जान्वस्थि का अंतरीय लम्ब स्थालक	१७७	Medial perpendicular facet on patella
अनुजंघानुगा बंधन	१७७	Fibular collateral ligament
पुर: जंघा-अनु-जंघास्थि बन्धन	१७७	Anterior tibio fibular ligament
द्विशिरस्का और्वी	१७७	Biceps femoris
जानुकोष	१७८	Capsule of knee
जानु पृष्ठिका	१७८	Popliteus muscle
जानु पृष्ठिका परिखा	१७८	Groove for tendon of popliteus muscle
पश्चिम जंघा-अनु-जंघा बन्धन	१७८	Posterior tibiofibular ligament
समीपस्थ जंघा-अनु जंधा सन्धि कोष	१७८	Capsule of proximal tibio-fibular articulation
ऊरु अंतर नायनी गरिष्ठा	१७८	M. Adductor magnus
कला कल्पा	१७८	M. Semimembranosus
विसंधान	१७९	Dislocation
संधि भङ्ग	१७९	Dislocation
संधि च्युति	१७९	Dislocation
बंधन वितान	१७९	Sprain of ligaments
कंडरा वितान	१७९	Sprain of tendons
जानु पश्चात् धमनी	१८०	Popliteal artery

जानु पश्चात् शिरा	१८०	Popliteal vein
श्लेष्म कोष	१८०	Synovial sac
गुल्फ-पार्ष्णि बन्धन	१८१	Talo- calcaneal ligament
गुल्फ-नौका बन्धन	१८१	Talo-navicular ligament
कंडरा चणकास्थि	१८१	Sesamoid bone
अस्थ्यांतरिक बन्धन	१८२	Interosseous ligament
नौका-पार्ष्णि बन्धन	१८२	Calcaneonavicularligament
पेशी	१८६	Muscle
कण्डरा	१८७	Tendon
स्थितिस्थापकता	१८९	Elasticity
संकोच	१८९	Contraction
प्रसार	१८९	Extension; relaxation
सरल उदरच्छदा पे०	१८८	M. Rectus abdominis
उदरच्छदाबहिःस्था "	१८८	M. obliquus externus
उदरच्छदा मध्यस्था"	१८८	M. obliquus internus
शिरच्छदा "	१८८	M. occipito-frontalis
भ्रु संकोचनी "	१९३	M. Corrugator supercilli
ऊर्ध्वोष्ठगतचतुरस्रा "	१९३	M. Quadratus labii superioris
नस्या "	१९३	M. Nasalis
भेदका	१९३	M. Incisivus
मुख संकोचनी पे०	१९३	M. Orbicularis oris
कपोलिका "	१९३	M. Buccinator
सृक्कणी	१९३	Angle or corner of mouth
निम्नोष्ठगत चतुरस्रा पे०	१९३	M. Quadratus labii inferioris

चिबुका पे०	१९३	M. Mentalis
हनु कंठिका पे०	१९३	M. Mylohyoid
द्विगुम्फिका पे०	१९३	M. Digastricus
चुल्लि-कंठिका पे०	१९३	M. Thyro-hyoid
अंस कंठिका पे०	१९३	M. Omo-hyoid
उर: कंठिका पे०	१९३	M. Sterno-hyoid
अंसोत्कर्षणी पे०	१९३	M. Levator scapulae
शिफा कंठिका पे०	१९३	M. Stylohyoid
चर्वणी पे०	१९३	M. Masseter
सृक्कणी उत्कर्षणीपे०	१९३	M. Zygomaticus
शङ्खच्छदा पे०	१९३	M. Temporalis
सरलोर्ध्व नेत्रचालनी पे०	१९४	M. Rectus superior
सरलाधो नेत्रचालनी पे०	१९४	M. Rectus inferior
सरलांतर्नेत्रचालनी पे०	१९४	Rectus internus
सरलबहिर्नेत्रचालनी पे०	१९४	M. Rectus externus
वक्रोर्ध्वनेत्रचालनी पे०	१९४	M. Obliquus superior
वक्राधोनेत्र चालनी पे०	१९४	M. Obliquus inferior
नमनी पेशी	१९४	Flexor muscle
प्रसारणी पेशी	१९४	Extensor muscle

अंतरनायनी पेशी	१९४	Adductor muscle
अंतर वाहिनी पेशी	१९४	Adductor muscle
बहिर्नायनी पेशी	१९४	Abductor muscle
बहिर्वाहिनी पेशी	१९४	Abductor muscle
सङ्कोचनी पेशी	१९४	Sphincter; constrictor
मलद्वारसङ्कोचनी पे०	१९४	M. Sphincter ani
योनि सकोनी पे०	१९४	M. Sphincter vaginæ
शिफा रसनिका पे०	१९५	M. Stylo-glossus
आरम्भ	१९५	Origin
अंत	१९५	End; insertion
कार्य	१९५	Action
नाड़ी सम्बन्ध	१९५	Nerve supply
परिस्थिति	१९५	Relations
इच्छाधीन गति	१९६	Voluntary movement
अनैच्छिक	१९७	Involuntary
स्वाधीन	१९७	Involuntary
वात मण्डल	१९८	Nervous system
कृमिवत् आकुंचन	१९८	Peristaltic movement
धारियां	१९९	Striation
धारी दार	१९९	Striated
धारी विहीन	१९९	Unstriated
कंडरा पिधान	२०१	Tendon sheath
कशेरु अंस अस्तका पे०	२०२	M. Trapezius
कटि प्रगंडिका पे०	२०२	M. Latissimus dorsi

कृकाटिका बंधन	२०२	Ligamentum nuchae
अंस कशेरुका बृहती पे०	२०३	M. Rhomboideus major
अंस कशेरुका लघ्वी पे०	२०३	M. Rhomboideus minor
अंसोत्कर्षणी पे०	२०४	M. Levator scapulae
उरस्या बृहती पे०	२०४	M. Pectoralis major
उरस्या लघ्वी पे०	२०४	M. Pectoralis minor
अक्षकाधरा पे०	२०५	M. Subclavius
अंस पर्शुका पे०	२०५	M. Serratus anterior
अंसाच्छादनी पे०	२०५	M. Deltoideus
अंसाधरा पे०	२०६	M. Subscapularis
प्राचीरकोर्ध्वगा पे०	२०६	M. Suprascapularis
बेलना लघ्वी पे०	२०६	M. Teres minor
ग्रैवेयी नाड़ी	२०२	Cervical nerve
वाक्षसी नाड़ी	२०४	Thoracic nerve
दीर्घा उरस्या नाड़ी	२०५	Long thoracic nerve
कक्षीया नाड़ी	२०५	Axillary nerve
अंसाधरा नाड़ी	२०६	Subscapular nerve
अंसोर्ध्वगा नाड़ी	२०६	Suprascapular nerve
बेलना बृहती पे०	२०७	M. Teres major
तुण्ड प्रगंडिका पे०	२०७	M. Coraco brachialis
द्विशिरस्का पे०	२०७	M. Biceps brachii
कूर्पर संकोचनी पे०	२०७	M. Brachialis
त्रिशिरस्का पे०	२०८	M. Triceps brachii

अधस्तल कारिणी पे.	२०८	M. Pronator teres
बहि प्रकोष्ठिका नाड़ी	२०८	Radial nerve
मध्य प्रकोष्ठिका नाड़ी	२०८	Median nerve
करसंकोचनीबहि:स्था	२०९	M. Flexor carpi radialis
करतल संकोचनी	२०९	M. Palmaris longus
करसंकोचनीअंत:स्था	२०९	M. Flexor carpi ulnaris
कण्डरा कला	२०९	Aponeurosis
हस्तांगुली संकोचनी मध्य पर्विका पे०	२१०	M. Flexor digitorum sublimis
सौत्रिक कोष	२१०	Fibrous sheath
हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्विका पे०	२११	M. Flexor digitorum profundus
अंगुष्ठसंकोचनी दीर्घा	२११	M. Flexor pollicis longus
प्रकोष्ठ चतुरस्रा	२११	M. Pronator quadratus
अग्र अस्थ्यांतरिका नाड़ी	२११	Anteri r interosseous nerve
प्रगंड बहि:प्रकोष्ठिका	२१२	M. Brachioradialis
मणि बन्धप्रसारिणी बहिस्था पे०	२१२	M. Extensor carpi radialis longus
मणि बन्ध प्रसारणी बहिस्था ह्रस्वा	२१२	Extensor carpi radialis brevis
गम्भीर बहिप्रकोष्ठिका नाड़ी	२१२	Deep radial nerve
अंगुली प्रसारणी पे०	२१३	M. Extensor digitorum communis

कनिष्ठा प्रसारणी पे०	२१३	M. Extensor digiti quintiproprius
मणि बन्ध प्रसारणी अन्तस्था पे०	२१३	M. Extensor carpi ulnaris
कूर्पर प्रसारणी पे०	२१३	M. Anconeus
करोत्तानिनी पे०	२१४	M. Supinator
अंगुष्ठ बहिर्नायनी दीर्घा पे०	२१४	M. Abductor pollicis longus
अंगुष्ठ प्रसारणी ह्रस्वा पे०	२१४	M. Extensor pollics brevis
पश्चात् अस्थ्यान्तरिका नाड़ी	२१४	Posterior interosseous nerve
अंगुष्ठ प्रसारणी दीर्घा पे०	२१५	M. Extensor pollicis longus
मध्यमा प्रसारणी विशेषा पे०	२१५	M. Extensor indicis proprius
अंगुष्ठ बहिर्नायनी ह्रस्वा पे०	२१५	M. Abductor pollicis brevis
अंगुष्ठ संकोचनी ह्रस्वा पे०	२१५	M. Flexor pollicis brevis
सन्मुख कारिणी अंगुष्ठगा पे०	२१६	M. Opponens pollicis
अंगुष्ठ अन्तर नायनी पे०	२१६	M. Adductor pollicis
हस्ततलीका ह्रस्वापे०	२१७	M. Palmaris brevis

कनिष्ठा बहिर्नायनी पे०	२१७	M. Abductor digiti quinti
कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा पे०	२१७	M. Flexor digiti quinti brevis
सन्मुख कारिणी कनिष्ठागा पे०	२१७	M. Opponens digiti quinti
कृमिका पे०	२१८	M. Lumbrical
पृष्ठ अस्थ्यांतरिका पे०	२१८	M. Dorsal interosseous
करतलीय अस्थ्यांतरिका पे०	२१८	M. Palmar interosseous
सन्नकृष्ट	२२५	Adjacent
सौत्रिक महराब	२२५	Fibrous arch
जघन कंकतिका प्रवर्द्धन	२२५	Ileopectineal eminence
कटि लम्बिनी वृहती पे०	२२५	M. Psoas major
कटि लम्बिनी लघ्वी पे०	२२५	M. Psoas minor
काटिकी नाड़ी	२२६	Lumbar nerve
और्वी बाह्य त्वगीया नाड़ी	२२६	Lateral femoral cutaneous nerve
जनन-और्वी नाड़ी	२२६	Genito-femoral nerve
और्वी नाड़ी	२२६	Femoral nerve

ऊरु अन्तरनायनी लध्वी पे०	२३५	M. Adductor brevis
ऊरु अन्तरनायनी गरिष्ठा पे०	२३५	M. Adductor magnus
नैतंबिका महती पे०	२३६	M. Gluteus maximus
नैतंबिकामध्यस्था पे०	२३६	M. Gluteus medius
नैतंबिका लध्वी पे०	२३६	M. Gluteus minimus
शुण्डिका पे०	२३६	M. Piriformis
श्रोणी गवाक्षिणी अन्तस्था पे०	२३७	M. Obturator internus
यमला ऊर्ध्वस्था पे०	२३७	M. Gemellus superior
गह्वरया पृष्ठ	२३७	Pelvic surface
यमला अधस्था पे०	२३८	M. Gemellus inferior
चतुरस्रा औवीं पे०	२३८	M. Quadratus femoris
श्रोणी गवाक्षिणी बहिस्था पे०	२३८	M. Obturator externus
द्विशिरस्का औवीं पे०	२३८	M. Biceps femoris
औवीं पृष्ठ	२३८	Femoral surface
कंडरा कल्पा पे०	२३९	M. Semitendinosus
कला कल्पा पे०	३३९	M. Semimembranosus
जंघा पुरोगा पे०	२३९	M. Tibialis anterior
पादांगुष्ठ प्रसारणी दीर्घा पे०	२४०	M. Extensor hallucis longus
पादांगुली प्रसारणी दीर्घा पे०	२४०	M. Extensor digitorum longus

पाद् विवर्तनी लध्वी पे०	२४०	M. Peroneus tertius
पिचिंडिका महती पे०	२४०	M. Gastrocnemius
पिचिंडिका लध्वी पे०	२४३	M. Soleus
पिचिंडिका विरला पे०	२४३	M. Plantaris
जानु पृष्ठिका पे०	२४३	M. Popliteus
पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा पे०	२४३	M. Flexor hallucis longus
पादांगुली संकोचनी दीर्घा पे०	२४४	M. Flexor digitorum longus
जंघा पश्चिमगा पे०	२४४	M. Tibialis posterior
पाद् विवर्तनी दीर्घा पे०	२४४	M. Peroneus longus
पाद् विवर्तनी ह्रस्वा पे०	२४४	M. Peroneus brevis
पादांगुली प्रसारणी ह्रस्वा पेशी	२४५	M. Extensor digitorum brevis
पादांगुष्ठ बहिर्नायनी पे०	२४५	M. Abductor hallucis
पादांगुली संकोचनी ह्रस्वा पे०	२४६	M. Flexor digitorum brevis
कनिष्ठा बहिर्नायनी पे०	२४६	M. Abductor digiti quinti

पाद चतुरस्रा पे०	२४७	M. Quadratus plantæ
पाद कृमिका पे०	२४७	M. Lumbricales
सन्नकृष्ठ धाराओं	२४७	Adjacent margins
पादांगुष्ठ संकोचनी ह्रस्वा पे०	२४८	M. Flexor hallucis brevis
पादांगुष्ठ अंतर नायनी पे०	२४८	M. Adductor hallucis
कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा पे०	२५४	M. Flexor digiti quinti brevis
पादतल अस्थ्यांत-रिका पे०	२५४	M. Plantar interossei
पाद पृष्ठ अस्थ्यांत-रिका पे०	२५५	M. Dorsal interossei
ताप परिमाण	२५७	Temperature
कोमल	२५७	Delicate
स्पर्शेन्द्रिय	२५७	Sense of touch
तैलवत्	२५८	Oily
शीतप्रधान देश	२५८	Cold country
ग्रीष्मप्रधान देश	२५८	Hot or tropical country
उजला	२५८	Light colored; fair
श्याम	२५८	Dark
रुधिर	२५९	Blood
रक्त	२५९	Blood
गुरुत्व	२५९	Specific gravity
अपारदर्शक	२५९	Opaque

प्रकाश	२५९	Light
फहरनहाइट*	२५९	Fahrenheit
शतांश	२५९	Centigrade
ज्वर	२५९	Fever
गन्ध	२५९	Odour
तरल	२५९	Fluid
लुआबदार	२५९	Viscid
छिछड़ा	२६०	Clot
रक्त रस	२६०	Serum
सीरम*	२६०	Serum
रक्त कण	२६१	Blood corpuscle
फाइब्रिन*	२६१	Fibrin
संयोगी तत्त्व	२६१	Components
रक्त वारि	२६१	Plasma
प्लाज़मा*	२६१	Plasma
फाइब्रिनजनक	२६१	Fibrinogen
द्राक्षौज	२६२	Dextrose
शर्कराजन	२६२	Glycogen
ग्लाइकोजन*	२६२	Glycogen
यूरिया*	२६२	Urea
यूरिक अम्ल	२६२	Uric acid
विषनाशक	२६२	Antitoxic
प्रतिविष	२६२	Antitoxin
थक्का बंधना	२६२	Clotting; coagulation
घुलनशील	२६२	Soluble

परिवर्तन	२६२	Change
अनघुल	२६२	Insoluble
नवीनता	२६३	Newness
थक्का	२६३	Coagulum; clot
विलंब	२६३	Delay; retardation
खटिक योगिक	२६४	Calcium compound
सम्मेलन	२६४	Compound
सोडियम सिट्रेट*	२६४	Sodium citrate
खुरदरी	२६४	Rough
आरोग्यता	२६४	Health
न्युक्लियो प्रोटीन*	२६५	Nucleo-protein
जोंक	२६५	Leech
ग्रन्थि	२६५	Gland
रस	२६५	Juice
गुरुत्वाकर्षण	२६६	Gravitation
रक्ताणु	२६३	Erythrocyte; red blood corpuscle
श्वेताणु	२६६	Leucocyte; white blood corpuscle
शूक्ष्म रक्त कण	२६६	Blood platelets
पिचकी हुई	२६६	Depressed
चक्री	२६७	Disc
धन	२६७	Cubic
सहस्रांश मीटर	२६७	Millimetre
नवजात	२६७	Newborn

अनुमान	२६७	Approximate, Calculation
शतांशमीटर	२६७	Centimetre
दशांशमीटर	२६७	Decimetre
मीटर*	२६७	Metre
क्षेत्रफल	२६८	Area
घनफल	२६८	Cubic capacity
वर्ग गज	२६८	Square yards
भौतिक घटना	२६८	Physical phenomenon
स्तनधारी	२६८	Mammals
पृष्ठवंशधारी	२६८	Vertebrate
श्रेणि	२६८	Class
पृष्ठवंश विहीन	२६८	Invertebrate
मत्स्य श्रेणि	२६८	Piscidia
मंडूक श्रेणि	२६८	Amphibia
सर्प श्रेणि	२६८	Reptilia
पक्षी श्रेणि	२६८	Aves
मींगीदार	२६९	Nucleated
अण्डाकार	२६९	Oval
युगलनतोदर	२६९	Biconcave
युगलोन्नतोदर	२६९	Biconvex
भ्रूण	२७०	Embryo
रक्तग्लोबिन	२७०	Hæmoglobin
कणरञ्जक	२७०	Hæmoglobin
काला अज़ार ज्वर	२७१	Kala Azar fever
आक्षेप	२७१	Invasion

फुप्फुस प्रदाह	२७१	Pneumonia
अमीबावत् गति	२७१	Amœboid movement
क्षुद्र लसीकाणु	२७१	Small lymphocyte
बृहत् लसीकाणु	२७२	Large lymphocyte
बहुरूप मींगीयुक्त श्वेताणु	२७२	Polymorphonuclear leucocyte
अम्लरंगेच्छु श्वेताणु	२७२	Eosinophile leucocyte
ईओसीन*	२७२	Eosin
प्रतिक्रिया	२७२	Reaction
क्षारीय	२७४	Alkaline
हृदय कोष	२७६	Pericardium
हृदावरण	२७६	Pericardium
ऊर्ध्व	२७६	Vertical
ग्राहक कोष्ठ	२७६	Atrium
क्षेपक कोष्ठ	२७६	Ventricle
कपाट	२७७	Valve
धारण शक्ति	२७७	Capacity
ऊर्ध्व महाशिरा	२७७	Superior Vena cava
निम्न महा शिरा	२७७	Inferior Vena cava
चिकवा	२७७	Meatseller
महा धमनी	२७८	Aorta
महा हार्दिकी शिरा	२७८	Great cardiac vein
बायाँग्राहक-क्षेपक कपाट	२७८	Bicuspid or Mitral Valve
कपाटीया पेशी	२७८	Musculi papillaris

क्षेपकांतरिका प्राचीर	२७८	Interventricular septum
दाहिनी हार्दिकी ध०	२७८	Right coronary artery
दाहिना ग्राहक-क्षेपक कपाट	२७८	Tricuspid valve
ग्राहकांतरिका प्राचीर	२७८	Interatrial septum
अंडाकार खात	२७८	Fossa ovalis
फुप्फुसीया शिरा	२७८	Pulmonary Vein
रक्त अपसरण	२७८	Regurgitation of blood
रक्त अपक्रमण	२७८	Regurgitation of blood
फुप्फुसीया धमनी	२७९	Pulmonary artery
अर्धचन्द्राकार	२७९	Semilunar
शिखर	२७९	Apex
वृहत् धमनी	२८१	Aorta
उद्गामी महाधमनी	२८१	Ascending aorta
धमनी संयोजक	२८१	Ductus arteriosus
मूल फुप्फुसीया धमनी	२८१	Main trunk of pulmonary artery
महराब	२८१	Arch
तिर्यक शिरा	२८२	Oblique vein
ग्राहक-क्षेपक कोष्ठांतरिका परिखा	२८२	Atrio-Ventricular sulcus
पाश्चात्य कोष्ठांतरिका धमनी	२८२	Posterior interventricular artery
मध्य हार्दिकी शिरा	२८२	Middle cardiac vein
आकुंचन	२८४	Contraction ; Systole

संकोच	२८४	Contraction ; Systole
प्रसार	२८५	Diastole
शब्द परीक्षक यंत्र	२८६	Stethoscope
रक्त वाहिनी	२८७	Blood vessel
केशिकाएँ	२८७	Capillaries
धमनिका	२८८	Arteriole
सहायक	२८९	Tributary
शिराक	२८९	Venule
रक्त संचार	२९०	Blood circulation
रक्त परिभ्रमण	२९०	Blood circulation
रक्त परिक्रमण	२९१	Blood circulation
और्वी शिरा	२९१	Femoral vein
वस्तिदेश	२९१	Pelvic region
अंतः श्रोणिगा शिरा	२९१	Internal iliac vein
बाह्य श्रोणिगा शिरा	२९१	External iliac vein
संयुक्त श्रोणिगा शिरा	२९१	Common iliac vein
उदरस्थ	२९२	Abdominal
रक्त चक्र	२९३	Blood cycle
धमनी-स्पंदन	२९६	Pulse
धमनी-स्फुरण	२९६	Pulse
वेग	२९७	Force
रक्त भार	२९७	Blood pressure
रक्त वेग	२९७	Blood pressure
रक्त-भार-मापक यंत्र	२९८	Sphygmomanometre
संकोच रक्त भार	२९९	Systolic blood pressure

आकुंचन रक्त भार	२९९	Systolic blood pressure
प्रसार रक्त भार	२९९	Diastolic blood pressure
रक्त भाराधिक्य	२९९	High blood pressure
लसीका	३०१	Lymph
लसीकावाहिनी	३०१	Lymph vessel
महालसीकावाहिनी	३०४	Thoracic duct
संगम	३०४	Confluence
लसीका ग्रन्थि	३०५	Lymphatic gland
महामारी	३०५	Plague
केन्द्रिक भाग	३०६	Central part
अधर स्वारयांत्रिकी नाड़ी	३०७	Inferior laryngeal nerve
बद	३०८	Bubo
व्यास	३०८	Diametre
उद्गामी महा धमनी	३०९	Ascending aorta
हार्दिकी धमनी	३०९	Coronary artery
मूलफुप्फुसीयाधमनी	३०९	Main pulmonary artery
महाधमनीकीमहराब	३०९	Arch of aorta
कक्षीया धमनी	३०९	Axillary artery
मूलशिरोधीयाधमनी	३०९	Common carotid artery
मूल शिरोधोवर्तिनी धमनी	३०९	Common carotid artery
अक्षकाधोवर्तिनी ध०	३०९	Subclavian artery
अक्षकाधरा ध०	३०९	Subclavian "

अंतः शिरोधीया ध०	३०९	Internal carotid artery
बहिः शिरोधीया ध०	३०९	External carotid ,,
चुल्लिका ऊर्ध्व ध०	३०९	Superior thyroid ,,
मौखिकी ध०	३०९	Facial ,,
रासनिकी ध०	३०९	Lingual ,,
अधो ओष्ठ्या ध०	३०९	Inferior labial ,,
ऊर्ध्व ओष्ठ्या ध०	३०९	Superior labial ,,
अंतः उपांगीया ध०	३०९	Angular ,,
शांखिकी ध०	३०९	Temporal ,,
चुल्लिकाधो ध०	३०९	Inferior thyroid ,,
असोर्ध्व ध०	३०९	Suprascapular ,,
काशेरुकी धमनी	३०९	Vertebral ,,
अंतः स्तनीया ध०	३०९	Internal mammary ,,
अधोगामी बृहत् ध०	३१०	Descending aorta
प्रगंडीया ध०	३११	Brachial artery
बहिः प्रकोष्ठिका ध०	३११	Radial ,,
अंतः प्रकोष्ठिका ध०	३११	Ulnar ,,
कारतलिकी धमनी महराब	३११	Palmar arch
आंगुलीया धमनी	३११	Digital artery
पर्शुकांतरिका ध०	३११	Intercostal ,,
याकृती धमनी	३११	Hepatic ,,
आमाशयिकी ध०	३११	Gastric ,,
प्लैहिकी	३११	Splenic ,,
वृक्किका ध०	३११	Renal ,,

अंत्रोर्ध्व ध०	३११	Superior mesenteric artery
आंडिकी ध०	३११	Spermatic artery
मध्यत्रिक ध०	३११	Midsacral "
श्रोणिगामूलीया ध०	३११	Common iliac "
बहिः श्रोणिगा ध०	३११	External iliac "
अंतः श्रोणिगा ध०	३११	Internal iliac "
और्वी ध०	३११	Femoral "
जान्विकी ध०	३११	Genicular "
जंघा पश्चिमगा ध०	३११	Posterior tibial "
जङ्घा पुरोगा ध०	३११	Anterior tibial "
विवर्तनी ध०	३११	Peroneal "
गौल्फी	३११	Malleolar "
पाद पृष्ठिका ध०	३११	Dorsalis pedis artery
पाद तलिकी ध०	३११	Plantar "
पादांगुलीया ध०	३११	Digital (Foot) "
अंतः पर्शुकांतरिका पेशी	३१२	Internal intercostal muscle
पर्शुकांतरिका शिरा	३१२	Intercostal vein
पर्शुकांतरिका धमनी	३१२	Intercostal artery
पर्शुकांतरिका नाड़ी	३१२	Intercostal nerve
पिगंला नाड़ी	३१२	Sympathetic nerve
अज़ाइगोस शिरा*	३१२	Azygos vein
शिरोधीया धमनी	३१३	Common carotid artery
शिरोधोवर्तिनी धमनी	३१३	Common carotid artery

कर्णाग्रवर्ती लाला ग्रन्थि	३१४	Parotid gland
चर्बनी पेशी	३१४	Masseter muscle
हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि	३१४	Submaxillary gland
अस्थ्यांतरिका पुरोगा ध०	३१६	Volar interosseous artery
बाहि: मणिका पुरोगा ध०	३१६	Volar radial carpal ,,
बहि: मणिका पश्चिमगा ध०	३१६	Dorsal radial carpal ,,
करभीया पश्चिमगा ध०	३१६	Dorsal metacarpal ,,
अंगुष्ठीया विशेषा ध०	३१६	Princeps pollicis ,,
प्रदेशिनी बहि:स्था ध०	३१६	Radialis indicis ,,
आङ्गुलीया पश्चिमगा ध०	३१६	Dorsal digital ,,
आङ्गुलीया पुरोगा ध०	३१६	Volar digital ,,
अंत: मणिका पुरोगा ध०	३१६	Volar ulnar carpal ,,
गंभीर अंत: प्रकोष्ठिका ध०	३१६	Deep ulnar ,,

बेधनिका पश्चिमगा ध०	३१६	Dorsal perforatingartery
मूल आङ्गुलीया पुरोगा ध०	३१६	Volar digital (main trunks)
अंत: गौल्फी ध०	३१७	Medial malleolar ,,
अंत: पादतलिकी ध०	३१७	Medial plantar ,,
अंत: प्रपाद ध०	३१७	Medial tarsal ,,
धनुषाकारा ध०	३१७	Arcuate ,,
गम्भीर पादतलिकी ध०	३१७	Deep plantar ,,
पाद पृष्ठ प्रपादीया ध०	३१७	Dorsal metatarsal ,,
पादतल प्रपादीया ध०	३१७	Plantar metatarsal ,,
बेधनिका विवर्तनी ध०	३१७	Perforating peroneal ,,
बाह्य गौल्फी ध०	३१७	Lateral malleolar ,,
विवर्तनी पश्चिमगा ध०	३१७	Posterior peroneal ,,
पाद पृष्ठिका ध०	३१७	Dorsalis pedis
बाह्य पादतलिकाध०	३१७	Lateral plantar
बाह्य कौर्ची ध०	३१७	Lateral tarsal artery
पादतलिकी आङ्गुलीया ध०	३१७	Plantar digital ,,

वेधनिका पुरोगा ध०	३१७	Anterior perforating ,,
गंभीर कारतलिका धमनी महराब	चित्र १८०	Deep palmar arch ,,
पादतलिकी धमनी महराब	चित्र १८१	Plantar arch
चाक्षुषी ध०	३१९	Ophthalmic artery
पक्काशयिकी ध०	३१९	Duodenal ,,
नैतंबिकी ध०	३१९	Gluteal ,,
कांठिकी ध०	३१९	Pharyngeal ,,
ताल्विकी ध०	३१९	Palatine ,,
हान्विकी ध०	३१९	Maxillary ,,
रासनिकी ध०	३१९	Lingual ,,
शाष्कुलीया ध०	३१९	Auricular ,,
ग्रैवेयी ध०	३१९	Cervical ,,
आश्रवी ध०	३१९	Lacrimal ,,
काटिकी ध०	३१९	Lumbar ,,
वृक्किका ध०	३१९	Renal ,,
यौनी ध०	३१९	Vaginal ,,
गर्भाशयिकी ध०	३१९	Uterine ,,
मध्य उपवृक्किका ध०	३२०	Middle suprarenal ,,
स्वरयंत्राधः नाड़ी	३२०	Recurrent laryngeal nerve
बहिः प्रगंडीया शिरा	३२१	Cephalic vein
कक्षीया शिरा	३२१	Axillary vein
अंतः प्रगंडीया शिरा	३२१	Basilic vein

अंतः कूर्परीका शिरा	३२१	Medial cubital
अंतः प्रकोष्ठिका ”	३२१	Medial antibrachial
कर पृष्ठ शिरा महराब	३२१	Dorsal venous arch
बहिः कूर्परीका शिरा	३२१	Lateral cubital vein
पादांगुलीया शिरा	३२२	Digital of foot ,,
ऊर्वंतः पार्श्विका ”	३२२	Saphena magna ,,
गंभीर जंघिल ”	३२२	Anterior tibial ,,
जंघा बहि पार्श्विकी शिरा	३२२	Saphena parva ,,
जानु पृष्ठिका शिरा	३२२	Popliteal ,,
और्वी शिरा	३२२	Femoral ,,
संयुक्ता श्रोणिगा ”	३२२	Common iliac ,,
डिम्बिकी शिरा	३२२	Ovarian ,,
वृक्किका शिरा	३२२	Renal vein
अंत्रोर्ध्व ,,	३२२	Superior mesenteric vein
अंत्राधो ,,	३२२	Inferior mesenteric vein
प्लैही ,,	३२२	Splenic ,,
प्लीहा-क्लोम	३२२	Lienal ,,
संयुक्ता ,,	३२२	Portal ,,
याकृति ,,	३२२	Hepatic ,,
हस्तांगुलीया ,,	३२२	Digital (hand) ,,
गंभीर ,,	३२२	Profunda (cubital) ,,
अक्षकाधोवर्ती ,,	३२२	Subclavian ,,
ऊर्ध्व शिरा कुल्या	३२२	Superior sagittal sinus
अंतः ग्रीवीया शिरा	३२२	Internal jugular vein

गंभीर श्रोधीया शिरा	३२२	Internal jugular vein
उपरितन श्रोधीया शिरा	३२२	External jugular ,,
अधोशिरा कुल्या ,,	३२२	Inferior sagittal sinus
सरलशिरा ,, ,,	३२२	Straight sinus
व्यत्यस्त ,, ,, ,,	३२२	Transverse or lateral sinus
गम्भीर स्तनीयाशिरा	३२३	Internal mammary vein
पर्शुकांतरिका उत्तमा शिरा	३२३	Superior intercostal ,,
काटिकी ,,	३२३	Lumbar ,,
*हेमीअज़ाइगॉस ,,	३२३	Hemiazygos ,,
उपरितन उदराधः,,	३२३	Inferior epigastric ,,
अर्श शिरा जाल	३२३	Haemorrhoidal plexus
सरलांत्रीय शिरा जाल	३२३	Haemorrhoidal plexus
बाह्य श्रोणिगा शिरा	३२३	External iliac vein
अंतः श्रोणिगा ,,	३२३	Internal iliac vein
मूल श्रोणिगा ,,	३२३	Common iliac ,,
ऊर्ध्वगाकाटिकी ,,	३२३	Ascending lumbar vein
अंडाकार खात	३२४	Fossa ovalis
ऊर्वंतः पार्श्विका नाड़ी	३२४	Saphenous nerve
ऊर्ध्व खण्ड	चित्र ३२६	Upper lobe
मध्य खण्ड	चित्र ३२६	Middle lobe

तली	चित्र ३२६	Base
अधः खण्ड	चित्र ३२६	Lower lobe
अन्न प्रणाली परिखा	३२७	Oesophageal groove
ऊर्ध्व महा शिरा परिखा	३२७	Groove for superior vena
परिफुफ्फुसीया कला	३२७	Pleura
फुफ्फुसमूल बन्धन	३२७	Ligamentum pulmonalis
अनामिका शिरा परिखा	३२७	Groove for innominate vein
पर्शुका परिखा	३२७	Costal groove
वक्षउदरमध्यस्थ नाड़ी परिखा	३२७	Groove fer phrenic nerve
महाधमनी परिखा	३२७	Aortic groove
शंकाकृति	३२८	Conical
दरार	३२८	Fissure
फुफ्फुस प्रदाह	३२८	Pneumonia
न्युमोनिया❀	३२८	Pneumonia
थाइसिस❀	३२८	Phthisis
दाहिना स्तंभ	३३०	Right crus
बाह्य कटि-पर्शुका महराब	३३०	Lateral lumbo-costal arch
अंतः कटि-पर्शुका महराब	३३०	Medial lumbo-costal arch
व्यत्यस्त काठ	३३२	Transverse section
फुफ्फुस मूल	३३२	Root of lung

मध्यवंक्षण रेखा	३३३	Midpoupart line
परिविस्तृत कला	३३३	Peritoneum
अंत्रच्छदा कला	३३३	Omentum majus
उपांत्र	३३३	Vermiform appendix
त्रिक पृष्ठिका कला	३३३	Lumbo-dorsal fascia
परिवृक्क वसा	३३३	Perirenal fat
फुफ्फुसावरण	३३५	Pleura
श्वास मार्ग	३३५	Respiratory passage
श्वसनी	३३५	Trachea
उदरक कला	३३७	Peritoneum
स्वरयन्त्र	३३८	Larynx
स्वरयन्त्रच्छद	चित्र २०१	Epiglottis
चुल्लि कारटिलेज	" २०१	Thyroid cartilage
मुद्रा	" २०१	Cricoid cartilage
चुल्लिका ग्रन्थि	पृष्ठ ३३९	Thyroid gland
वायु प्रणाली	३३९	Bronchus
श्वास प्रणाली	३४१	Bronchus
खंडिका	३४१	Lobule
श्वास प्रणालिका	३४१	Bronchiole
वायु मन्दिर	३४२	Infundibulum
वायु कोष्ठ	३४२	Air cell
अर्धगोलाकार	३४३	Hemispherical
उच्छ्वास	३४६	Inspiration
अंत:श्वसन	३४६	Inspiration
प्रश्वास	३४६	Expiration

बहिःश्वसन	३४६	Expiration
उदरस्थ	३४६	Abdominal
जलीय वाष्प	३४९	Aqueous vapour
आर्गन*	३४९	Argon
गैस*	३५१	Gas
रासायनिक प्रीति	३५३	Chemical affinity
ओषितकणरञ्जक	३५३	Oxy-hæmoglobin
बैंगनी	३५५	Violet
लोबिया	३५५	Bean
वृक्क कोष	३५६	Renal capsule
प्रान्तस्थ	३५६	Peripheral
मध्यस्थ	३५६	Central
मीनार	३५६	Pyramid
अंडधारक रज्जु	चित्र २०६	Spermatic cord
वृक्क शंकु	,, २०७	Renal pyramid
वृक्क पुट	,, २०७	Renal pelvis
वृक्क पुट शाखा	,, २०७	Calyx
वल्क	,, २०७	Cortex
मध्यस्थ भाग	,, २०७	Medullary portion
फिलटर*	३६१	Filter
मूत्र प्रणाली	३६३	Ureter
वस्ति	३६३	Urinary bladder
विटप संधि	३६३	Symphysis pubis
मूत्र मार्ग	३६५	Urethra
प्रोस्टेट*	३६५	Prostate

शिश्न मुण्ड	३६५	Glans penis
मूत्र बहिर्द्वार	३६५	External urinary meatus
सूज़ाक	३६५	Gonorrhœa
मूत्र दंडिका	३६५	Corpus cavernosum urethræ
शिश्न दण्डिका	३६५	Corpus canernosum penis
शिश्नमूल ग्रन्थि	३६६	Cowper's gland
शिश्नस्थ	३६६	Penile
उपचर्म	३६९	Epidermis
चर्म	३६९	Dermis
श्याम वर्ण	३६९	Darkskinned
चर्म प्रवर्द्धन	३७०	Papillæ
टटरी	३७२	Scalp
घर्म ग्रन्थि	३७३	Sweat gland
लोमोत्थापिका पे०	३७४	Arrectores pilorum muscle
स्वेद ग्रन्थि	३७४	Sebaceous gland
लोमकूप	३७४	Hair follicle
स्पर्श कण	३७४	Tactile corpuscle
पक्ष्मन	३७५	Eyelashes
बरौनी	३७५	Eyelashes
श्लेष्म	३८०	Mucus
श्लैष्मिक झिल्ली	३८०	Mucous membrane
श्लेष्ममय	३८०	Mucous
आमातिसार	३८१	Dysentery

संक्षिप्त विषय-सूची

SOME OPINIONS

The Leader, Allahabad

It is not easy to praise this publication too highly..... It is written in a style which is easily understandable and contains information about medical, hygienic and other allied subjects which is not available to the Hindi knowing public......It is a veritable mine of information on subjects which are intimately connected with social, family and individual well-being and happiness......Dr. Varma has indeed rendered a national service by bringing out this book......The chapter which deals with sexual matters is necessarily of an outspoken nature as it contains practical advice which is not compatible with reticence based on false notions of propriety or decency. The chapter dealing with venereal diseases giving illustrations and descriptions of the forms and the terrible consequences thereof should warn people of the dangers of prostitution and promiscuity not only to themselves but also to their progeny. Considering the labour and expense involved in preparing this highly instructive book, its price must be regarded as extremely moderate.

The Indian Medical Gazette, Calcutta

......Beginning with a discourse on the place of man the universe and his struggle for existence, the author has admirably put before the readers the roll of bacteria, flies, insects and parasites in the causation and transmission of human disease. The subjects of ventilation, housing, water, dietetic and exercise have been thoroughly discussed. All the preventable diseases have been described and the prophylactic measures advocated are sound and

up-to-date. Other important diseases and congenital abnormalities have also been dealt with. Sound advice has been given as regards personal hygiene. Finally, a couple of chapters are devoted to the question of sexual psychology, sex hygiene,......The book is profusely illustrated......The coloured plates are excellent......The author is gifted with a charming style and the book is a veritable storehouse of knowledge.........

'वैद्य, मुरादाबाद'—इसको पढ़कर निःसंदेह प्रत्येक मनुष्य उत्तम स्वास्थ्य-रक्षा की विधि जानने तथा रोगों से बचने के सिवा, अनेक लौकिक, सामाजिक और गार्हस्थ्य की मिथ्या कुप्रथाओं के मोह-जाल से बच सकता है और अपने जीवन को सुखमय बना सकता है।

'विज्ञान, प्रयाग'—पुस्तक अत्यंत उपयोगी और उपादेय है। यदि हर आदमी के नहीं, तो हर सुधारक के हाथों में तो अवश्य होनी चाहिए। छपाई-सफ़ाई सभी उत्तम है। चित्रों के बाहुल्य के कारण उत्तम चिकने दबीज काग़ज़ पर सारी किताब छपी है। जिल्द मज़बूत है। ७) को ऐसी बढ़िया पुस्तक बहुत सस्ती है, महँगी नहीं है।

'विशाल भारत, कलकत्ता—पुस्तक सर्वसाधारण के लिए उपयोगी और देहाती वैद्य, हकीम आदि के लिए अनिवार्य है, ऐसी अच्छी पुस्तक लिखने के लिए लेखक महोदय हिंदी-संसार की कृतज्ञता के पात्र हैं।

'आर्यमित्र, आगरा'—जिस पुस्तक के पाठ से स्वास्थ्य ठीक और दवा-दारू तथा चिकित्सकों की फ़ीस में ख़र्च होनेवाले रुपयों बचत हो, उसको अनिवार्य रूप में गृहस्थ में रखना किसे पसन्द होगा? हमें आशा ही नहीं, विश्वास है कि यह पुस्तक बहुत शीघ्र आयुर्वेदिक परीक्षाओं की पाठ-विधि में सम्मिलित कर ली जायगी, और प्रत्येक वैद्य और गृहस्थ इससे लाभ उठाना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझेगा।